रजिस्ट्री सं० डी० एल०-33004/99 REGD. NO. D. L.-33004/99

भारत का राजपत्र
The Gazette of India

असाधारण
EXTRAORDINARY
भाग II—खण्ड 3—उप-खण्ड (ii)
PART II—Section 3—Sub-section (ii)
प्राधिकार से प्रकाशित
PUBLISHED BY AUTHORITY

सं. 293] नई दिल्ली, रविवार, जनवरी 21, 2018/माघ 1, 1939
No. 293] NEW DELHI, SUNDAY, JANUARY 21, 2018/MAGHA 1, 1939

विधि और न्याय मंत्रालय

(विधायी विभाग)

अधिसूचना

नई दिल्ली, 20 जनवरी, 2018

का.आ. 340(अ).—राष्ट्रपति द्वारा किया गया निम्नलिखित आदेश सर्वसाधारण की जानकारी के लिए प्रकाशित किया जाता है :--

20 जनवरी, 2018

आदेश

भारत निर्वाचन आयोग को, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "जी.एन.सी.टी.डी. अधिनियम" कहा गया है) की धारा 15 की उपधारा 4 के अधीन, तारीख 10 नवंबर, 2015 को निर्देश किया गया था कि क्या राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र विधानसभा (जिसे इसमें इसके पश्चात् "एन.सी.टी." कहा गया है) के श्री प्रवीन कुमार और बीस अन्य सदस्य, जी.एन.सी.टी.डी. अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (1)(क) के अधीन विधानसभा के सदस्य रहने से निर्रहता से ग्रस्त हो गए हैं। विधान सभा सदस्यों के नाम और उनके पद निम्न प्रकार से हैं:-

क्रम सं.	**विधानसभा सदस्य का नाम**	***निम्न के संसदीय सचिव***
1.	श्री आदर्श शास्त्री	*सूचना और प्रौद्योगिकी मंत्री*
2.	सुश्री अल्का लांबा	*पर्यटन मंत्री*
3.	श्री अनिल कुमार बाजपेई	*स्वास्थ्य मंत्री (पूर्व)*
4.	श्री अवतार सिंह	*गुरुद्वारा निर्वाचन मंत्री*
5.	श्री जरनैल सिंह (रजौरी गार्डन)*	*विद्युत मंत्री*
6.	श्री जरनैल सिंह (तिलक नगर)	*विकास मंत्री*
7.	श्री कैलाश गहलौत	*विधि मंत्री*

8.	श्री मदन लाल	*सतर्कता मंत्री*
9.	श्री मनोज कुमार	*खाद्य और नागरिक आपूर्ति मंत्री*
10.	श्री नरेश यादव	*श्रम मंत्री*
11.	श्री नितिन त्यागी	*महिला, बाल और समाज कल्याण मंत्री*
12.	श्री प्रवीन कुमार	*शिक्षा मंत्री*
13.	श्री राजेश गुप्ता	*स्वास्थ्य मंत्री (उत्तर)*
14.	श्री राजेश ऋषि	*स्वास्थ्य मंत्री (दक्षिण)*
15.	श्री संजीव झा	*परिवहन मंत्री*
16.	सुश्री सरिता सिंह	*रोजगार मंत्री*
17.	श्री शरद कुमार चौहान	*राजस्व मंत्री*
18.	श्री शिव चरण गोयल	*वित्त मंत्री*
19.	श्री सोम दत्त	*उद्योग मंत्री*
20.	श्री सुखवीर सिंह दलाल	*भाषा और अ.जा./ अ.जन.जा./ अ.पि.व. कल्याण मंत्री*
21.	श्री विजेन्द्र गर्ग विजय	*लोक निर्माण विभाग मंत्री*
*	*श्री जरनैल सिंह, विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र, रजौरी गार्डन ने 17 जनवरी, 2017 को त्यागपत्र दे दिया था और अप्रैल, 2017 को इस रिक्ति को भरने के लिए उपचुनाव हुए थे और इस प्रकार से उनकी निर्रहता का प्रश्न नहीं रहता है।*	

उक्त निर्देश में, उक्त विधानसभा सदस्यों की निर्रहता का प्रश्न श्री प्रशांत पटेल (जिसे इसमें इसके पश्चात् "याची" कहा गया है) द्वारा, भारत के राष्ट्रपति के समक्ष, तारीख 19 जून, 2015 को फाइल की गई याचिका से उठा था । याची द्वारा जी.एन.सी.टी.डी. अधिनियम, 1991 की धारा 15 की उपधारा (1)(क) के अधीन श्री प्रवीन कुमार और दिल्ली विधानसभा के 20 अन्य सदस्यों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् प्रत्यर्थी कहा गया है) की दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार के अधीन संसदीय सचिव के रूप में लाभ का पद लेने के आधार पर निर्रहता की वांछा की गई है । प्रत्यर्थी, जी.एन.सी.टी.डी. आदेश, तारीख 13 मार्च, 2015 द्वारा दिल्ली सरकार के मंत्रियों के संसदीय सचिव के रूप में नियुक्त किए गए थे । याची ने, तारीख 19 जून, 2015 की याचिका, माननीय राष्ट्रपति के समक्ष तारीख 22 जून, 2015 को फाइल की थी।

और, श्री प्रशांत पटेल की उक्त याचिका, भारत के संविधान के अनुच्छेद 191(1)(क) के अधीन यथा अपेक्षित राय लेने के लिए भारत निर्वाचन आयोग को निर्दिष्ट की गई थी।

और भारत निर्वाचन आयोग, भारत के संविधान, जी.एन.सी.टी.डी. अधिनियम और पूर्व में दिए गए न्यायिक निर्णयों में यथा अंतर्विष्ट विधि को ध्यान में रखते हुए तथ्यों और परिस्थितियों की पूर्णतः परीक्षा के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि संसदीय सचिव का कार्यालय जिस पर निम्नलिखित बीस विधान सभा सदस्य, तारीख 13 मार्च, 2015 के जी.एन.सी.टी.डी. आदेश द्वारा नियुक्त किए गए थे, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की सरकार के अधीन लिया गया लाभ का पद है और इस प्रकार निर्वाचन आयोग ने राय दी कि निम्नलिखित विधानसभा सदस्य जी.एन.सी.टी.डी. अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (1)(क) के अधीन निर्रहित होने के दायी हैं :-

क्रम सं.	विधानसभा सदस्य का नाम	क्रम सं.	
1.	श्री आदर्श शास्त्री (ए.सी.-33 द्वारका)	2.	*सुश्री अल्का लांबा* *(ए.सी.-20 चांदनी चौक)*
3.	श्री अनिल कुमार बाजपेई (ए.सी.-61 गांधी नगर)	4.	*श्री अवतार सिंह* *(ए.सी.-51 कालकाजी)*

5.	श्री जरनैल सिंह (ए.सी.-29 तिलक नगर)	6.	*श्री कैलाश गहलौत* *(ए.सी.-35 नजफगढ़)*
7.	श्री मदन लाल (ए.सी.-42 कस्तूरबा नगर)	8.	*श्री मनोज कुमार* *(ए.सी.-56 कोंडली)*
9.	श्री नरेश यादव (ए.सी.-45 महरौली)	10.	*श्री नितिन त्यागी* *(ए.सी.-58 लक्ष्मी नगर)*
11.	श्री प्रवीन कुमार (ए.सी.-41 जंगपुरा)	12.	*श्री राजेश गुप्ता* *(ए.सी.-17 वजीरपुर)*
13.	श्री राजेश ऋषि (ए.सी.-30 जनकपुरी)	14.	*श्री संजीव झा* *(ए.सी.-2 बुराड़ी)*
15.	सुश्री सरिता सिंह (ए.सी.-64 रोहतास नगर)	16.	*श्री शरद कुमार चौहान* *(ए.सी.-1 नरेला)*
17.	श्री शिव चरण गोयल (ए.सी.-25 मोती नगर)	18.	*श्री सोम दत्त* *(ए.सी.-19 सदर बाजार)*
19.	*श्री सुखबीर सिंह दलाल* *(ए.सी.-8 मुंडका)*	*20.*	*श्री विजेन्दर गर्ग विजय* *(ए.सी.-39 राजेन्द्र नगर)*

और श्री जरनैल सिंह, विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र-27, रजौरी गार्डन से पूर्व विधान सभा सदस्य, जिनकी जी.एन.सी.टी.डी. तारीख 13 मार्च, 2015 के आदेश द्वारा संसदीय सचिव के रूप में भी नियुक्ति की गई थी, के संदर्भ में, यह ध्यान दिया जाए कि उन्होंने तारीख 17 जनवरी, 2017 को दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की विधानसभा में उनके पद से त्यागपत्र दे दिया था और उनकी रिक्ति को भरने के लिए अप्रैल, 2017 को उपचुनाव हुआ था और इस प्रकार से उनकी निर्रहता का प्रश्न नहीं रहता है। भारत निर्वाचन आयोग द्वारा तारीख 19 जनवरी, 2018 को दी गई राय की प्रति, उपाबंध सहित, इसमें संलग्न है।

अब इसलिए, भारत निर्वाचन आयोग द्वारा व्यक्त की गई राय को ध्यान में रखते हुए, मामले पर विचार करते हुए, मैं, रामनाथ कोविंद, भारत का राष्ट्रपति, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 की धारा 15 की उपधारा (4) के अधीन मुझे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, एतद्द्वारा अभिनिर्धारित करता हूं कि दिल्ली विधानसभा के पूर्वोक्त बीस सदस्य उक्त विधानसभा के सदस्य होने से निर्रहित हो गए हैं।

भारत का राष्ट्रपति

भारत निर्वाचन आयोग

निर्वाचन सदन

अशोक रोड, नई दिल्ली -110001

2015 का निर्देश मामला सं0 5

[भारत के राष्ट्रपति से दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 के अधीन निर्देश]

संदर्भ : 2015 का निर्देश मामला सं0 5 – भारत के माननीय राष्ट्रपति से दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 की धारा 15(4) के अधीन प्राप्त निर्देश जिसमें दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम,1991 की धारा 15(1)(क) के अधीन दिल्ली विधान सभा के श्री प्रवीण कुमार और बीस अन्य सदस्य की अभिकथित निरर्हता के प्रश्न पर भारत निर्वाचन आयोग की राय मांगी गई है।

राय

संक्षिप्त तथ्य

1. यह भारत के माननीय राष्ट्रपति से प्राप्त निर्देश तारीख 10.11.2015 है जिसमें दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "जीएनसीटीडी अधिनियम" कहा गया है) की धारा 15(4) के अधीन भारत निर्वाचन आयोग की राय इस प्रश्न पर मांगी गई है कि क्या दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र (जिसे इसमें इसके पश्चात् "एनसीटी" कहा गया है) की विधान सभा के श्री प्रवीण कुमार और बीस अन्य सदस्य, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम की धारा 15(1)(क) के अधीन, उस सभा के सदस्य होने के लिए निरर्हता से ग्रस्त हो गए हैं। विधान सभा सदस्यों और उनके पदों के नाम निम्नानुसार हैं:--

क्रम सं.	विधान सभा सदस्य का नाम	निम्नलिखित का संसदीय सचिव
1.	श्री. आदर्श शास्त्री	सूचना और प्राद्योगिकी मंत्री
2.	सुश्री. अल्का लांबा	पर्यटन मंत्री
3.	श्री अनिल कुमार वाजपेयी	स्वास्थ्य मंत्री (पूर्वी)
4.	श्री अवतार सिंह	गुरुद्वारा निर्वाचन मंत्री
5.	श्री जरनैल सिंह (रजौरी गार्डन)*	विद्युत मंत्री
6.	श्री जरनैल सिंह (तिलक नगर)	विकास मंत्री
7.	श्री कैलाश गहलोत	विधि मंत्री
8.	श्री मदन लाल	सतर्कता मंत्री
9.	श्री मनोज कुमार	खाद्य और नागरिक आपूर्ति मंत्री
10.	श्री नरेश यादव	श्रम मंत्री
11.	श्री नितिन त्यागी	महिला और बाल तथा समाज कल्याण मंत्री
12.	श्री प्रवीण कुमार	शिक्षा मंत्री
13.	श्री राजेश गुप्ता	स्वास्थ्य मंत्री (उत्तरी)
14.	श्री राजेश ऋषि	स्वास्थ मंत्री (दक्षिणी)
15.	श्री संजीव झा	परिवहन मंत्री
16.	सुश्री सरिता सिंह	रोजगार मंत्री
17.	श्री शरद कुमार चौहान	राजस्व मंत्री
18.	श्री शिव चरण गोयल	वित्त मंत्री
19.	श्री सोम दत्त	उद्योग मंत्री
20.	श्री सुखबीर सिंह दलाल	भाषा और अनु.जाति/अनु.जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग मंत्री
21.	श्री विजेन्द्र गर्ग विजय	लोक निर्माण विभाग मंत्री
*	*रजौरी गार्डन के विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से श्री जरनैल सिंह, विधान सभा सदस्य ने 17.01.2017 को त्याग पत्र दे दिया था और अप्रैल, 2017 में हुई इस रिक्ति को भरने के लिए उपनिर्वाचन हुए थे और इसलिए, उसकी निरर्हता पर कोई प्रश्न ही नहीं है।*	

2. उक्त निर्देश में, भारत के राष्ट्रपति के समक्ष उक्त विधान सभा सदस्यों की निरर्हता का प्रश्न श्री प्रशांत पटेल (जिसे इसमें इसके पश्चात् "याची" कहा गया है) द्वारा फाइल की गई तारीख 19.06.2015 की याचिका के कारण उठा था जिसके

द्वारा याची ने दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार के मंत्रियों के संसदीय सचिवों के रूप में दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने के आधारों पर दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम की धारा 15(1)(क) के अधीन दिल्ली विधान सभा के श्री प्रवीण कुमार और बीस सदस्यों (जिन्हे इसमें इसके पश्चात् "प्रत्यर्थी" कहा गया है) की निरर्हता की मांग की है।

3. प्रत्यर्थियों को दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार के आदेश तारीख 13.03.2015 दिल्ली सरकार के मंत्रियों के संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्त किया गया था। याची ने 22.06.2015 को भारत के माननीय राष्ट्रपति के समक्ष तारीख 19.06.2015 की याचिका फाइल की थी। उसके पश्चात् दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार ने 23.06.2015 को दिल्ली विधान सभा सदस्य (निरर्हता का हटाना) (संशोधन) विधेयक, 2015 पुर:स्थापित किया था। विधेयक 24.06.2015 को दिल्ली विधान सभा द्वारा पारित किया गया था। तथापि, भारत के माननीय राष्ट्रपति ने 07.06.2016 को इस विधेयक को अनुमति देने से इंकार कर दिया था। दिल्ली विधान सभा सदस्य (निरर्हता का हटाना) (संशोधन) विधेयक, 2015 का उद्देश्यों और कारणों का कथन निम्नानुसार है:

"उद्देश्यों और कारणों का कथन

दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम,1991 की धारा 15 की उपधारा (1) का खंड (क) यह उपबंध करता है कि कोई व्यक्ति, विधान सभा का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा यदि वह भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार के अधीन ऐसे पद को छोड़कर जिसको धारण करने वाले का निरर्हित न होना संसद् या किसी राज्य के विधान-मंडल या दिल्ली विधाना सभा या किसी अन्य संघ राज्यक्षेत्र द्वारा बनाई गई विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है। दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम,1991 की धारा 15 के उपबंध अधिक या कम क्रमश: संसद् के किसी भी सदन या राज्य के विधान-मंडल के किसी भी सदन की सदस्यता के लिए निरर्हता से संबंधित संविधान के अनुच्छेद 102 और अनुच्छेद 191 में के उपबंधों के अनुरूप हैं ।

1997 में, दिल्ली विधान सभा ने दिल्ली विधान सभा सदस्य (निरर्हता का हटाना) अधिनियम, 1997 (1997 का दिल्ली अधिनियम 6) नाम से ज्ञात एक विधि कुछ पदों को दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की विधान सभा के सदस्य को चुने जाने के लिए या सदस्य होने के लिए निरर्हता से निरर्हित होने के लिए छूट प्रदान करने के उद्देश्य से अधिनियमित की थी।

उक्त अधिनियम से संलग्न अनुसूची क्रम संख्या 7 पर उल्लिखित मुख्यमंत्री के संसदीय सचिव के पद के अतिरिक्त, मंत्री के संसदीय सचिव का पद भी सम्मिलित किया जाना है। यह घोषित करने के लिए दिल्ली विधान सभा (निरर्हता का हटाना) अधिनियम, 1997 का संशोधन करना आवश्यक समझा गया था कि दिल्ली विधान सभा सदस्य (निरर्हता का हटाना) अधिनियम, 1997, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार के मुख्यमंत्री और मंत्री का पद निरर्हित नहीं होगा और दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की विधान सभा का सदस्य चुने जाने के लिए या सदस्य होने के लिए कभी भी निरर्हित हुआ नहीं समझा जाएगा। तदनुसार, इन आशयों को प्रभावी करने के लिए उक्त अधिनियम की अनुसूची का संशोधन करने का प्रस्ताव है।

विधेयक पूर्वोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए है"।

4. वर्तमान मामले में कार्यवाहियां 24.06.2016 को प्रारंभ हो गई थीं जिसके द्वारा आयोग ने इस मामले में पक्षकारों के रूप में मुकदमा चलाने के लिए कतिपय तृतीय पक्षकारों द्वारा फाइल किए गए हस्तक्षेप आवेदनों पर विचार किया था। सभी संबंधित पक्षकारों को 14.07.2016 तथा 21.07.2016 को सुना गया था और इन आवेदनों का निपटान करने वाला आदेश 26.07.2016 को पारित किया गया था। आयोग ने आदेश तारीख 26.07.2016 (उपाबंध 1, पृष्ठ ..... से .....) द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि निर्देश के पक्षकारों पर राष्ट्रपतीय निर्देश द्वारा निर्णय किया गया है और इसलिए मुकदमा चलाने के लिए आवेदन चलाने योग्य नहीं है।

5. तत्पश्चात् 10.08.2016, 19.08.2016 और 29.08.2016 को सुनवाइयां की गई थीं जिसके द्वारा प्रत्यर्थियों ने ऐसी निरर्हता के असंगत प्रश्नों को उठाए जाने के लिए आयोग के तारीख 04.12.2015 की सूचना के उत्तर में याची द्वारा फाइल किए गए तारीख 28.12.2015 के उत्तर को, जिसको उन्होंने 'द्वितीय याचिका' कहा है, चुनौती दी थी। आयोग ने तारीख 16.09.2016 के आदेश (उपाबंध 2, पृष्ठ .....से .....) द्वारा इस प्रारंभिक मुद्दे पर विनिश्चय किया था जिसके द्वारा आयोग ने यह अभिनिर्धारित किया कि याची द्वारा उसके अपने उत्तर में उठाए गए प्रश्न उसकी तारीख 19.06.2015 की मूल याचिका में उठाए गए प्रश्नों को मात्र दोहराना था। तथापि, प्रत्यर्थियों द्वारा उठाए गए आक्षेपों को ध्यान मे रखते हुए, आयोग ने याची द्वारा फाइल किए गए उत्तर से कुछ पैराओं को हटाने का आदेश दिया था और याची द्वारा फाइल किए गए कुछ दस्तावेजों को अभिलेख पर न लेने के लिए निदेश दिया था और विषय पर अंतिम सुनवाई के लिए तारीख नियत की थी।

6. जब वर्तमान निर्देश के अधीन कार्रवाहियां आयोग के समक्ष चल रहीं थीं तब उक्त नियुक्ति के आदेश तारीख 13.03.2015 को चुनौती देने वाली राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार और अन्य नामक 2015 की रिट याचिका (सिविल) सं0 4714 माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई थी। माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने तारीख 08.09.2016 के आदेश द्वारा तारीख 13.03.2015 के उक्त नियुक्ति आदेश को इस आधार पर अपास्त कर दिया था कि इसे उप राज्यपाल को उसके अभिमतों । सहमति के लिए सरकार के विनिश्चय को संसूचित किए बिना पारित किया गया था। उच्च न्यायालय का आदेश निर्देश की सुविधा के लिए नीचे दोहराया गया है:--

"1. जनहित मुकदमा के माध्यम से यह याचिका दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार के मंत्रियों के संसदीय सचिवों के रूप में उसमें नामित दिल्ली विधान सभा के सदस्यों को नियुक्त करने वाले तारीख 13.03.2015 के दिल्ली सरकार के आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की गई थी।

2. चुनौती के आधारों में से एक आधार यह है कि उक्त आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 239कक के अपेक्षानुसार उप राज्यपाल को उसके अभिमतों/सहमति के लिए विनिश्चय संसूचित किए बिना पारित किया गया था।

3. रिट याचिका (सिविल) सं0 5888/2015 और दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार बनाम भारत सरकार और अन्य नामक बैच में इस न्यायालय ने निर्णय तारीख 04.08.2016 द्वारा उसी मुद्दे पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि-- "उन विषयों, जिनके संबंध में विधि बनाने की शक्ति संविधान के अनुच्छेद 239कक के खंड (3)(क) के अधीन दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की विधान सभा को प्रदत्त की गई है, के संबंध में भी सांविधानिक स्कीम के अधीन मंत्रि-परिषद् का विनिश्चय उप राज्यपाल को संसूचित करना अनिवार्य है और केवल आदेश वहां जारी किया जा सकता है जहां उप राज्यपाल भिन्न अभिमत नहीं अपनाता है और दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार के कारबार संव्यवहार नियम, 1993 के अध्याय 5 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 239कक के खंड (4) के परंतुक के अनुसार केन्द्रीय सरकार को कोई निर्देश अपेक्षित नहीं है।"

4. याची का विनिर्दिष्ट अभिवाक् कि तारीख 13.03.2015 का आक्षेपित आदेश उप राज्यपाल को उसके अभिमतों/सहमति के लिए विनिश्चय संसूचित किए बिना पारित किया गया था, प्रत्यर्थियों की ओर से पेश हुए विद्वान काउंसलों द्वारा इसका विरोध नहीं किया गया है।

5. अत:, में याची के विदवान काउंसेल के निवेदन में बल दिखाई नहीं पड़ता है कि मुद्दा दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार बनाम भारत संघ और अन्य नामक बैच में किए गए विनिश्चय के अंतर्गत पूर्णतया आता है। तदनुसार, रिट याचिका में उठाए गए अन्य प्रतिवादों का अध्ययन किए बिना, तारीख 13.03.2015 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

तदनुसार, रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। कोई लागत नहीं ।

मुख्य न्यायमूर्ति

संगीता धींगरा सहगल, न्यायमूर्ति।

8 सितंबर, 2016/वीएलडी"

7. आयोग ने दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार से प्रत्यर्थी विधान सभा सदस्यों के संबंध में विस्तृत जानकारी मांगी थी और इसे पत्र सं0 फा.सं.एफ-17/57/2012/जीएडी/प्रधान सचिव/4034 तारीख 20.09.2016 द्वारा 2500 पृष्ठों के समर्थनकारी दस्तावेजों के साथ प्राप्त किया गया था। 23.09.2016 को हुई सुनवाई में पक्षकारों ने दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार द्वारा फाइल किए गए उक्त उत्तर की प्रति के लिए अनुरोध किया था। इसकी एक प्रति सभी प्रत्यर्थियों को परिदत्त की गई थी और याची को व्यक्तिगत रूप से भारत निर्वाचन आयोग के पत्र तारीख 29.09.2016 द्वारा तथा पक्षकारों से इसके लिए उनके उत्तर 07.10.2016 और 14.10.2016 को या उससे पहले प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था। प्रत्यर्थियों ने 17.10.2016 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया और याची ने 24.10.2016 को अपना प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया था।

8. अपने निवेदनों में और 15.11.2016, 22.11.2016, 07.12.2016, 16.12.2016 और 27.03.2017 को आयोग के समक्ष हुई सुनवाइयों में प्रत्यर्थियों ने इस आधार पर वर्तमान निर्देश मामले की संपोषणीयता के बारे में प्रारंभिक आक्षेप उठाए थे कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 08.09.2016 के आदेश के पारित किए जाने के पश्चात्, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने तारीख 13.03.2015 के नियुक्ति आदेश को अपास्त किया है, अभिकथित निरर्हता का प्रश्न ही नहीं उठता है।

9. आयोग के समक्ष संचालित कार्यवाहियों के दौरान और उनके लिखित निवेदनों में, प्रत्यर्थियों ने यह प्रतिवाद किया कि संसदीय सचिवों का पद माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश के पश्चात् अस्तित्वहीन हो गया है और निर्देश मामला निष्फल और निष्प्रभावी हो गया है और यह कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने नियुक्ति आदेश को अपास्त करके इसे अवैध, असंवैधानिक तथा आरंभ से ही शून्य के रूप में घोषित किया है जिसका अभिप्राय यह है कि अभिकथित निरर्हता के लिए एकमात्र आधार विद्यमान नहीं है । प्रत्यर्थियों के अनुसार, उच्च न्यायालय के आदेश का आवश्यक उपसिद्धांत यह है कि संसदीय सचिवों का "पद कभी भी विद्यमान नहीं था और, इस प्रकार, किसी लाभ और पारिणामिक निरर्हता का प्रश्न ही नहीं उठता है।

10. आयोग के समक्ष संचालित कार्यवाहियों के दौरान और अपने लिखित निवेदनों में याची ने यह निवेदन किया है कि उच्च न्यायालय के आदेश के पश्चात् संसदीय सचिवों के पद की अस्तित्वहीनता के बारे में प्रत्यर्थी का प्रतिवाद गलत है। याची द्वारा यह प्रतिवाद किया गया है कि दिल्ली उच्च न्यायालय ने केवल नियुक्ति आदेश को 'अपास्त' किया है और इसे "आरंभ से ही शून्य" होना अभिनिर्धारित नहीं किया है। याची ने पंजाब राज्य बनाम गुरुदेव सिंह [(1991)4 एसएसी 1] में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख किया है जो पंजाब राज्य के पुलिस पदाधिकारी की बरखास्तगी से संबंधित है, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि:

"5 यदि कोई अधिनियम शून्य या अधिकारातीत है, इसे इस प्रकार घोषित करना न्यायालय के लिए यह पर्याप्त है और यह स्वत:ही समाप्त हो जाता है। इसे अपास्त किए जाने की आवश्यकता नहीं है। व्यथित पक्षकार मात्र घोषणा की मांग कर सकता है कि यह शून्य है और उस पर आबद्धकर नहीं है। कोई घोषणा मात्र कार्यों की विद्यमान स्थिति की घोषणा करती है और उसको अभिखंडित नहीं करती है जिससे कि कार्यों की एक नई स्थिति उत्पन्न हो सके।

6. किन्तु फिर भी आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश में कम से कम यह तब तक वस्तुत: प्रवर्तन में नहीं होती है जब तक इसे सक्षम निकाय या न्यायालय द्वारा शून्य या अकृतता के रूप में घोषित नहीं किया जाता है।" (बल दिया गया है)

11.याची ने यह प्रस्तुत किया कि किसी अन्य प्रतिकूल अभिव्यक्ति की अनुपस्थिति में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 8.9.2016 कोक पारित आदेश केवल सुनाए जाने की तिथि से भूतलक्षी रूप में प्रभआवी होगा, जो 8.9.2016 है । उन्होंने राजस्थान उच्च न्यायालय के छोती लाल बनाम राज बहादूर (ए.आई.आर. राज. 227) के निर्णय को भी निर्दिष्ट किया है, जिसमें यह कहा गया था कि यद्यपि नियुक्ति अनियमित थी, जिसे अनुच्छेद 102 के अधीन एक व्यक्ति निर्हरता से नहीं बच सकेगा । याची ने आगे यह कहा कि प्रतिवादी विधानसभा सदस्यों को निरर्ह ठहराया जा सकेगा, यदि वे एक मिनट के लिए भी पदधारित किए थे । चूंकि, वर्तमान मामले में, प्रतिवादी न अपनी नियुक्ति की तिथि से लाभ प्राप्त किया है, जो 13.3.2015 से 8.9.2016 तक जो दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्ति को रद्द करने का आदेश दिया गया था । ऐसे पद को धारण करने वाले व्यक्ति को निरर्हता को तब से माना जाएगा जब उसने लाभ का पद प्राप्त किया ।

12. आयोग ने 23.6.2017 के आदेश के अनुसार यह देखा कि दिल्ली सरकार के नियुक्ति आदेश का परिशीलन यह दर्शाता है कि उक्त आदेश द्वारा दिल्ली सरकार के मंत्रियों के संसदीय सचिवों के रूप में प्रतिवादियों की नियुक्ति की गई थी । उस पूरे आदेश में कहीं भी यह उल्लिखित नहीं है कि दिल्ली सरकार के आदेश द्वारा संसदीय सचिवों के किसी पद को सृजित किया गया । यह आदेश प्रतिवादियों को केवल संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्ति के बारे में कहता है । यह एक पूर्वानुमान है कि संसदीय सचिवों का पद या तो पहले से ही विद्यमान थे सरकार द्वारा पृथकतः सृजित किए गए थे, जो इन नियुक्तियों को 13.3.2015 को सरकार द्वारा सृजित किए गए थे । आयोग,माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के 8.9.2016 के आदेश में कुछ भी नहीं पाया कि न्यायालय ने केवल प्रतिवादियों की नियुक्ति को रद्द किया है, बल्कि संसदीय सचिवों के पद के सृजन को भी । प्रतिवादियों का यह तर्क है कि तारीख 8.9.2016 के माननीय उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार संसदीय सचिवों का पद 13.3.2015 से प्रारंभतः अस्तित्वहीन हो गया है, अतः स्वीकार्य नहीं है । यह प्रकटतः और पूर्णतः स्पष्ट है कि तारीख 8.9.2016 के उच्च न्यायालय के आदेश द्वारा केवल प्रतिवादियों की संसदीय सचिवों के रूप में की गई नियुक्ति को रद्द किया गया है और यह किसी अन्य निर्वचन को स्वीकार नहीं करता है । यदि प्रतिवादी इस तर्क में सफल थे कि माननीय उच्च न्यायालय संसदीय सचिवों के पद के सृजन को रद्द करता है, तो सिद्धि का भार कि प्रतिवादियों पर है जिसे वे उसे पूरा करने में असफल हो गए हैं । याचिकाकर्ता अपने तर्क में सही है कि आयोग, माननीय उच्च न्यायालय के आदेश में कोई शब्द जोड़ या घटा नहीं सकता है, जैसाकि प्रतिवादियों द्वारा कहा गया है ।

13. आयोग ने तारीख 23.6.2017 के आदेश करा यह धारित किया कि केवल अनुमान है कि माननीय उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए गए तारीख 8.9.2016 के आदेश से वैधता हो सकती है कि यह प्रतिवादियों का संसदीय सचिवों के रूप में केवल नियुक्ति थी, जो तारीख 13.3.2015 के जी.एन.सी.टी.डी. के आदेश द्वारा रद्द किया गया था, न कि संसदीय सचिवों के पद से । वर्तमान मामले में, यह सुस्पष्ट है कि प्रतिवादी, संसदीयसचिवों के पद का तथ्यतः धारणकर्ता थे, हालांकि, एक नियुक्ति

आदेश के तरीके द्वारा,जो प्रक्रियात्मक और कानूनी चूकों से ग्रस्त पाया गया था और अतः माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किया गया और इसीलिए उनकी निरर्हता का प्रश्न पोषणीय है ।

14. आयोग के उपर्युक्त नोट किए गए आदेश को प्रतिवादियों द्वारा 2017 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 6632, 6633 और 6635-6638 के माध्यम से माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई । जिसमें, आज तक कोई स्थगनादेश पारित नहीं किया गया, इस आयोग ने यह निर्णीत किया कि इस संदर्भित मामले में जांच के संचालन की प्रक्रिया की जाने और इसकी राय की विरचना की जाए । पक्षकारों द्वारा उठाएगए प्रारंभिक मुद्दे और उसके न्यायनिर्णयन ।

15. आयोग,तारीख 28.9.2017 के पत्र द्वारा पक्षकारों को नोटिस जारी करके उन्हें जी.एन.सी.टी.डी. द्वारा फाइल किए गए दस्तावेजों के लिखित उत्तर के ब्यौरे देने के लिए बुलाया गया और नोटिस में आगे यह नोट किया गया कि यदि प्रतिवादी, अपने लिखित तर्क देने में असफल रहते हैं, तो आयोग यह मान लेगा कि इस मामले में उनके पास कहने के लिए कुछ नहीं है और आयोग, इसके उपलबध अभिलेखों के साक्ष्यों और दस्तावेजों के आधार पर प्रतिवादी के किसी आगे के निर्देशों के बिना मामले का निर्णय करेगा ।

16. प्रतिवादियों ने 16.10.2017 को अपना जवाब प्रस्तुत किया और याची ने 23.10.2017 को इसके जवाब में अपना प्रत्युत्तर प्रस्तुतकिया । प्रतिवादियों ने इसके जवाब में यह प्रस्तुत किया कि तारीख 28.9.2017 का उक्त पत्र आयोग द्वारा जवाबों की अनभिज्ञता में जारी किया गया है और प्रतिवादियों द्वारा पूर्व में प्रार्थनापत्र फाइल किया गया है ।उन्होंने आगे यह प्रस्तुत किया कि, तब भी, इन विषयों को केवल आयोग द्वारा विचार किया जाएगा, यदि उच्च न्यायालय के प्रतिवादियों द्वारा फाइल की गई याचिका को रद्द कर देता है ।

17. अपने लिखित जबाव में प्रतिवादियों ने यह प्रस्तुत किया कि चूंकि उच्च न्यायालय पहले ही निर्णीत कर चुका है कि संसदीय सचिव के पद पर उनकी हुई नियुक्ति अवैध और शून्य है, और चूंकि प्रतिवादियों की याचिका आयोग द्वारा जारी किए गए आदेश को चुनोती दी गई है, जो उच्च न्यायालय के समक्षलंबित है, सम्पूर्ण दस्तावेजी साक्ष्य के साथ लिखित कर्तकों को फाइल करने की प्रक्रिया अब तक नहीं पहुंची है और न ही आवश्यक है ।

18. प्रत्यर्थियों ने यह और दलील दी कि चूंकि तारीख 23.1.2017 के आयोग के आदेश न्यायाधीन है, प्रत्यर्थियों ने आयोग से प्रार्थना की कि वह उस विषय में कोई सुनवाई न करे क्योंकि वह निरर्थक हो जाएगी यदि उच्च न्यायालय याचिका का निर्णय प्रत्यर्थियों के पक्ष में देता है ।

19. प्रत्यर्थियों ने यह और दलील दीकि आयोग ने तारीख 23.6.2017 के आदेश द्वारा पोषणीयता के मुद्दे का विनिश्चय किया, तथापि कुछ अन्य प्रारंभिक मुद्दे शेष है, जिनका विनिश्चय किया जाना है और मामले के गुणागुण को उनका विनिश्चय किए जाने से पूर्व नहीं सुनाजा सकता है । प्रत्यर्थियों ने विनिर्दिष्टता आयोग का ध्यान अपने प्रत्युत्तर की और आकृष्ट किया जिसमें उन्होंने यह आक्षेप किया था कि विधि की दृष्टि में तारीक 10.11.2015 का निर्देश कोई निर्देश नहीं है ।

20. प्रत्यर्थियों ने आगे यह दलील दी कि उसके पास अधिकार है और अतः वे याचिकाकर्ता/परिवादी का समुचित चरण पर प्रति-परीक्षा की मांग करते हैं ।

21. प्रत्यर्थियों ने आगे यह दलील कि मीडिया रिपोर्ट के माध्यम से प्रत्यर्थी यह जान पाए कि निर्वाचन आयुक्त इस मामले की सुनवाई से स्वयं को बचा रहे हैं और इस तथ्य के आलोकर में यह स्पष्ट नहीं है मामले की सुनवाई का कोरम कैसे होगा । चूंकि प्रत्यर्थियों के महत्वपूर्ण संवैधानिक अधिकार अंग्निदंड है, यह मामला पूर्ण कोरम द्वारा सुना जाना आवश्यक है ।

22. प्रत्यर्थियों की दलील यह प्रकट करती है कि आयोग के समक्ष पहले से ही दी गई दलील में आगे और कुछ जोड़ने के लिए नहीं है ।

23. प्रत्यर्थी कोई नया और विशिष्ट प्राथमिक मुद्दा उठाने में असफल हो चुका है, जो कि इस मामले में अंतिम राय देने के पहले निर्णीत किया जाने वाला है और तारीख 23.6.2012 के आयोग के आदेश के संचालन के किसी स्थगनादेश की अनुपस्थिति में, वर्तमान आदेश में जारी रहने में कोई विधिक बाधा नहीं है ।

24. याची/परिवादी की प्रति-परीक्षा के लिए प्रत्यर्थियों द्वारा मांग किए जाने पर, यह पाया गया कि निर्दिष्ट मामलों में परवादी ह्वीसल ब्लोवर के समान है और उनकी प्रति-परीक्षा की अनुमति दिया जाना विधि की प्रक्रिया का मजाक बनाएगा । इसके अतिरिक्त, परिवादी की प्रतिपरीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है कि वह न तो अपने वैयक्तिक रूप से पदीय क्षमता में कोई सूचना देने की स्थिति में है, जहां वह अपने परिवाद पर विश्वास करता है न ही उस प्रक्रिया में वह एक साक्षी है । अतः शिकायतकर्ता की प्रति-परीक्षा की आवश्यकता नहीं है और यह मांग अनावश्यक विलंब करने वाली मानी जाएगी ।

25. श्री ओम प्रकाश रावत ने इस मामले को पहले की तैनातियों के दौरान कुछ राजनीतिक नेताओं के साथ उनके संगम के निराधार आरोपों के कारण स्वयं को इस मामले की सुनवाई करने से अलग कर लिया । तथापि, मुख्य निर्वाचन आयुक्त की पहल पर वह इस मामले की जांच करने के लिए और निर्वाचन आयुक्त के पद पर श्री सुनील अरोड़ा के साथ 1.9.2017 से सम्मिलित होने के लिए तैयार हो गए । इस राय को देने के लिए एक पूर्ण गणपूर्ति उपलब्ध हो गई थी चूंकि यह अभिलेख पर उपलब्ध सभी दलीलों और दस्तावेजों की जांच पर आधारित था । यह भी एक तथ्य है कि एक निर्वाचन आयुक्त के विरुद्ध निराधार आरोप लगाने के पश्चात्, जिसका परिणाम उनके द्वारा स्वयं को अलग करने के रूप में हुआ । प्रत्यर्थियों ने यह विशिष्ट दलील दी कि आयोग पूर्ण गणपूर्ति के अभाव में इस मामले में अग्रसर नहीं हो सकता है । प्रत्यर्थियों का पूर्वोक्त कृत्य इस बात का साक्ष्य है कि उनका आशय और मंतव्य यह सुनिश्चित करना था कि वर्तमान मामला और आगे नहीं बढे । तथापि, यह नोट करना सुसंगत है कि निर्वाचन आयोग (निर्वाचन आयुक्तों की सेवा शर्तें और कारबार का संव्यवहार) अधिनियम, 1961 की धारा 10 के अनुसार आयोग को अपने कारबार का संव्यवहार करने के लिए प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए पूर्ण स्वायत्ता है और ऐसा विनिश्चय बहुमत द्वारा या एकमत रूप से भी लिया जा सकता है । लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 146ख के अनुसार भी आयोग को अपनी प्रक्रिया का विनिश्चय करने के लिए पूर्ण स्वायत्ता है । अत: यह आवश्यक नहीं है कि यदि कोई निर्वाचन आयोग स्वयं को यहां तक कि भागत: किसी जांच और सुनवाई से किसी मामले में अलग करता है तब ऐसे विशिष्ट संदर्भ मामले में कोई राय आयोग के शेष सदस्यों द्वारा विरचित नहीं की जा सकती है । विधि की ऐसी स्थिति विद्यमान नहीं है और यह बहुत खतरनाक है क्योंकि किसी मामले में कोई हित रखने वाला पक्षकार किसी आधारहीन पक्षपात के आरोप को किसी एक या अन्य निर्वाचन आयेाग के विरुद्ध लगा सकता है और तब ऐसे मामले का विनिश्चय ऐसे निर्वाचन आयोग की सेवानिवृत्त तक नहीं किया जा सकता है । ऐसी स्थिति न केवल निर्वाचन आयोग के कार्य को पंगु करेगी किंतु विधि के उपबंधों को भी अकार्य बना देगी ।

26. चूंकि प्रत्यर्थियों ने मामले के गुणागुण पर कोई सारवान दलील नहीं दी है, आयोग ने पक्षकारों को दूसरे नोटिस की अंतिम अवसर के रूप में तारीख 2.11.17 के पत्र द्वारा पक्षकारों को जीएनसीटीडी द्वारा पूर्ति की गई सूचना के संबंध में प्रत्यर्थियों द्वारा धारित लाभ के पद से संबंधित तथ्यों की बाबत तामील की और प्रत्यर्थियों ने तारीख 20.11.17 के प्रत्युत्तर में उन्होंने उनके 16.10.17 के प्रत्युत्तर में दी गई दलीलों को दोहराया तथा याचियों ने 15.12.2017 को अपनी लिखित दलीलें फाइल की ।

27. ऐसी परिस्थितियों में जहां प्रत्यर्थियों ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उन्होंने पहले ही अपनी दलील दी है कि वे कोई और दलील जीएनसीटीडी द्वारा उपलब्ध कराए गए ब्यौरों पर उन्हें अनेक अवसर प्रदान करने और काफी समय बीत जाने के बावजूद नहीं दी है, यह प्रतीत होता है कि उनके पास कहने के लिए और कुछ नहीं है । इसलिए, आयोग ने इस विषय में कार्यवाहियों को समाप्त करने का और वर्तमान निर्देश पर अपनी राय देने का विनिश्चय किया है ।

गुणागुण के आधार पर पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलें

28. याची ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थियों की यह दलील कि संसदीय सचिव के पद को केवल इस कारण से 'लाभ का पद' नहीं कहा जा सकता कि उसमें कोई धनीय या वित्तीय फायदा नहीं है, किसी गुणागुण या सार से रहित है । 'लाभ का पद' एक तकनीकी पद है, जिसको संविधान या किसी विधि में परिभाषित नहीं किया गया है और विभिन्न न्यायालय के निर्णय में कतिपय जांच और कारकों की पहचान यह अवधारित करने के लिए की है कि 'लाभ का पद' क्या गठित करता है, जिनका सारांश नीचे दिए अनुसार है :

(i) क्या उक्त एमपी या एमएलए कोई पद धारण करता है ?

(ii) क्या वह एक ऐसा पद है, जिस पर लाभ अर्जित होता है ?

(iii) क्या पद सरकार के अधीन है ?

(iv) क्या पद धारक किन्हीं कार्यपालक कृत्यों का निर्वहन करता है ?

(v) क्या सरकार ने एक विधि अधिनियमित करके उस पद के धारक को निरर्हता से छूट प्रदान की है ?

(vi) क्या सरकार ने नियुक्ति की है ?

(vii) क्या सरकार को पद धारक को पद से हटाने या पदच्युत करने का अधिकार है ?

(viii) क्या सरकार पारिश्रमिक का संदाय करती है ?

(ix) पद धारक के क्या कृत्य हैं ?

(x) क्या सरकार कृत्यों के निष्पादन पर किसी नियंत्रण का निर्वहन का प्रयोग करती है ?

(xi) क्या पद के कर्तव्यों और वैयक्तिक हित के बीच किसी दंद्ध की संभावना है ?

29. याची ने दलील दी है कि प्रत्यर्थी पूर्वोक्त सभी जांच में असफल हुए हैं सिवाय धनीय लाभ की जांच के, जो एक महत्वपूर्ण जांच है किंतु वह केवल एकमात्र जांच नहीं है और चूंकि संसदीय सचिव का पद दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र की सरकार के अधीन एक पद था और यह लाभ अर्जित करने में सक्षम था, इसे 'लाभ का पद' अवश्य घोषित किया जाना चाहिए और इस संबंध में उसने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा एम रमप्पा बनाम संगप्पा [एआईआर 1958 एससी 937 ; 1959 एससीआर 1167] में किए गए निम्नलिखित पर्यवेक्षण का अवलंब लिया है :

"कोई 'लाभ का पद' एक ऐसा पद है, जो लाभ या धनीय अभिलाभ अर्जित करने में सक्षम है । दूसरी ओर यदि किसी पद से वास्तव में लाभ उदभूत नहीं होता है तो इस बात के होते हुए भी कि लाभ कैसे उदभूत होता है वह एक लाभ का पद है"।

30. याची ने एमएन कौल एंड एसएच सकधर, की प्रसिद्ध पुस्तक, जिसे सबसे पहले लोक सभा सचिवालय में 2001 में प्रकाशित किया था और उसका शीर्षक "संसद् की पद्धति और प्रक्रिया : लोक सभा के विशेष संदर्भ में, का अवलंब लिया जिसका प्राय उद्धरण लिया जाता है और उस पर भारतीय विधान मंडलों से संबंधित मामलों में निर्भर किया जाता है । विशेषतया याची ने निम्नलिखित उद्धरणों का अवलंब लिया है :"

"इस बात की जांच करने के लिए कि क्या कोई पद लाभ का पद है या नहीं । केवल परिलब्धियां ही नहीं जिसे कोई एमएलए प्राप्त करता है या संभवत: वह प्राप्त करेगा यदि वह उस पद को धारण करता है, को उस प्रश्न का अवधारण करने के लिए ही नहीं देखा जाना चाहिए । मामले के अन्य परिप्रेक्ष्य जैसे प्रास्थिति, शक्ति या संरक्षकता, जो उस पद का धारक उपयोग करता है, भी ऐसे सुसंगत कारक हैं, जिन्हें लेखें में लिया जाना चाहिए । तथापि, धारक को कोई धनीय फायदा न हो । [...] लाभ का साधारणतया निर्वचन धनीय अभिलाभ के अर्थ में किया जाता है । किंतु कुछ मामलों में धनीय लाभ से भिन्न फायदें भी उसके अर्थ के अंतर्गत आते हैं [...] 'लाभ पद' का अनिवार्यता अर्थ नकद में कोई पारिश्रमिक नहीं है किंतु नि:संदेह इसका अर्थ किसी प्रकार की संरक्षता या अभिलाभ है, जो मूर्त है या जिसे अनुभव किया जा सकता है" [2009 संस्करण, पृष्ठ 78-79] [याची द्वारा बल की पूर्ति की गई है]।

31. याची ने यह और दलील दी कि 26.02.2015 को उप मुख्यमंत्री ने सचिव से मुख्यमंत्री को नीचे दिए गए अनुसार संसूचित करते हुए एक नोट भेजा : "यह विनिश्चय किया गया है कि निम्नलिखित माननीय एमएलए (21) को संबंधित मंत्रियों का संसदीय सचिव नियुक्त किया जाए"। तथापि, उक्त नोट इस संबंध में पूर्णतया मौन था कि यह विनिश्चय किसने लिया, कब लिया और विनिश्चय कैसे लिया गया, वह पृष्ठभूमि, जिसमें ऐसेविनिश्चय की आवश्यकता पड़ी, एमएलए का नियुक्ति के लिए कैसे चयन किया गया था, क्या वह मंत्री, जिनके साथ ऐसे एमएलए की संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्ति की गई थी, से परामर्श आदि किया गया था ।

32. याची ने यह निवेदन किया है कि तारीख 13.3.2015 को संसदीय सचिवों की नियुक्ति का आदेश अधिसूचित किया गया था और इसमें यह कथित किया गया था कि वह अतिरिक्त उपलब्धियों के हकदार नहीं होंगे, तथापि वे निम्नलिखित दो सुविधाओं के हकदार होंगे :

(i) सरकारी परिवहन (शासकीय कार्य के लिए)

(ii) कार्यालय के लिए स्थान (मंत्री के कार्यालय में)

33. याची ने यह और निवेदन किया है कि यह न तो तारीख 13.3.2015 के नियुक्ति के आदेश में उल्लिखित किया गया है न ही उसके पश्चात् किसी दस्तावेज में कि संसदीय सचिवों के कर्तव्यों की प्रकृति क्या होगी । तारीख 13.3.2015 का आदेश केवल यह कहता है कि संसदीय सचिव मंत्रियों द्वारा समनुदेशित कृत्यों का पालन करेंगे । परिणामस्वरुप, कई संसदीय सचिव, मंत्रियों के कमरों में, बैठकों में उपस्थित हुए हैं, जिसमें से कुछ पुनर्विलोकन बैठकें या सलाहकारी या परामर्शी प्रकृति की बैठकें थीं । कुछ बैठकों में, नीति बनाने के या कार्यकारी विनिश्चय किए गए थे और कुछ मामलों में संसदीय सचिवों की अध्यक्षता में समिति ने "विनिश्चय किया" और विचाराधीन विषयों पर सिफारिश नहीं की थी । कुछ मामलों में, मंत्री ने अनुपस्थिति के बावजूद उसकी संवैधानिक बाध्यता अंकित की, संसदीय सचिवों ने ऐसी बैठकों की अध्यक्षता की थी, जहां महत्वपूर्ण विनिश्चय किए गए थे। इस प्रकार, कई मामलों में, संसदीय सचिवों ने मंत्रियों के आवश्यक और संवैधानिक कृत्यों का पालन किया या उन्हें पालन करने की अनुज्ञा दी गई, जो निरर्हता को आकर्षित करता है ।

34. याची ने यह और निवेदन किया है कि यद्यपि एक संसदीय सचिव ने कोई लाभ प्राप्त किया है जो उसके पद को "लाभ का पद" बना देता है तब यह तथ्य इस कोटि में आता है कि संसदीय सचिव का पद "लाभ का पद" के रूप में धारित हैं इस प्रकार

और इसलिए सभी संसदीय सचिव निरर्हित किए जान के लिए दायी होंगे कि उनके सभी पद लाभ प्राप्त करने की संभाव्यता के साथ लाभ के पद थे । याची ने इस संबंध में उच्चतम न्यायालय के जया बच्चन बनाम भारत संघ (2006) 5सीसी 266 के निर्णय पर भरोसा किया है जहां यह निर्णय दिया गया था कि जहां धनीय लाभ पद के संबंध में "प्राप्त करने योग्य" है वहां वह लाभ का पद हो जाता है।

35. याची ने यह और निवेदन किया है कि दिल्ली सरकार ने वह कमरे और कार्यालय स्थान स्वीकार किए है जो संसदीय सचिवों या विधानसभा सदस्यों को सरकार के विभिन्न विभागों जैसे कि जलबोर्ड, विकास, परिवहन, स्वास्थ्य विभाग आदि, द्वारा आबंटित किए गए थे। वे लोक निर्माण विभाग द्वारा सज्जा सामग्री आदि के साथ सुसज्जित किए गए थे । उपयोगिता बिल जैसे कि बिजली और पानी प्रभार भी सरकार द्वारा संदत्त किए गए थे । संससदीय सचिवों को कार्यालय कमरे इस प्रकार उदारता और लापरवाही के साथ दिए गए थे कि एक संसदीय सचिव ने न केवल एक बल्कि चार सुसज्जित कार्यालय (अर्थात् विधान सभा भवन में एक कार्यालय, सीपीओ भवन में दो कमरे और अरुणाआसिफ अली अस्पताल में एक कमरा) प्राप्त किए थे । यह समझ के परे है कि क्यों इस संसदीय सचिव को विभिन्न स्थानों पर चार कमरों/कार्यालयों की आवश्यकता होनी चाहिए थी और क्यों दिल्ली सरकार ने उन्हें सुसज्जित करने के लिए लोक धन खर्च किया था ।

36. याची ने यह और निवेदन किया है कि प्रारंभ में तारीख 13.3.2015 के आदेश द्वारा संसदीय सचिवों को मंत्री कार्यालय में कमरे दिए गए थे । तथापि तारीख 22.9.2015 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थियों को अनन्य रूप से दिल्ली विधान सभा में पदाभिहित कार्यालय दिए गए थे, जिसके लिए लोक निर्माण विभाग ने लोक राजकोष से 11,75,828 रुपये की रकम खर्च की थी । इसके अतिरिक्त, जीएनसीटीडी ने अपने प्रत्युत्तर के पैरा 10 में यह भी प्रकट किया है कि परिवहन मंत्री ने अपने चार संसदीय सचिवों के लिए कार्यालय कमरे का विनिर्माण करवाया था, केटीएस इंटरकाम, कंप्यूटर आदि लगवाए थे और इसके अतिरिक्त उस पर 3, 73, 871 रुपये की रकम व्यय की गई थी। इसलिए, पीडब्लूडी ने न केवल उक्त कार्यालयों पर सारभूत रकम खर्च की ; लेकिन दिल्ली विधान सभा में अनन्य कार्यालयों के उपबंधों, और 21 संसदीय सचिवों की हकदारियों में विचारणीय वृद्धि भी की थी ।

37. याची ने यह और निवेदन किया है कि दिल्ली सरकार ने उसके पत्र (फा. सं. 18.7.2016 संसदीय सचिव/जीएडी/प्रशा. 428-429) तारीख 11.2.2016 द्वारा उपराज्यपाल को यह सूचित किया था कि "दिल्ली विधान सभा परिसर में संसदीय सचिवों की बैठक की व्यवस्था और कुछ सुविधाएं (विधानसभा सदस्यों को प्रदान की जाने वाली सुविधाओं से भिन्न) दिल्ली विधान सभा सचिवालय द्वारा प्रदान की जा सकती है ।" तदनुसार 21 विधानसभा सदस्यों के लिए दिल्ली विधासभा परिसर में कमरे/केबिनों का विनिर्माण किया गया था । 23.9.2015 को विधानसभा सचिवालय ने 21 संसदीय सचिवों का नाम और प्रत्येक को आबंटित कमरा सं. अंतर्विष्ट करने वाला एक कार्यालय आदेश (सं. 16(50)/2014-15/एलएएस/सीपी/5437-5442) जारी किया था ।

38. याची ने यह और निवेदन किया है कि विधान सभा सचिवालय ने संसदीय सचिवों को कमरा आंबटित करने के लिए एक आदेश जारी किया था । विधान सभा सचिवालय ने श्री विवेक गर्ग द्वारा दाखिल आरटीआई आवेदन के प्रत्युत्तर तारीख 27.1.2016 में यह स्वीकार किया था कि कमरे आंबंटित किए गए हैं । तारीख 23 फरवरी, 2016 के पत्र में, विधान सभा सचिवालय ने उपराज्यपाल के सचिव को यह प्रत्युत्तर दिया कि "विधान सभा परिसर में मंत्रियों के संसदीय सचिवों के लिए साज-सज्जा के साथ कुछ कमरे अभिनिश्चित किए हैं" । तथापि भारत निर्वाचन आयोग ने जब जीएनसीटीडी को नोटिस जारी किया तब विधान सभा सचिवालय ने दूसरा आधार लिया ।

39. याची ने यह और निवेदन किया है कि संसदीय सचिवों को दी गई सुविधाएं और भत्ते केवल इस प्रभाव की विधि के अधिनियमन द्वारा प्रदान किया जा सकता था और अन्यथा नहीं । सदस्यों के विभिन्न प्रवर्ग जैसे कि मंत्री विपक्ष के नेता, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मुख्य सचेतक आदि को सुविधाएं, भत्ते आदि केवल विधायन के द्वारा प्रदान किए गए हैं । तथापि, संसदीय सचिवों को बिना किसी विधि में समर्थन के सुविधाएं और भत्ते प्रदान किए गए थे ।

40. याची ने यह और निवेदन किया है कि तारीख 13.3.2015 का नियुक्ति का आदेश विधान सभा सदस्यों को निम्न प्रदान करता है और उसका हकदार बनाता है –

(क) संबंध मंत्री कार्यालय में कार्य के लिए स्थान और,

(ख) सरकारी परिवहन या चालक सहित कार

परंतु यह उक्त् विधान सभा सदस्यों पर कोई कर्तव्य या उत्तरदायित्व नहीं अधिरोपित करता है। इसलिए, प्रत्यर्थी विधान सभा सदस्यों को बिना कोई कर्तव्य या उत्तरदायित्व समनुदेशित किए कार और कार्यालय स्थान दिया गया था । जीएनसीटीडी द्वारा अपने तारीख 20.9.2016 (पैरा 7) के प्रत्युत्तर में यह तथ्य भी स्वीकार किया गया है, जहां यह स्वीकार

किया गया था कि वहां किसी न आदेश द्वारा, न ही किसी संबद्ध मंत्री द्वारा मंत्री के संसदीय सचिवों द्वारा पालन किए जाने वाले कर्तव्य या कार्य की प्रकृति को विनिर्दिष्ट किया था । जीएनसीटीडी ने यह और स्वीकार किया है कि संसदीय सचिवों के कर्तव्य पहली बार सीडब्लूपी सं. 4714/2015 में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष जीएनसीटीडी द्वारा दाखिल तारीख 6/10/2015 के प्रति शपथ पत्र में साथ ही साथ तारीख 13.06.2015 को भारत निर्वाचन आयोग के समक्ष जीएडी द्वारा दाखिल आवेदन में स्पष्ट की गई थी, इस प्रकार प्रत्यर्थी एनएलए को प्रदान की गई सुविधाएं जैसे कि कार्यालय का स्थान और सरकारी यान/चालक सहित कार जिसका व्यय, इन संसदीय सचिवों द्वारा पालन किए जाने वाले कर्तव्यों/उत्तरदायित्वों को जाने बिना, लोक राजकोष से किया गया था । इस प्रकार उक्त महत्वपूर्ण प्रसुविधाएं लाभ के पद के सिद्धांत के अधीन यथाविचारित किए गए "लाभ", के समान है । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थियों को उक्त सुविधा/भत्तों का हकदार बनाना , प्रत्यर्थी विधायकों के कर्तव्य और हित के मध्य मतभेद घटित करने में समर्थ प्रसुविधा थी – ऐसी सुस्पष्ट त्रुटि अनुच्छेद 102/191 और जीएनसीटीडी अधिनियम,1991 कीधारा 15 के अधीन निरर्हता को आकर्षित करती है ।

41. याची ने यह और निवेदन किया है कि पद "लाभ का पद" है कि नहीं इसका परीक्षण करने के लिए वास्तविक परीक्षा यह जांच करना है कि क्या कर्तव्यों और व्यक्तिगत हित के मध्य मतभेद की कोई संभावना है । इस संबंध में उसने माननीय उच्चतम न्यायालय के अशोक कुमार भट्टाचार्य बनाम अजय विश्वास (1985) 1एससीसी 151 द्वारा किए गए अवलोकन पर विश्वास किया है जो निम्नानुसार है :

"16. अनुच्छेद 102(1)(क) के उपबंध के पीछे वास्तविक सिद्धांत यह है कि निर्वाचित सदस्य के कर्तव्य और हितों के मध्य कोई मतभेद नहीं होना चाहिए । सरकार विभिन्न क्षेत्रों में क्रियाकलापों और विभिन्न उपायों को नियंत्रित करती है । परंतु यह निर्णय करना कि सरकार के नियंत्रण के अधीन कोई प्राधिकारी या स्थानीय प्राधिकारियों के कर्मचारी, सरकारी कर्मचारी होत हुए सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करते हैं या नहीं, कर्मचारियों के ऊपर सरकार द्वारा किए जाने वाले नियंत्रण के उपाय और प्रकृति प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में निर्णीत किया जाना चाहिए ताकि उसकी व्यक्तिगत हित और कर्तव्यों के मध्य संभावित मतभेद को टाला जा सके।

20. जैसा कि हमने पूर्व में उल्लेख किया है कि उपबंधों जैसे कि अनुच्छेद 102(1) (क) और अनुच्छेद 191 (1) (क) के उपबंधों को अधिनियमित करने का उद्देश्य यह है कि व्यक्ति जो विधानसभा या संसद के लिए निर्वाचित किया जाता है, वह अपने कर्तव्यों का निडरता से किसी सरकारी दबाव के अधीन हुए बिना निर्वहन करने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए । खंड (क) के अधीन प्रयुक्त पद "सरकारी के अधीन लाभ का पद" एक ऐसी अभिव्यक्ति है जो सरकार के अधीन धारण किए गए पद से अधिक महत्वपूर्ण है जिसे संविधान के भाग 14 के अधीन निपटाया जाता है । स्थानीय प्राधिकारी के ऊपर सरकार द्वारा नियंत्रण के उपाय को कर्तव्य और हित के मध्य संभावित मतभेदों को दूर करने तथा निर्वाचित निकायों की शुद्धता को बनाए रखने के क्रम में निर्णीत किया जाना चाहिए । विभिन्न मामलों की और उत्तर प्रदेश आधार भूत शिक्षा अधिनियम, 1972 की विभिन्न धाराओं के उपबंधों की, विशेषकर अधिनियम की धारा 13 के संबंध में, समीक्षा करने के पश्चात् कोर्ट ने अंतिम उल्लिखित मामले में यह निर्णय दिया है कि नियंत्रण के उपाय यह थे कि उत्तर प्रदेश शिक्षा बोर्ड जो सरकार से वास्तविक रुप में स्वतंत्र नहीं था और बोर्ड का प्रत्येक कर्मचारी वास्तव में राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद धारण कर रहा था । उत्तर प्रदेश आधार भूत शिक्षा अधिनियम, 1972 और धारा 4,6,7,13 और 19 के कथन और उद्देश्य जो सभी इस विनिश्चय के विस्तार में स्थापित किए गएहै इस निष्कर्ष को आरोध्य बनाते हैं ।" (जोर दिया गया है)

42. याची ने यह और निवेदन किया है कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इस सिद्धांत को अधिकथित करने के पीछे विचार निर्वाचित प्रतिनिधियों (एम पी और एमएलए) को उनके विधायी कृत्यों के निर्वहन के मुख्य दायित्व को कार्यपालिका के प्रभाव से सुरक्षित करना है । इस संबंध में उसने बृजराज सिंह तिवारी बनाम अन्य (विंध्या प्रदेश विधानसभा सदस्य) के मामले में निर्वाचन आयोग द्वारा तारीख 2 मार्च, 1953 को दी गई राय पर भरोसा किया है । जहां आयोग ने निम्न निर्णय दिया है :

"यदि कार्यकारी सरकार विधायिका की कोई नियुक्ति, स्थिति या पद देने की शक्ति को जकड़ देती है तथापि वे उन्हें वर्णित कर सकते हैं जो उनके साथ कुछ प्रकार के और अन्य भत्ते धारण करते हैं यहां एक स्पष्ट जोखिम है कि व्यष्टि सदस्य स्वयं को कार्यकारी सरकार द्वारा जकड़ा हुआ महसूस करे और इस प्रकार विधायिका के सदस्य के रुप में और उसके निर्वाचकों के वास्तविक प्रतिनिधि के रुप में उसके सोचने और कार्य करने की स्वतत्रता खो देता है। "

43. आयोग की उपरोक्त वर्णित संप्रेषण पर निर्भर करते हुए याची ने यह और निवेदन किया है कि प्रत्यर्थी विधान सभा सदस्यों ने मंत्रियों के संसदीय सचिवों के रुप में नियुक्त किए जाने के द्वारा स्वयं को कार्यपालिका के प्रभाव के अधीन अरक्षित छोड़ दिया है और इस प्रकार, उनकी विधायक के रुप में मुख्य और स्वतंत्र भूमिका और निर्वाचकों का प्रतिनिधित्व, ऐसी नियुक्ति के द्वारा सीधे रुप से प्रभावित हुआ है ।

44. याची ने यह और निवेदन किया है कि प्रत्यर्थी संसदीय सचिव के पद पर नियुक्त किए गए थे और इसके द्वारा उन्हें दिल्ली विधान सभा के अन्य बाकी विधान सभा सदस्यों के ऊपर आधार प्रदान किया गया था क्योंकि प्रत्यर्थी विधान सभा सदस्यों की हकदारी साधारण विधान सभा सदस्यों की हकदारी के ऊपर और अधिक थी । प्रत्यर्थियों को उनके मेहमानों के मनोरंजन के लिए अनुज्ञात की गई सुविधाएं कार्यलय, कार, टेलीफोन, आदि लोक राजकोष की लागत पर थी । उसने यह और निवेदन किया है कि यह नियुक्तियां अप्रत्यक्ष रुप से प्रत्यर्थी विधानसभा सदस्यों को ऐसी सुविधाएं जो मंत्रियों को उपलब्ध सुविधाएं के सदृश हैं प्रदान करने के लिए युक्ति है ।

45. याची ने बिहारी लाल दोबारे बनाम रोशन लाल दोबारे (1984)1 एससीसी 551 में माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय पर और भरोसा किया है जहां माननीय न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि बोर्ड के अध्यक्ष का पद नीचे दिए गए पैरा में उल्लिखित तथ्यों के आधार पर "लाभ का पद" है :

"20. हमारा यह मत है कि वर्तमान मामला इस न्यायालय के रामलाल केशव लाल सोनी मामले (1983) 2 एससीसी 33: 1983 एसीसीसी (एलएंडएस) 231 : (1983) 1 एलजेजे 284 में दिए गए निर्णय द्वारा अधिकथित सिद्धांतों से शासित होता है । बोर्ड के कर्मचारियों के कृत्य राज्य के कार्यों से संबंधित है । बोर्ड का व्यय मुख्य रुप से राज्य सरकार द्वारा उसकी निधि से दिए गए धन से पूरा होता है । शिक्षक और अन्य कर्मचारी नियमों के अनुसरण में ऐसे अधिकारियों से स्वयं सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं, द्वारा नियुक्त किए जाते हैं । कर्मचारियों के संबंध में अनुशासनात्मक कार्यवाहियां यथास्थिति, राज्य सरकार और अन्य अधिकारियों के अंतिम विनिश्चय के अध्यधीन रहते हुए होती हैं ।" (जोर दिया गया है)

46. याची ने यह और निवेदन किया है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने जया बच्चन भारत संघ (2006) 5 एससीसी 266 के मामले में यह निर्णय दिया है कि लाभ की प्रकृति का अवधारण करते समय क्या विचार करने की आवश्यकता है यह प्ररुप के बजाए, सार का मामला है ।उक्त मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि महत्वपूर्ण लाभ, जैसे कि राज्य के व्यय पर किराया मुक्त आवास, चालक के साथ कार, स्पष्ट रुप से पारिश्रमिक की प्रकृति के थे और धनीय लाभ का स्रोत भी थे। तथा इस प्रकार "लाभ का पद" गठित करते है । इसके अतिरिक्त, जया बच्चन भारत संघ (ऊपर) में उपरोक्त सुविधाएं लाभ के पद के अधीन निर्हताओं को आकर्षित करने वाली निर्णीत की गई थी यहां तक कि अधिकारियों के कर्तव्य भी इस मामले में परिभाषित किए गए थे । तथापि, इसका ऊपर पहले से ही उल्लेख किया गया है । प्रत्यर्थी विधान सभा सदस्यों के कर्तव्यों उनकी नियुक्ति के समय ज्ञात नहीं थे, लेकिन उक्त तथ्यों के बावजूद उपरोक्त उल्लिखित सुविधाएं प्रदान की गई थी । उसने यह और निवेदन किया है कि जीएनसीटीडी द्वारा प्रस्तुत तारीख 13.3.2015 के नियुक्ति आदेश के अवलोकन से, यह निर्विवादित तथ्य है कि संसदीय सचिव नियुक्त किए जाने के पश्चात् 21 विधान सभा सदस्य चालक सहित कार के हदकार थे । इसके अतिरिक्त जीएनसीटीडी ने यह भी कहा है कि प्रत्यर्थियों में से एक को परिवहन व्यय के रुप में 15479 रुपये की प्रतिपूर्ति भी की गई थी । इस प्रकार, कार्यालय के स्थान और चालक के साथ कार/परिवहन स्पष्ट रुप से प्राप्त करने योग्य महत्वपूर्ण लाभ थे जिसके लिए उक्त पद पर नियुक्त किए जाने के पश्चात 21 विधान सभा सदस्य हकदार थे । इस प्रकार संसदीय सचिवों को सुविधाएं प्रदान करने के लिए ऐसे आधार रहित उपबंध बिना किसी कर्तव्य के "लाभ का पद" सिद्धांत के अधीन "लाभ" के समान है ।

47. याची ने यह और निवेदन किया है कि दिल्ली विधान सभा सदस्यों को प्रदान किए जाने वाला अनुज्ञेय अधिकतम भत्ता "प्रतिकरात्मक भत्ता" है और संसदीय सचिवों को उपलब्ध कराए जाने वाले भत्तें "प्रतिकरात्मक भत्ते" की श्रेणी में नहीं आते क्योंकि दिल्ली विधान सभा सदस्य (निरहर्ताओं का हटाया जाना) अधिनियम, 1997 "प्रतिकरात्मक भत्ते" को निम्न प्रकार परिभाषित करता है :

"प्रतिकरात्मक भत्ते" से दैनिक भत्ते (ऐसा भत्ता जो दैनिक भत्ते की रकम से अधिक नहीं होगा जिसका विधान सभा सदस्य, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के विधान सभा सदस्य (वेतन, भत्ते, पेंशन आदि,) अधिनियम, 1994 दिल्ली अधिनियम सं. 6 1995) के अधीन हकदार है । द्वारा किसी पद के धारक को देय रकम, परिवहन भत्ता, मकान किराया भत्ता या यात्रा भत्ता जो उसे उस पद के कृत्यों के पालन में निर्वहन किए गए किसी व्यय की पूर्ति के लिए समर्थ बनाने के प्रायोजन के लिए है, अभिप्रेत है । (जोर दिया गया है)

48. याची ने और प्रस्तुत किया है परिवाद तारीख 19.06.2015 के पश्चात् 23.06.2015 को "विधान सभा के दिल्ली सदस्य (निरर्हता का हटाना) (संशोधन) विधेयक, 2015" पुर:स्थापित किया गया था, लाभ के पद धारण के कारण निरर्हता से विधान सभा के सदस्यों को प्रत्यर्थी केवल बचाने के लिए है । जीएनसीटीडी अधिनियम की धारा 15 के अधीन यथा-परिकल्पित लाभ के पद धारण के लिए निरर्हता में आने से संसदीय सचिवों के रूप में इन विधान सभा के सदस्यों की नियुक्ति की कोटि में है । उक्त तथ्य उक्त अधिनियम के "उद्देश्यों और कारणों के कथन" के कोश परिशीलन से भी सुव्यक्त है, जिसमें

जीएनसीटीडी मान्यताप्राप्त है कि मंत्रियों को संसदीय सचिवों के पद लाभ के पद के कारण और क्रमश: निरर्हता हटाने के लिए चाहा गया है । उक्त के सुसंगत भाग को निम्नानुसार पढ़ा जा सकता है :

"दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र अधिनियम, 1991 की उपधारा (1) का खंड (क) यह उपबंध करता है कि कोई व्यक्ति भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार या कोई संघ राज्यक्षेत्र संसद् द्वारा की गई विधि या किसी राज्य के विधान द्वारा या दिल्ली की विधान सभा या किसी अन्य संघ राज्यक्षेत्र, जो इसके धारक निरर्हित ना करते हुए राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद यदि धारण करता है, विधान सभा होते हुए चुने हेतु निरर्हित होगा ।"

"घोषणा के लिए दिल्ली विधान सभा के सदस्य (निरर्हता को हटाना) अधिनियम, 1997 का संशोधन करना आवश्यक है कि दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र के मुख्यमंत्री और मंत्री के लिए संसदीय सचिव का पद निरर्हित नहीं होगा और दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र के विधान सभा के सदस्य चुने जाने के लिए निरर्हित के पास कभी नहीं समझा जाएगा ।" [महत्व देते हुए पूर्ति करते हुए]

49. याची ने और प्रस्तुत कया है कि व्यवहार प्रयोजनों के लिए कोई संसदीय प्रणाली, संसदीय सचिव का पद वह मंत्री के लिए समतुल्य रूप से समझा माना जाएगा, भारत में भी, लोक सभा और राज्य सभा और राज्य विधान मंडल में प्रक्रिया के नियम और कार्य संचालन इसके साथ संसदीय सचिव सम्मिलत करते हुए "मंत्री" पद को परिभाषित किया गया है । उदाहरण के लिए :

लोक सभा नियम 'मंत्री' पद इस प्रकार परिभाषित किया गया है :

"मंत्री" से अभिप्रेत है जिसमें मंत्रियों की परिषद् का कोई सदस्य अभिप्रेत है और इसमें मंत्रिमंडल का सदस्य, राज्य मंत्री, उप मंत्री या संसदीय सचिव सम्मिलित है ।

राज्य सभा नियम "मंत्री" पद को इस प्रकार परिभाषित किया गया है :

"मंत्री" से मंत्रियों की परिषद्, राज्य मंत्री, उप मंत्री या कोई संसदीय सचिव अभिप्रेत है ।

हिमाचल प्रदेश विधान सभा :

"मंत्री" से मंत्रियों की परिषद् का सदस्य, मुख्य संसदीय सचिव या संसदीय सचिव अभिप्रेत है ।

पंजाब विधान सभा :

"मंत्री" से मंत्रियों की परिषद् का सदस्य, राज्य मंत्री, उप मंत्री, कोई मुख्य संसदीय सचिव या कोई संसदीय सचिव अभिप्रेत है ।

पश्चिमी बंगाल विधान सभा :

"मंत्री" से मंत्रियों की परिषद्, राज्य मंत्री, उप मंत्री, कोई मुख्य संसदीय सचिव या कोई संसदीय सचिव अभिप्रेत है ।

50. याची ने और प्रस्तुत किया है कि उस दिन कुछ नहीं है कि जीएनसीटीडी द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से यह स्पष्ट है क उक्त संसदीय सचिवों की बैठक में उपस्थित थे, जो प्रकृति में सलाहकारी नहीं थी और वस्तुत: उक्त संसदीय सचिवों ने विधि के अनुमोदन के बिना प्रक्रियाओं के निर्णय में भागीदारी थी । इसलिए यह स्पष्ट है कि उक्त संसदीय सचिवों ने प्रभावी और शक्तियों का प्रयोग और आश्रय की स्थिति है । इसके अतिरिक्त कुल मिलाकर, संसदीय सचिवों ने कैबिनेट मंत्रियों के लिए समान रूप है और सुविधाएं उपलब्ध करा रहे थे और विधि किसी अनुमोदन के बिना प्रशासन पर प्रभाव का प्रयोग कर रहे थे ।

51. याची ने और प्रस्तुत किया है कि भारत के संविधान में अभिव्यक्त कहा गया है कि यह अनुच्छेद 239कक के खण्ड (4) में उपबंध करता है कि दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में मंत्रियों की परिषद् में "विधान सभा में कुल संख्या के दस प्रतिशत से कम से कम" मिलकर बनेगी । जैसे कि विधान सभा की संख्या 70 है, सदस्यों की संख्या, जिसमें मंत्रियों की परिषद् नियुक्त कर सकताहै, इससे नहीं । अत: सात से अनधिक, इसलिए मंत्रियों की संख्या में वृद्धि चार फोल्ड को परिमाणित मुख्य मंत्री (द्वारा फा0सं0 17/57/2012/जीएडी/संसदीय सचिव, तारीख 13.3.2015) के अनुमोदन से मुख्य सचिव (जीएडी) द्वारा जारी दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की सरकार, मंत्रियों को संसदीय सचिवों के रूप में दिल्ली विधान सभा के 21 सदस्यों की नियुक्ति आदेश जारी किया गया । संसदीय सचिवों के 21 के रूप में नियुक्ति के साथ, 7 मंत्रियों के लिए अधिक पहले ही स्थान है, मंत्रियों की परिषद् की संख्या संवैधानिक प्रतिरोध के अतिक्रमण में कुल संख्या 28 तक पहुंच गई थी, जबकि मंत्रियों के रूप में सदस्यों की संख्या दस प्रतिशत से अधिक न हो ।

52. प्रत्यर्थी ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि धनीय वित्तीय अभिलाभ नहीं है जो उद्भूत है, इस प्रकार संसदीय सचिव "पद का लाभ" के रूप में समझा नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 08.09.2016

की दृष्टि में एतदद्वारा माननीय न्यायालय ने अवैध और असंवैधानिक के रूप में तारीख 13.3.2015 के आदेश की नियुक्त को अपास्त किया था, संसदीय सचिव का पद नहीं है, अत: प्रत्यर्थी ने पद का लाभ कभी नहीं अभिनिर्धारित किया गया है ।

53. प्रत्यर्थी ने और प्रस्तुत किया है कि जीएनसीटीडी का उत्तर में न्याय संगत है जो प्रत्यर्थियों ने पुष्टि की है:

i. जीएडी द्वारा संसदीय सचिवों को जब कभी कर्तव्यों को समनुदेशित नहीं किया गया है ।

ii. 21 संसदीय सचिवों के कर्तव्यों को जारी आदेश किसी स्थायी आदेश में उल्लिखित विभागों ने कोई उल्लेख नहीं मिलता है ।

iii. नियुक्ति से संबंधित दस्तावेज नहीं है, यह उपबंध करता है कि कर्तव्यों/कार्य की प्रकृति के बारे में वर्णन/न्यायोचित/संदर्भ के निबंधन/आशयित परिणाम उपबंध करता है ।

iv. मुख्य सचिव को प्रधान सचिव के पत्र तारीख 20.07.2015 के अनुसार, सभी विधान सभा के सदस्यों ने उनके अपने-अपने संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र में स्थान कार्यालय में उपबंध किए गए थे । सभी 70 विधान सभा के सदस्य ध्यान किए बिना मुख्यमंत्री, मंत्री, विपक्ष के नेता, आदि उन्हीं को उपबंधित किया गया था ।

v. संसदीय सचिव ने दिल्ली विधान सभा में किसी कमरा/कार्यालय में आबंटित किए गए जब कि आदेश तारीख 23.9.2015 द्वारा आदेश के पढ़ने से स्पष्ट है, जिसे कार्यालय आबंटित का निर्णय किया गया था, जो कि प्रास्थगित किया गया था ।

vi. संसदीय सचिवों को किसी प्रकृति का समर्थनकारी कर्मचारिवृंद नहीं प्रदान किया गया ।

vii. विधान सभा के सदस्यों को कोई निवास आबंटित नहीं किया गया, जो संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्त किया गया था ।

viii. किसी टेलीफोन कनेक्शन के लिए कोई हकदारी कोई संसदीय सचिवों को प्रदान नहीं किया गया है।

ix. किसी संसदीय सचिव द्वारा धनीय संबंधी फायदा वेतन कभी भी दिए या दावा नहीं किया गया है ।

x. संसदीय सचिव का पद विद्यमान नहीं रहता है क्योंकि तारीख 8.9.2016 आदेश द्वारा असंवैधानिक होने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा उसी को अभिनिर्धारत किया गया है ।

54. प्रत्यर्थी ने और प्रस्तुत किया है कि जीएनसीटीडी द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज अभिलेख में कोई बात नहीं की गई है जिसे यहां तक कि विविक्त होकर सुझाव किया है कि प्रत्यर्थी द्वारा अभिनिर्धारित पद का लाभ भी था ।

55. प्रत्यर्थी ने और प्रस्तुत किया किसी जीएनसीटीडी द्वारा फाइल किए गए दस्तावेजें स्थापित किया गया है जिसने संसदीय सचिवों न तो कहा न ही सरकार की प्रक्रिया के निर्णय में सक्रियता से भाग लिया था ।

56. प्रत्यर्थी ने और प्रस्तुत किया है कि आवश्यक फर्नीचर के साथ केबिन संनिर्माण के लिए लोक निर्माण विभाग द्वारा खर्च किए गए 3,73871 रुपए की रकम, जिसे प्रत्यर्थी द्वारा धनीय लाभ के सबूत के लिए था । 70 एमएलए और 21 संसदीय सचिवों के अलावा व्यय 11,75,828 संसदीय सचिवों पर था किन्तु सभा भवन पूर्ण के लिए कुर्सी, मेज, विजीटर कुर्सी आदि है ।

57. प्रत्यर्थी ने श्री विवेक गर्ग द्वारा फाइल किए गए उत्तर में सूचना का अधिकार में और प्रस्तुत किया गया है इस प्रकार आयोग द्वारा निर्णय व्यतीत किया गया ।

58. प्रत्यर्थी ने और प्रस्तुत किया कि हित में कोई संघर्ष नहीं है, जो कि दृश्यमान और किसी योग्यता के फायदा के हित में संघर्ष बहस है ।

विचाराधीन मुद्दे

59. निम्नलिखित मुद्दों को विश्लेषित और उत्तरित किए जाने के लिए है जो वर्तमान संदर्भ के उत्तर के आदेश है :

I. क्या प्रत्यर्थी ने विधान सभा के सदस्य ने संसदीय सचिव का पद अभिनिर्धारित किया गया था ?

II. क्या सरकार के अधीन संसदीय सचिव का पद धारण कर रहा है ?

III. क्या यह पद है जिसने सुनम्य लाभ मिला है या सारवान सुनम्य लाभ मिला है ?

IV. क्या संसदीय सचिव का पद जिसने कृत्यों की कार्यकारणी प्रकृति है ?

V. क्या संसदीय सचिव का पद जिसे लाभ का पद में जिसे छूट प्राप्त की गई है?

विधि प्रास्थिति का विश्लेषण

60. संदर्भ मामले में तथ्य कोई संदेह नहीं है कि तथ्य को ध्यान किए बिना सिद्धांत "लाभ का पद" कार्यक्षेत्र के भीतर आने वाले के लिए संसदीय सचिव का पद अपेक्षित है । इन प्रत्यर्थियों ने किसी विधि या आदेश द्वारा पद ऐसे सृजन किए बिना संसदीय सचिवों को नियुक्त किया गया है ।

61. माननीय उच्चतम न्यायालय ने 'सरकार के अधीन' पद का लाभ धृति की अवधारण को निर्धारित किया गया है, निम्नानुसार रीति में—

मौलाना अब्दुल शाकुर बना रिखब चंद [1958 सीएस और 387, एआईआर 1958 एससी 52] उच्चतम न्यायालय में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है ।

"12. सरकार की शक्ति अवधारण में महत्वपूर्ण कारक है । सरकारी राजस्वों में से उनके विवेक और संदाय, जो पद या प्रतिसंहरण में लगातार लाभ का पद जो नियुक्त करता है । चाहे स्रोत से संदाय यद्यपि सरकार के अधीन लाभ का पद धारण कर रहा है, सरकार राजस्व सदा ही निर्णायक कारक नहीं है ।"

गुरु गोविंदा बासु बनाम शंकरी प्रसाद घोषाल [(1964) 4 एससीआर 311:एआईआर 1964] माननीय उच्चतम न्यायालय में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है :--

"14.(...) हम यह कहने के लिए संकोच नहीं है जहां अनेक तत्व, नियुक्ति की शक्ति, पदच्युत करने, नियंत्रण की शक्ति और रीति के बारे में निदेशों देते हैं जिसे पद के कर्तव्य निष्पादित किया जाना है और दिए गए मामले में सभी पारिश्रमिक मामले में प्राधिकार के लिए सशक्त है ।"

बिहारी लाल डोबरे बनाम रोशन लाल डोबरे (1984) एसएससी 551 उच्चतम न्यायालय निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है :

"5. अनुच्छेद 191(1)(क) अधिनियमति के उद्देश्य सादा है । कोई व्यक्ति जो शासकीय दबाव के कारण अधीन बिना अपने कर्तव्यों निष्पक्ष क्रियान्वित करने के लिए विधान चुने हैं । यदि ऐसा व्यक्ति जो पद धारण कर रहा है जो पारिश्रमिक पद धारण कर रहा है । सरकार उस लगातार है, सरकार की इच्छज्ञ के लिए जीविका अनुच्छेद 191(क) कर्तव्य और हित में आशय है और विधान मंडलों में शुद्धता बनाए रखने के लिए है । संविधान के भाग 14 में बरता किया गया था आयात व्यापक पद में कहा गया है । सरकार के अधीन लाभ के पद धारण के लिए, व्यक्ति सरकार की सेवा आवश्यकता की नहीं है और मास्टर या सेवा के बीच रिश्ते की आवश्यकता नहीं है । लाभ का पद दो तत्व अंतर्वलित है अर्थात पद होना चाहिए और कुछ पारिश्रमिक होना चाहिए । कोई व्यक्ति सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करता है, सामान्यत: परीक्षण किए गए हैं क्या पद धारण के लिए हटाए जाने या पदच्युत का अधिकार क्या सरकार पारिश्रमिक संदाय करता है ; क्या सरकार के लिए उसके द्वारा क्रियान्वयन धारक कृत्यों को निष्पादित करता है और धारक कर्तव्यों और कृत्यों का नियंत्रण करता है सरकार के अधीन लाभ के पद के लिए विशिष्टतापूर्ण है । सरकार को सभी परीक्षणों में समाधान होना चाहिए । इस न्यायालय द्वारा अनेक विषय के मामले सही प्रकृति का अवरोह है न्यायालय यद्यपि सरकार के अधीन पद का लाभ अनन्य रूप की विशिष्टियां हैं यद्यपि न्यायालय को संदेह नहीं है प्रत्येक ऐसा मामला जहां विशिष्ट रूप से पद में यह सम्मिलित था ऐसा पद या इसकी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए है [बल आपूर्ति] प्रत्युत बोरडोलोई बनाम स्वपन राय [(2001) 2 एससीसी 19] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया है :

"6. "लाभ का पद" वाक्यांश को संविधान में नहीं परिभाषित किया गया है (अब्दुल शकूर बनाम रिखाब चंद [एआईआर 1958 एससी 52:1958 एससीआर 387] देखें ; एम रामप्पा बनाम संगप्पा [एआईआर 1958 एससी 397 : 1959 एससीआर 1167] ; गुरु गोविन्द बासु बनाम शंकरी प्रसाद घोषाल [एआईआर 1964 एससी 254 : (1964) 4 एससीआर 311] और शिवमूर्ति स्वामी ईनामदार बनाम अगादी संगन्ना अन्दन्प्पा [(1971) 3 एससीसी 870] के विनिश्चयों की ऋंखला द्वारा इस न्यायालय ने अधिकथित किया है कि बाहर से प्राप्त करने हेतु ऐसा परीक्षण जहां पद का प्रश्न सरकार के अधीन लाभ का पद है, ये परीक्षण हैं (1) क्या सरकार नियुक्ति करती है ; (2) क्या सरकार को धारक को हटाने अथवा पदच्युत करने का अधिकार है ; (3) क्या सरकार पारिश्रमिक का संदाय करती है ; (4) धारक के क्या कृत्य हैं ; क्या वह सरकार के लिए कार्य करते हैं ? और (5) क्या सरकार उनके कृत्यों के व्यवहार्य के ऊपर कोई नियंत्रण करती है ?

7. गुरु गोविंद बसु बनाम शंकरी प्रसाद घोषाल [एआईआर 1964 एससी 254 ; (1964) 4 एससीआर 311] में संविधान पीठ ने सरकार के अधीन लाभ के पद के धारक और सरकार के अधीन पद या सेवा के धारक के मध्य भेदभाव पर जोर दिया है और धारित किया है कि सरकार के अधीन लाभ के पद को धारण करने हेतु सरकार की सेवा में एक की आवश्यकता नहीं है और उनके बीच में मास्टर और सेवक के संबंध में कोई आवश्यकता नहीं है, प्रश्न के अवधारण में विभिन्न तथ्य निम्नलिखित हैं (i) नियुक्ति प्राधिकारी ; (ii) नियुक्ति समाप्त करने की शक्ति प्राधिकार के साथ विहित हैं ; (iii) प्राधिकारी, जिसने पारिश्रमिक अवधारित किया गया है ; (iv) ऐसे स्रोत, जिसे पारिश्रमिक संदत्त किया गया है ; (v) रीति में नियंत्रण के लिए शक्ति प्राधिकार में विहित है, जिसमें पद कर्तव्यों को निर्मुक्त कर दिया गया है । लेकिन ये कारक विद्यमान की आवश्यकता नहीं है । सरकार के अधीन लाभ के पद अवरोह परीक्षण है, नियुक्ति का परीक्षण प्रत्येक मामले के तथ्यों पर अन्य दबाव परीक्षण होंगे । स्रोत, जिसके लिए अवरोह या तात्विक स्वयं संदत्त नहीं किया गया है ।

14. जटिल समस्या का सामना –क्या कोई व्यक्ति सरकार के अधीन पद धारण करता है, प्रथम और सर्वप्रथम पूछा जाने वाला प्रश्न यह है :क्या सरकार को किसी व्यक्ति को पद परि नियुक्त करने और उससे हटाने की शक्ति प्राप्त है ? यदि उत्तर नकारात्मक है तो और जांच की आवश्यकता नहीं है क्योंकि बुनियादी अवधाराणत्मक परीक्षा असफल रहा है । यदि उत्तर सकारात्मक है तो शिवमूर्ति वाले मामले [(1971) 3 एस. सी. सी. 870] में विरचित प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए और जांच की जाएगी और यह तलाश किया जाएगा कि गुरु गोविंद बासू वाले मामले [ए.आई.आर. 1964 एस. सी. 254(1964) 4 एस. सी. आर. 311)] में इंगित अकारणों में से कितने विद्यमान हैं ? सुसंगत अधिनियम, यदि कोई है के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए तथ्यों और परिस्थितियों की पूर्ण रूप से समीक्षा की जाएगी जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि क्या कोई धारित पद सरकार के अधीन है । जिज्ञासु सामान्य रूपरेखा की दृष्टि से अंतिम शंका होगी: क्या सरकार ऐसा पद धारण करने के परिणामस्वरूप, विधान सभा के सदस्य के रूप में उसके काम करने की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करके उसे प्रभावित करने का स्थिति में होगी और/या उसके द्वारा दो पद धारण करने – एक सरकार के अधीन और दूसरा विधानसभा का सदस्य होने के कारण परस्पर हितों का विरोध है ? इस प्रकार से वादबिन्दु विरचित होंगे और उनका निपटारा किया जाएगा ।"

[बल दिया है]

62. ऊपर उल्लिखित पैराओं पर यह विश्लेषण करने के लिए अवलंब लिया जा सकता है कि क्या संसदीय सचिव का पद सरकार के अधीन कोई पद है या नहीं । यह एक निर्विवादित और स्पष्ट तथ्य है कि संसदीय सचिवों की नियुक्ति दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की सरकार द्वारा की गई थी और नियुक्ति आदेश को प्रतिसंहृत करके या अन्यथा उन्हें राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की सरकार द्वारा हटाया जा सकेगा और इस पद से संबद्ध प्रत्येक व्यय सरकार के राजस्व से संदत्त किया गया था । किसी संसदीय सचिव द्वारा किया जाने वालाकार्य संबंधित मंत्री द्वारा आबंटित किया गया था और कार्य या तो प्रत्यायोजित प्राधिकार द्वारा किया जाना था या अधीक्षण प्राधिकार में मंत्री को वापस होना था और दोनों ही मामलों में इस पद को धारित करने वाले कृत्यकारी पर सरकार का प्रत्यक्ष और निरंतर नियंत्रण था । अतः तथ्य पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि संसदीय सचिव का पद सरकार के अधीन था ।

63. इस संबंध में सिद्धांत 'लाभ का पद' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का कथन करना भी आवश्यक है जैसाकि उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान सोसायटी बनाम भारत संघ [(2009) 9 एस.सी. सी. 648] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा खोज की गई और सम्प्रेक्षित किया गया ।

'लाभ का पद' अभिव्यक्ति को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है और यह मत कि कतिपय पद या प्रास्थिति जो किसी विधानमंडल के सदस्य द्वारा धारित की गई हैं, या तो जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि के रूप में उसके कर्तव्यों के साथ असंगत हैं, या उसकी स्वतंत्रता को प्रभावित करती हैं और इस प्रकार उसके निर्वाचन क्षेत्र के प्रति उसकी वफादारी को कमजोर करती है और इसीलिए उसका धारक निर्योग्य ठहराया जाना चाहिए । इसका मूल यूनाइटेड किंगडम के संसदीय इतिहास में है ("लाभ के पद पर भार्गव समिति रिपोर्ट की प्रस्तावना" तारीख 22 अक्तूबर, 1955) । न्यायालय ने यूनाइटेड किंगडम में 400 शताब्दियों पहले 'लाभ का पद' के इतिहास की खोज की और चार चरणों में इसे वर्गीकृत किया । पहला चरण "विशेषाधिकार" था (1640 से पूर्व) । दूसरा चरण "भ्रष्टाचार" था (1640 से) । तीसरा चरण "अननुसचिवीय जिम्मेदारी" था (1705 के पश्चात्) ।

पहले चरण में, इंग्लिश संसद ने अपने सदस्यों की सेवाओं पर प्राथमिकता का दावा किया और यदि उसके किसी सदस्य ने कोई अन्य पद स्वीकार किया, जिसमें समय और ध्यान की आवश्यकता होती है, तो इसे विशेषाधिकार का अपमान समझा गया । इससे यह विचारधारा विकसित हुई कि कतिपय पद धारित करना संसद के किसी सदस्य की जिम्मेदारियों के असंगत है ।

दूसरे चरण के दौरान क्राउन और हाउस आफ कॉमन के बीच दीर्घकालिक टकराव रहा । किंग के प्रति वफादारी और जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व करने वाले हाउस आफ कॉमन की वफादारी अनम्य होती गई और यह सोचा गया कि यदि कोई सदस्य "लाभ का पद" क्राउन के अधीन धारण करता है तो संसद के प्रति उसकी वफादारी से समझौता करने की हर संभावना है ।

तीसरे चरण में किंग की स्थिति घटकर एक संविधानिक प्रधान की रह गई तथा क्राउन के नाम पर मंत्रिमंडल का कार्यकरण कार्यपालक सरकार का केन्द्र बन गया । प्रिवी काउंसलर जिन्हें दूसरे चरण के दौरान सामान्य रूप से किंग का अनुचर समझा जाता था और उन्हें हाउस आफ कॉमन द्वारा शंका की दृष्टि से देखा जाता था, ने मंत्रियों का स्थान प्राप्त किया जो कुछ समय तक सदन में स्थान धारण करने से निर्हित भी रहे थे । बाद में, इसे भी मान्यता दी गई कि मंत्री बनने वाले व्यक्तियों को निर्योग्यता का नियम लागू होना अधिक कड़ा है और कार्यपालिका तथा विधानमंडल के बीच में कारगर समन्वयन सुनिश्चित करने की दृष्टि से यह स्वीकार किया गया कि कार्यपालिका के सदस्यों को संसद में प्रतिनिधित्व दिया जाए । इस मान्यता के परिणामस्वरूप ब्रिटिश संसद द्वारा अनेक अधिनियमितियां पारित की गईं । मंत्रियों का पुनर्निर्वाचन अधिनियम 1919 और 1926 में ब्रिटिश संसद द्वारा अधिनियमित किया गया जिसमें यह अपेक्षा की गई थी कि किसी "राजनीतिक पद" के लिए नियुक्ति किसी सदस्य को पुनःनिर्वाचन का सामना करना होगा ।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 26 (1)(क) में यह उपबंधित है कि कोई व्यक्ति किसी भी चैम्बर का सदस्य चुने जाने या होने के लिए निर्हरित हो जाएगा यदि वह फेडरल विधानमंडल के अधिनियम द्वारा घोषित पद जिसमें धारक को निर्हरित नहीं किया जाता, से भिन्न भारत के क्राउन के अधीन लाभ का पदधारित करता है ।जब 26 जनवरी, 1950 को इस घोषणा के साथ भारत का संविधान प्रवृत हुआ कि लाभ का पद धारित करने वाला कोई व्यक्ति निर्हरित हो जाएगा तो अनुच्छेद 102 के स्पष्टीकरण में यह स्पष्ट किया गया कि कोई व्यक्ति जो मंत्री है (संघ या किसी राज्य का) लाभ का पद धारित करने वाला नहीं समझा जाएगा । तथापि, संघ सरकार के राज्यमंत्री और उपमंत्री जिन्हें अनुच्छेद 102 के अधीन निर्हरता से छूट नहीं दी गई थी क्योंकि "मंत्री" अभिव्यक्ति का अर्थ केवल केन्द्रीय मंत्री लगाया गया था ।

इस स्थिति पर विचार करने के लिए, संसद (निर्हरता का निवारण) अधिनियम, 1950 अधिनियमित किया गया । उक्त अधिनियम की धारा 2 में यह उपबंध है:-

"2. संसद की सदस्यता के लिए निर्हरता का निवारण .- कोई व्यक्ति संसद का सदस्य चुने जाने और होने के लिए इस कारण से निर्हरित नहीं होगा कि वह भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन निम्नलिखित लाभ के पद धारित करता है, अर्थात् राज्यमंत्री या उपमंत्री या संसदीय सचिव या संसदीय अवर सचिव का पद ।"

इसका अनुसरण संसद (निर्हरता का निवारण) अधिनियम, 1951 द्वारा यह घोषित करते हुए कहा गया कि सरकार के अधीन कतिपय पद (उसकी धारा 2 में विनिर्दिष्ट) से निर्हरता नहीं होगी और संसद के सदस्य चुने जाने या होने के लिए उनके धारकों को कभी भी निर्हरित हुआ नहीं समझा जाएगा । यह अधिनियम 26 जनवरी, 1950 से भूतलक्षी प्रभाव से लागू हुआ ।

1954 में, संसद सदस्यों की निर्हरता से संबंधित अनेक मामलों का अध्ययन करने के लिए पंडित ठाकुर दास भार्गव की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिससे यह सिफारिश की जा सके कि एक व्यापक विधान लाने के लिए सरकार को समर्थ बनाया जा सके । समिति ने 1955 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की ।

1959 में, संसद (निर्हरता का निवारण) 1959 अधिनियमित किया गया जिसमें यह घोषणा की गई कि सरकार के अधीन कतिपय लाभ के पद इनके धारकों को संसद का सदस्य चुने जाने या होने के लिए निर्हरित नहीं करेंगे ।

64. उपरोक्त इतिहास देखने से यह स्पष्ट है कि 'लाभ का पद' के सिद्धांत की उत्पत्ति ब्रिटेन में क्राउन और हाउस आफ कॉमन के बीच टकराव से हुई और इस सिद्धांत का उद्देश्य किसी भी संभाव्य हितों के विरोध से बचना है ।

65. यहां यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण होगा कि माननीय उड़ीसा उच्च न्यायालय ने बनोमली बहरा बनाम मरकंडा महापात्रा [ए.आई.आर. 1961 उड़ीसा 205] में यह सम्प्रेक्षित करके अभिनिर्धारित किया था;-

"16. 'लाभ का पद' अभिव्यक्ति को कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है यद्यपि हमारे संविधान के अनेक उपबंधों में जैसे अनुच्छेद 58(2), 59(2), 64, 66(4)(क) और 191(1)(क) में उल्लेख पाया जाता है ।संविधान के उपरोक्त उपबंधों में दिए गए निर्हरता के सिद्धांत और इस अधिनियम के धारा 10(9)(ग) में यह सिद्धांत दिया गया है कि ग्राम पंचायत या राज्य विधान सभा के सदस्य या संसद के सदस्य के कर्तव्यों के बीच कोई टकराव नहीं है इसलिए उसका वैयक्तिक हित और सरकार या स्थानीय प्राधिकरण के व्यक्ति ऐसे व्यक्ति दायित्व जनता के प्रतिनिधि के रूप में उसकी स्वतंत्रता असंगत है । प्राथमिक रूप से इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कानून में इन निर्हरताओं को रखा गया है "।

(बल दिया गया है)

66. लोकसभा के भूतपूर्व महासचिव श्री पी. डी. टी. आचार्य 'लाभ का पद' सिद्धांत के इतिहास पर तारीख 21 जून, 2016 को द हिन्दू में प्रकाशित अपने लेख शीर्षक 'It is about propriety, not constitutionality' चर्चा की है और इस लेख का सुसंगत भाग निम्नानुसार है:

> "'लाभ का पद' ऐसा पद नहीं है जिसे सहज रूप से समझा या स्पष्ट किया जा सके । इस संकल्पना की उत्पत्ति इंग्लैंड में हाउस आफ कॉमन में हुई । ब्रिटिश हाउस आफ कॉमन का इतिहास क्राउन के साथ विरोधों का इतिहास है । किंग ने हाउस आफ कॉमन्स को नीचा दिखाने के प्रयासों में अपने सदस्यों को धनीय लाभों के साथ कार्यपालक प्रकृति की स्थितियां प्रस्थापित कीं और उनकी वफादारी को खरीदा । इस व्यवहार से सदस्य अधिक समय सदन के बाहर रहते थे और इसीलिए उनके कर्तव्यों तथा वैयक्तिक हितों के बीच विरोध उत्पन्न हुआ । समय के साथ-साथ अधिकतर सदस्यों की कार्यपालक कृतियों के कारण सदन से निरंतर अनुपस्थिति से हाउस आफ कॉमन कमजोर हुआ और इसलिए उसने क्राउन से कोई भी ऐसा पद स्वीकार करने के लिए अपने सदस्यों को प्रतिसिद्ध करने की विधि पारित की जिससे उन्हें किसी भी तरह का कोई धनीय लाभ प्राप्त होता हो । यह उपबंध किया गया था कि किसी भी सदस्य द्वारा स्वीकार किए गए ऐसे पद से वह निर्हरित हो जाएगा ।
>
> आवश्यक रूप से, लाभ के पद की विधि को सदन और जनता के प्रति विधानमंडल के सदस्य के कर्तव्य और उसके वैयक्तिक हित के बीच विरोध को समाप्त करने के लिए अंतःस्थापित की गई थी"।

(बल दिया गया है)

67. माननीय उच्चतम न्यायालय ने सत्रूचरला चन्द्रशेखर राजू बनाम विरिचलरा प्रदीप कुमार देव [(1992) 4 एस.सी.सी. 404] वाले मामलों में यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 102(1)(क) और 191(1)(क) अधिनियमित करने का उद्देश्य यह है कि किसी निर्वाचित सदस्य के कर्तव्यों और हितों के बीच कोई विरोध नहीं होना चाहिए और यह सुनिश्चित करने के लिए है कि कोई निर्वाचित सदस्य किसी भी तरह के सरकारी दबाव के बिना अपने कर्तव्यों का स्वतंत्र और भयरहित रूप से पालन करे और इन अनुच्छेदों का आशय कर्तव्य और हित के बीच किसी विरोध की संभाव्यता को समाप्त करना है जिससे कि विधानमंडल की ईमानदारी प्रभावित न हो । आदेश के सुसंगत पैरा निम्नानुसार है:

> "18. अनुच्छेद 102(1)(क) और 191(1)(क) को विधानमंडल के सदस्यों के बीच कर्तव्य और हित के मध्य विरोध के जोखिम को समाप्त करने या कम करने और यह सुनिश्चित करने के लिए के लिए सम्मिलित किया गया है कि विधानमंडल में ऐसे व्यक्ति न हों जो कार्यपालिका से फायदा प्राप्त करे और परिणामतः उसके प्रभाव में आ जाएं या उसके बाध्य हों । अतः इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इन अनुच्छेदों की व्याख्या की जानी चाहिए ।"

(बल दिया गया है)

न्यायालय ने बिहारी लाल डोगरे बनाम रोशन लाल डोगरे [(1984) 1 एस.सी.सी. 551] वाले मामले में नीचे उल्लिखित पैरा पर निर्भर किया है:

> "5. अनुच्छेद 191(1)(क) अधिनियमित करने का उद्देश्य स्पष्ट है । कोई व्यक्ति जो किसी विधानमंडल के लिए निर्वाचित हुआ है अपने कर्तव्य भयरहित रूप से और किसी भी प्रकार के सरकारी दबाव के बिना निर्वहन करने के लिएस्वतंत्र होना चाहिए । यदि ऐसा कोई व्यक्ति लाभ का पद धारण करता है जिससे उसे पारिश्रमिक प्राप्त हो और उस पद पर बने रहने के लिए सरकार से मंजूरी अपेक्षित हो तो ऐसी संभावना है कि वह व्यक्ति सरकार की इच्छाओं के अधीन होगा । अनुच्छेद 191(1)(क) का आशय कर्तव्य और हित के बीच विरोध की संभावना को समाप्त करना तथा विधानमंडलों की ईमानदारी को बनाए रखना है ।"

(बल दिया गया है)

न्यायालय ने अशोक कुमार भट्टाचार्य बनाम अजोय विश्वास [(1985) 1 एस.सी.सी.151] वाले निर्णय से निम्नलिखित पैरा का भी अवलंब लिया है :

> '16. अनुच्छेद 102(1)(क) में इस उपबंध के पीछे सही सिद्धांत यह है कि किसी निर्वाचित सदस्य के कर्तव्यों और हित के बीच किसी प्रकार का विरोध नहीं होना चाहिए' ।"

68. माननीय उच्चतम न्यायालय ने एम.वी.राजशेखरन बनाम वटेल नागराज[(2002) 2 एस. सी. सी. 704] वाले मामले में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

> "2. [.....]संविधान के अनुच्छेद 191 के अधीन निर्हरता का उपबंध करने का मात्र यही उद्देश्य है कि विधान सभा या विधान परिषद में निर्वाचित सदस्य अपने कर्तव्यों का पालन भयरहित रूप से और किसी भी प्रकार के सरकारी दबाव के

बिना करने के लिए स्वतंत्र हों । अतः न्यायालय को यह पता लगाना है किकिसी अभिव्यक्ति द्वारा कर्तव्यों के पालन और सरकार के बीच कोई संबंध है विद्यमान है और अपने नियोजन के दौरान ऐसे कर्तव्यों के निष्पक्ष रूप से निर्वहन तथा निर्वाचित होने पर किसी विधानमंडल के सदस्य के रूप में उससे अपेक्षित कर्तव्यों के बीच विरोध होना आवश्यक है । उपरोक्त प्रश्न पर विचार करते समय न्यायालय को सार पर विचार करना चाहिए न कि प्रकार पर और यह भी आवश्यक है कि विभिन्न मामलों में अधिकथित तथ्यों और परीक्षणों को ध्यान में रखना चाहिए जिससे सरकार के अधीन लाभ के पद को धारित करना गठित होता हो ।"

(बल दिया गया है)

69. अतः यह पूरी तरह स्पष्ट और सुनिर्धारित है कि 'लाभ का पद' धारित करने के लिए निर्हरता विहित किए जाने का उद्देश्य विधानमंडल के किसी भी सदस्य द्वारा किसी ऐसी संभावना को समाप्त करना है जिससे जनता का प्रतिनिधि सदस्य रहते हुए समय-समय पर सरकार से लाभ का पद स्वीकार करके अपनी स्वतंत्रता को समाप्त करता है ।

70. संसदीय सचिव के पद के प्रश्न पर यह विचार करना महत्वपूर्ण है कि संविधान में संसदीय सचिव के पद का कोई उल्लेख नहीं है ।

संविधान का अनुच्छेद 163(1)निम्नानुसार उपबंध करता है;

"जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने कृत्यों या उनमें से किसी को अपने विवेकानुसार करे उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा" ।

अनुच्छेद 164(1) यह उपबंध करता है कि:

"मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल, मुख्यमंत्री की सलाह पर करेगा तथा मंत्री, राज्यपाल को प्रसादपर्यंत अपने पद धारण करेंगे"।

अनुच्छेद 164(2) यह उपबंध करता है कि मंत्रिपरिषद राज्य की विधानसभा के प्रति सामुहिक रूप से उत्तरदायी होगी ।

अनुच्छेद 164(5) यह उपबंध करता है कि मंत्रियों के वेतन और भत्ते ऐसे होंगे जो उस राज्य का विधानमंडल, विधि द्वारा समय-समय पर अवधारित करे और जब तक उस राज्य का विधानमंडल इस प्रकार अवधारित नहीं करता है तब तक ऐसे होंगे जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट है ।

संविधान में संसदीय सचिवों और उपमंत्रियों का भी कोई उल्लेख नहीं है । संविधान के अनुच्छेद 208 में खंड (1) द्वारा निम्नानुसार उपबंधित है;

"इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्य के विधानमंडल का कोई सदन अपनी प्रतिक्रिया और अपने कार्यसंचालन के विनियमन के लिए नियम बना सकेगा"।

71. याची ने सही तौर पर इस तथ्य को इंगित किया है कि प्रत्यर्थियों को वैसी ही पद की शपथ दिलाई गई जो मंत्रियों के पद की शपथ होती है । राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली सरकार अधिनियम, 1991 की धारा 43(1) में निम्नानुसार कथित है:

"किसी मंत्री द्वारा पदभार ग्रहण किए जाने के पूर्व उप-राज्यपाल इस प्रयोजन के लिए अनुसूची में दिए गए प्ररूप के अनुसार उसे पद और गोपनियता की शपथ दिलाएगा"।

यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि कोई भी ऐसी विधि या आदेश नहीं है जिसके द्वारा संसदीय सचिव का पद सृजित किया जाए और इसलिए विधि में ऐसा कुछ नहीं है जिससे इन संसदीय सचिवों के पद की शपथ दिलाया जाना आवश्यक हो । इस पर विचार करना भी महत्वपूर्ण है किविधानसभा के निर्वाचन के लिए अभ्यर्थी, विधानसभा के सदस्यों और मंत्रिपरिषद के सदस्यों के लिए शपथ राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली सरकार अधिनियम, 1991 के अधीन ही विहित की गई है ।प्रत्यर्थी विधानसभा के सदस्यों ने विधानसभा के सदस्यों के रूप में अपनी-अपनी शपथ पहले ही ग्रहण कर ली है और यह तथ्य कि राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली सरकार ने इसे एक आवश्यकता समझा तथा इन संसदीय सचिवों को मुख्यमंत्री द्वारा शपथ दिलाई गई स्वयं इस तथ्य का सबूत है कि राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली सरकार की दृष्टि में और सभी व्यवहारिय प्रयोजनों के लिए इन संसदीय सचिवों को मंत्रियों के रूप में समझा गया तथा शपथ समारोह का आयोजन इन संसदीय सचिवों के पद को महत्व देने के लिए किया गया ।

72. लालजीभाई जोधाभाई बार बनाम विनोद चन्द्र जेठालाल पटेल (ए.आई.आर(1963) गुजरात 297) वाले मामले में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मतों की अपेक्षा करना संबद्ध है जहां माननीय उच्च न्यायालय ने पद

आदि निर्धिरितकिया कि संसदीय सचिव की स्थिति उप मंत्री के अत्यंत सदृश जैसी है । माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत का सुसंगत उद्हरण निम्न प्रकार हैः-

"12( ) जब हम इन नियमों के अंतर्विष्ट विभिन्न उपबंधों को देखते हैं तो यह पाते हैं कि मंत्री के कर्तव्यों, शक्तियों और विशेषाधिकार से संबंधित उपबंध है । नियम 2 (ङ) में दी गई परिभाषा को देखते हुए मंत्री की यह शक्तियों, कर्तव्य और कार्य संसदीय सचिव द्वारा प्रयोग किए जाने की दायी है जबतक कि संदर्भ अपेक्षित न करे । नियम 45 यह उपबंध करता है कि अध्यक्ष की अनुज्ञसा से मंत्री लोक महत्व के विषय कथन कर सकता है । ऐसे कथन पर कोई चर्चा मंजूर नहीं की जाएगी किन्तु सदस्यों को कथन के संबंध में अतिरिक्त सूचना एकत्रित करने के प्रयोजन के लिए प्रश्न पूछने की मंजूरी दी जा सकेगी । नियम 61 यह उपबंध करता है कि मुख्यमंत्री या कोई अन्य मंत्री चाहे उसने पूर्व में चर्चा में भाग लिय़ा हो या नहीं, सरकार के ओर से चर्चा के अंत में सरकार की स्थिति स्प्ष्ट करने का अधिकार होगा और अध्यक्ष इस संबंध में जांच कर सकेगा कि भाषण के लिए कितना समय अपेक्षित होगा जिससे कि समय तय कर सके और उस समय तक चर्चा साप्त हो जाय । पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों संबंधित नियम, अनुपूरक प्रश्नों के उत्तर से संबंधित और प्रश्नों के प्रत्याहरण से संबंधित नियमों के समान अनेक अन्य नियम हैं जहां मंत्री के प्रति निर्देश दिया गया है । जब तक संदर्भ अन्यथा अपेक्षित ना करे, अभिव्यक्ति मंत्री में परिभाषा खंड को देखते हुए संसदीय सचिव सम्मिलित होगा ।

नियम 85 निम्न उपबंध करता हैः-

85(1) कोई सदस्य जिसने मंत्री पद से त्याग पत्र दिया है अध्यक्ष की सम्मिति से, अपने त्याग पत्र के स्पष्टीकरण में एक व्यक्त कथन कर सकेगा ।

(2) ऐसा कथन प्रश्न के पश्चात और दिवस के लिए कारवार की सूची ग्रहण करने के पूर्व किया जा सकेगा

(3) ऐसा कथन किए जाने पर कोई बहस मंजूर नहीं की जाएगी;

परन्तु मंत्री सदस्यों द्वारा अपना कथन किए जाने के पश्चात उसके संबंध में कथन करने को दायी होगा ।

यह नियम 2(ड) में अंतर्विष्ट उपबंधों को देखते हुए संसदीय सचिव पर भी समान रूप से लागू होगा । "मंत्रियों को लागू विभिन्न अन्य नियम है जो समान रुप से संसदीय सचिव को लागू होते है । ये नियम संसदीय सचिव के कार्यों की प्रकृति और कर्तव्यों पर भी कुछ रोशनी डालते है । नियमों के प्रयोजन के लिए सिवाय वहा जहां संदर्भ अन्यथा अपेक्षित करे, मंत्री की संसदीय सचिव से बरावरी की गई है ।"[रेखाकित पक्तियों पर बल दिया गया है]

न्यायालय ने यह मत वयक्त किया कि कुछ प्राधीकृत पाठ्यपुस्तकों को निर्दिष्ट करना सुसगंत होगा जो इंग्लेंड में संसदीय सचिव की स्थिति को वयक्त करते है क्योंकि यह पद अनेक अन्यों के समान इंग्लेंड से लिया गया प्रतीत होता है और निम्न टिप्पण केः-

"(20). आर.टी ऑनरेवल लार्ड मोरिसन ऑफ लम्बैथ की पुस्तक, "गर्वनमेंट एण्ड पार्लियामेंट"द्वतीय संसकरण, पृष्ठ 59 पर निम्न कथन किया गया हैः- प्रत्येक विभागीय मंत्री के पास प्राईक रूप से उसकी सहायता करने के लिए एक संसदीय सचिव होता है, किन्तु कुछ बडे विभागों में इस्कोटिस कार्यालय में दो, या तीन भी हो सकते हैं । अधिकतर वे हाउस ऑफ कांमन्स से सदस्य होते है, या यदि उसके नहीं तब हाउस ऑफ लार्डस के सदस्य होते है । वस्तुतः उनसे स्थाई सचिव से भ्रम नहीं किया जाना चाहिए जो विभाग में जेष्ठ सिविल सेवक होता है । आजकल वे संबंधित मंत्री से परामर्श के साथ प्रधानमंत्री द्वारा चयन किए जाते है । "

पृष्ठ 99 में पर विद्वान लेखक द्वारा संप्रेक्ष किया गया है कि सचेतक, संसदीय सचिव और संसदीय प्राईवेट सचिव, और सदन का नेता सरकारी तंत्र के भाग होते है ।

पृष्ठ 115 पर यह मत व्यक्त किया गया है कि 'सभी विभागीय मंत्रियों के पास संसदीय सचिव या सचिव' होते हैं जो सरकार के सदस्य होते है, उक्त संसदीय सचिव कार्यालय में अपने मंत्रियों और फिरन्ट बैंच पर अपने मंत्रियों की सहायता करने के लिए उपलब्ध होते है, ' उनके महत्वपूर्ण कर्तव्यों में से यह कर्तव्य सदस्यों को "की पहुच में" में होना भी है जो सदस्य 'सूचना चाहते है' या अभ्यावेदन या परिवाद करना चाहते हैं जिससे कि उनके मंत्री संसदीय आशंकाओं और रायों की जानकारी रख सकते हैं,' और अनेक ऐसे विषयों पर संसदीय सचिव द्वारा अपनी स्वंम के दायित्व पर कार्यवाही की जा सके ।

23. इन पुस्तकों के प्रति संदर्भ स्पष्ट रुप से दर्शित करता है कि ग्रेट ब्रिटेन में संसदीय सचिव सरकार का भाग माने जाते है । हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर हमारा यह मत है कि गुजरात राज्य में संसदीय सचिव भी सरकार का भाग होते है और उन्हें लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 123(7) के अर्थातगर्त सरकार की सेवा में होना नहीं माना जा सकता।"

73 भारत के उच्चतम न्यायालय ने जयाबचन बनाम भारत संघ [(2006) 5 एससीसी 266] वाले मामले 'लाभ का पद' की संकल्पना को स्पष्ट किया है और इस ऐतिहासिक मामले के निम्न पैरा को उतकथित किया जा सकता है:-

"6 लाभ का पद ऐसा पद है जिससे लाभ या धनिय अभिलाभ प्राप्त होता हो । केन्द्रीय या राज्य सरकार के अधीन एक पद धारण करना जिससे कुछ वेतन, परिलिभधी, प्रारिश्रमिक या गैर प्रतिकरात्मक भत्ता संलग्न है, "लाभ का पद धारण करना" होता है । यह प्रश्न की क्या कोई व्यक्ति लाभ का पद धारण करता है, इसका एक वास्तविक रीति में निर्वचन किए जाना अपेक्षित है । संदाय की प्रकृति पर सार के विषय के रुप में विचार किया जाना चाहिए बजाय रीति रूप में । नामपद्धति महत्वपूर्ण नहीं है वस्तुतः "मानदेय "शब्द का मात्र प्रयोग लाभ की परिधि से संदाय को बाहर नहीं ले जा सकता, यदि प्राप्त करता को धनीय अभिलाभ पहुंचता है । प्रतिकरात्मक भत्तों की प्रगति में दैनिक भत्तों के अतिरिक्त मानदेय का संदाय, निःशुल्क आवास और चालक सहित कार की सुविधा जो राज्य के खर्चे पर मिलते है,स्पष्ट रुप से पारेश्रमिक की प्रगति में होते है और धनीय अभिलाभ का स्रोत होते है और परिणामतः लाभ गठित करते है । इस संबंध में प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए कि क्या कोई व्यक्ति लाभ का पद धारण किए हुए या नहीं, जो कुछ सुसंगत है वह यह है कि क्या पद, के कारण लाभ या धनीय उपलाभ प्राप्त करने को समर्थ है और ना कि क्या व्यक्ति ने वास्तविक रुप से कोई धनीय अभिलाभ प्राप्त किया है । यदि "धनीय अभिलाभ" किसी पद के संबंध में "प्राप्त होने योग्य है" तब यह लाभ का पद बन जाता है, इसका विचार किए बिना कि क्या ऐसी धनीय अभिलाभ वास्तविक रुप से प्राप्त हुआ है या नहीं । यदि पद के साथ या पदधारी अपने पास से खर्च किए गए/ वास्तविक खर्चों के प्रतिदाय से भिन्न किसी धनीय अभिलाभ के लिए हकदार बनता है तब पद अनुच्छेद 102(1) (क) के प्रयोजन के लिए लाभ का पद होगा । विधि की यह स्थिति रमना सुबन्ना बनाम जी.एस कग्गीरपा (एआईआर 1954 एससी 653), शिवामूर्ति स्वामी इनामदार बनान आगादी संगना अंडनप्पा [(1971) 3 एससीसी 870], सतरुचरला चन्द्रशेखर राजू बनाम वेरीचरला प्रदीप कुमार दैव [(1992) 4 एससीसी 404] और शीबू शौरेन बनाम दयानंद सहाय [(2001)7 एससीसी 425] के विनिश्चयों से पारंभ होते हुए आधे दशक से अधिक से स्थापित है ।"

74. जयाबच्चन बनाम भारत संघ (उपयुक्त के निर्णय से अवेक्षा किए गए उपर्युक्त पैरा का परिशीलन यह प्रकृट करता है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस मुद्दे पर विधि की महत्वपूर्ण स्थिति अधिकथित की है कि यह लाभ की 'वास्तविक प्राप्ति नहीं है अपितु लाभ की "संभाव्यता" है जो कि इस प्रश्न का विनिश्चय कारी पहलू है कि क्या कोई पद, 'लाभ का पद है या नहीं' । तथापि, जबकि यह इस मुद्दे पर एक ऐतिहासिक निर्णय है, यह स्पष्ट है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने 'लाभ का पद' की परिभाषा करने का साहस नहीं उठाया था जिसमें अन्य पहलू सम्मिलित है जो कि लाभ के घटक से अलग परिक्षण किए जाने हैं । इसलिए जया बच्चन बनाम भारत संघ वाला उपयुक्त मामले पर यह कथन करने के लिए अभिलम्ब लिया जा सकता है कि यह पद की संभाव्यता है बजाय पदधारी द्वारा वास्तविक रुप से प्राप्ति जो कि 'लाभ का पद' के प्रश्न की परीक्षा करते समय परिक्षा किया जाना है और इस परीक्षा में माननीय न्यायालयों द्वारा समय-समय पर अधिकथित सभी सुसंगत कसौटी सम्मिलित की जानी चाहिए ।

75. इस संदर्भ में यह अवेक्षा करना इससे संबंदध है कि लाभ के पद पर 16वीं लोक सभा की संयुक्त संसदीय समिति की 19वीं रिपोर्ट जो लोक सभा को तारीख 28.03.2017 को प्रस्तुत की गई थी और राज्य सभा के समक्ष 28.03.2017 को प्रस्तुत की गई थी, में निम्न अवेक्षा की गई है:-

"4. अभिव्यक्ति " सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है" जो अनुच्छेद 102(1) (क) और अनुच्छेद 191(1)(क) में आई है उसमें कही पर भी इसे प्रमिततः परिभाषित नहीं किया गया है । तथापि, इसका अवधारण करने के लिए कि क्या किसी व्यक्ति द्वारा धारित पद सरकार के अधीन लाभ का पद है, लाभ के पद पर संयुक्त समिति ने अपनी 10वीं रिपोर्ट (7वीं लोक सभा) जो 7 मई, 1984 को लोक सभा में प्रस्तुत की गई (उपाबंध -II) निम्नलिखि मार्गदर्शक शिधान्तों को अधिकथित किया:-

"इस प्रश्न का अवधारण करने के लिए व्यापक कसौटी कि क्या किसी व्यक्ति द्वारा धारित पद लाभ का पद है, यह न्यायिक विनिश्चयों में अधिकथित की गई है । यदि सरकार नियुक्ति पर नियंत्रण का प्रयोग करते हुए पद से पदच्युति करती है और जो कि पद के कार्यों और उनके किए जाने के आधार पर किया गया हो और यदि पारेश्रेमिक या धनीय अभिलाभ, जो प्रकृति में यथार्थ या अयार्थ हो, इस बात विचार किए बिना कि क्या पदधारी ततसमय वास्तविक रुप से ऐसा पारेश्रिमिक या अभिलाभ प्राप्त करता या नहीं से प्राप्त होता है, तब वह पद सरकार के अधीन लाभ का पद अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए अन्यथा संविधान में परिकल्पित निरहर्ता के अधिरोपण के उद्देश्य को विफल करेगा । यह प्रथम आधारभूत सिंधान्त विधायिका सदस्य को पदों को प्रस्तावित करनेमें मार्गदर्शक पहलू होना चाहिए" ।

5. उपरोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए लाभ के पद पर संयुक्त समिति इस प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए कि कौन से पद किसी व्यक्ति को संसद का सदस्य चयन किए जाने के लिए और बनने के लिए निर्रहित करते है और निर्रहित नहीं करने चहिए समितियों, आयोगों, इत्यादि का परीक्षा करने के लिए नीचे अवेक्षा की गई कसौटी का अनुसरण कर रहे हैः-

(i) क्या पदधारी कोई पारेश्रैमिक जैसे बैठक भत्ता मानदेय, वेतन इत्यादि प्राप्त कर रहा है, अर्थात संसद (निरहर्ता निवारण) अधिनियम 1959 की धारा 2(क) में यथापरिभाषित "प्रतिकरात्मक भत्ता" से भिन्न कोई पारेश्रेमिक प्राप्त कर रहा है; (इस प्रकार सिधांन्त यह है कि यदि कोई सदस्य स्वंम द्वारा खर्च से से अधिक प्रतिदाय प्राप्त नहीं करता है और धनीय अभिलाभ प्राप्त नहीं करता है, तब यह निरहर्ता के रुप में कार्य नहीं करेगा।

(ii) क्या ऐसा निकाय जिसमें कोई कार्यालय स्थापित है कार्यकारी, विधायी या न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है या निधियों के वितरण, भूमि आंवटन, अनुज्ञप्तियों का जारी किया जाना इत्यादि की शक्तियां प्रदान करता है या नियुक्ति की शक्तियां प्रदान करता है, स्कालरसिप इत्यादि प्रदान करता है; और

(iii) क्या निकाय जिसमें कार्यालय स्थापित है पदधारी को प्रश्रय के रूप में प्रभाव डालने या शक्ति का प्रयोग करने के लिए पदधारी को समर्थ बनाता है।

यदि उपर्युक्त किसी कसौटी का उत्तर सकारात्मक है तब प्रश्नगत पद निरर्हित करेगा।

76. लाभ के पद पर संयुक्त संसदीय समिति द्वारा अंगीकृत किया गया परीक्षण माननीय उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न निर्णयों के अधीन उपबंधित कसौटियों को अंगीकृत करते है और इस प्रकार इस निर्देश का विनिश्चय करने में उन पर अविलंब लेना निरर्थक नहीं होगा।

77. इस संदर्भ में यह अवेक्षा की जा सकती है कि माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष विमलोंगषु राय बनाम असम राज्य स्थानानतरित मामला (सिविल) सं. 2006 की 169 [(2017) एससीसी ऑनलॉन एससी 813, निर्णय तारीख 26.07.2017] मामले में संसदीय सचिवों की नियुक्ति द्वारा अनुच्छेद 164(1क) के उल्लघंन का प्रश्न था। तथापि, माननीय उच्चतम न्यायालय ने असम राज्य की विधान सभा की ऐसी एक विधि अधिनियमित करने की सक्षमता पर प्रारंभिक विवाद्यक की विरचना की, जिसके अधीन संसदीय सचिवों के पद सृजित किए गए थे और यह अभिनिर्धारित करते हुए इसका नकारात्मक उत्तर दिया कि अनुच्छेद 194 की स्कीम अभिव्यक्त रूप से राज्य विधायिका को ऐसे पद सृजित करने के लिए जैसे कि संसदीय सचिव के पद है प्राधिकृत नहीं करती है और एक विस्तरित और विवक्षित संवैधानिक व्यवस्था विधायिका और इससे संबद्ध विभिन्न कार्यालयों और उनके अनुसंगिक विषयों के संबंध में भी विद्यमान है और इसलिए अनुच्छेद 194 (3) और सूची -2 की प्रविष्टि 39 की परिधि अर्थान्वियन करना अतार्किक होगा कि नजीर का पठन विधान सभा द्वारा विधान बनाने के माध्यम से विधायिका के नये पद सृजित करने के लिए किया जाए।

78. इस प्रकार यह अब विधि कि सुस्थापित स्थिति है कि राज्य विधान सभाओं को राज्य विधायिका के अधिकारियों के पद सृजित करने की सक्षमता नहीं है। इसके अतिरिक्त विधि कि यह सुस्थापित स्थिति है कि कार्यकारी शक्ति की व्यापकता संबंधित विधायिका की विधायी सक्षमता की सीमाओं पर भी विस्तारित होती है। इसलिए प्रत्यर्थियों की संसदीय सचिवों के पद पर नियुक्ति राज्य विधान सभा के अधिकारी के रूप में नहीं हो सकती जब ऐसी पद पूर्णतया स्तित्व में नहीं और जब स्वंम विधायिका को ऐसा एक पद सृजित करने की कोई शक्ति नहीं थी। इसके अतिरिक्त यह सुझाने के लिए कोई सामाग्री नहीं है कि संसदीय सचिव का पद राज्य विधायिका के एक अधिकारी का पद होना आशयित किया गया था। इसलिए विमलोंगषू राय बनाम असम राज्य वाले उपर्यक्त मामलें में माननीय उच्चतम न्यायालय ने उपर अवेक्षा किए गए निर्णय और विनिश्चय द्वारा इस प्रकार अलग किये जाने के आधार पर एक मात्र निष्कर्ष जो निकलता है वह है कि संसदीय सचिवों के पद पर प्रत्यर्थियों की नियुक्ति कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र में थी और संसदीय सचिव का पद इसलिए कार्यपालक पद है।

79. माननीय मुम्बई उच्च न्यायालय ने ऐरिस रोड्रिगस बनाम गौवा राज्य (2009 सप्ली मुम्बई सी आर-16) वाले मामले में संसदीय सचिवों की नियुक्त के प्रश्न की जांच की थी। जबकि गौवा राज्य में इन संसदीय सचिवों के कृतव्यों और कार्यों के संबंध में कोई स्पष्ट शासकीय व्यापकता अधिकथित नहीं थी, माननीय न्यायालयों ने कनाडा जैसे अन्य अधिकारिताओं में विधि और प्रक्रिया पद की संकल्पना और प्रकृति की ऐतिहासिक उत्पत्ती की संज्ञान लिया और यह अभिनिर्धारित किया कि संसदीय सचिव, मंत्रिमंडल सदस्य के समान थे और उनकी नियुक्ति और आदेश मनमाने, अनुचित, असंवैधानिक और कोई लोकहित पूरा न होने के आधार पर अभिखंडित की गई थी।निर्णय का सुसंगत उद्हरण निम्न प्रकार हैः-

> "16. इतिहास से दर्शित होता है कि 'संसदीय सचिवों' का पद एक नई संकल्पना नहीं है। 'संसदीय सचिव' सत्तारुढ विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा संभव्यता इस विचार के अधीन नियुक्त किए गए थे कि उनके कुछ चयनित सदस्यों को उसमें नियुक्त किया जा सके। अभिलेख से यह दर्शित होता है कि पूर्वतर समयों में भी, ' संसदीय सचिव सत्तारुढ दल

द्वारा नियुक्ति किए गए थे' । कुछ राज्य सरकारों ने संसदीय सचिवों की नियुक्तिके संबंध में कानून बनाए और उनकी नियुक्ति के निबंधनों और शर्तों और उन्हे संदेय शोध्यों और भत्तों के संबंध में भी विधान बनाए । कर्नाटक राज्य ने कर्नाटक संसदीय सचिव भत्ता अधिनियम 1963 अधिनियमित किया जबकि असम सरकार ने भी असम संसदीय सचिव (नियुक्ति, वेतन, भत्ते और प्रकीर्ण उपबंध) अधिनियम 2004 अधिनियमित किया और निम्नलिखित विधानों के प्रति भी निर्देश किया जा सकता हैः-

"1. अरुणाचल प्रदेश संसदीय सचिव (नियुक्ति, वेतन, भत्ते और प्रकीर्ण उपबंध) अध्यादेश 2007

2. संसदीय सचिव (विशेष भत्ता संदाय और निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1971 (पुडूचेरी)।

3. पश्चिमी बंगाल विधान मंडल (निरर्हताओं को हटाया जाना) अधिनियम, 1952 ।

18. ये सभी विधियां सक्षम विधान मंडलों द्वारा अधिनियमित की गई थी जिससे कि संसदीय सचिवों की नियुक्ति की प्रक्रिया और वेतन भत्तों और परिलब्धियों को प्रदान किए जाने की व्यवस्था की जा सके । उदाहरण के लिए असम राज्य के संबंध में विधि मुख्यमंत्री से यह अपेक्षा करती है कि वह परिस्थितियों के संबंध में और स्थितियों की आवश्यकता के अनुसार अपने चित का प्रयोग करे और तब ऐसे कार्य के लिए जो ठीक और उचित संसदीय सचिवों की नियुक्ति कर सके । उनके कार्यों और कर्तव्यों को उचित रीति में विनिर्दिष्ट किए जाने की प्रत्यासा की गई थी । वस्तुतः ऐसे विधान के पीछे का उद्देश्य बहतर शासन और इसी भांती लोकहित को सुनिश्चित करना था । क्रमिक राज्यों द्वारा अधिनियमित इन विधियों में से कोई भी विधि, संवैधानिक विधि के अनुरुप होनी चाहिए और संवैधानिक आदेश के उद्देश्य को पूरा करती हूँ । वे संवैधानिक आदेश का उल्लघंन नहीं कर सकती और न ही उन्हें ऐसा करना चाहिए ।

20. रिपोर्ट [संसदीय क्रियाकलाप मंत्रालय भारत संघ द्वारा तैयार की गई "संसदीय सचिव " पर अध्ययन रिपोर्ट] विनिर्दिष्ट रुप से अवेक्षा करती है कि संसदीय सचिवों को ऐसे कार्य करने थे जो उन्हें मंत्री द्वारा सौपे जा जाए और गोपनीयता की सपथ जो उन्हें दिलाई गई यह दर्शित करती है कि उन्हे शासकीय पत्रों की भी पहुच होगी इस रिपोर्ट के अनुसार संसदीय सचिव नियुक्त करने की परिपाटी वर्ष 1967 तक मुख्य रुप से अनुसरण की गई थी । 1967 से 1984 तक कोई संसदीय सचिव नियुक्त नहीं किए गए थे । तथापि, 1984 के पश्चात यह परिपाटी पुनः बहाल हो रही है यद्दिप यदाकदा ।

21. तारीख 4 नवम्बर, 1985 को संसदीय क्रियाकलाप और पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार ने "संसदीय सचिवों" के संबंध में एक कार्यालय ज्ञापन जारी किया था जो निम्न प्रकार हैः-

संख्या एफ.4(25)/84-डब्लूएस

भारत सरकार

संसदीय क्रियाकलाप और पर्यटन मंत्रालय

(संसदीय क्रियाकलाप विभाग)

87, संसद भवन,

नई दिल्ली

4 नवम्बर, 1985

कार्यालय ज्ञापन

विषयः- संसदीय सचिवों के कार्य

अधोहस्ताक्षरित को यह कहने के निर्देश हुआ है कि संसदीय सचिवों के मानकों का प्रश्न पिछले कुछ समय से सरकार के विचाराधीन रहा है । माननीय प्रधानमंत्री के अनुमोदन के साथ यह अब विनिश्चय किया गया है कि संसदीय सचिव के कार्य निम्न प्रकार होंगेः-

(i) वह मंत्री महोदय के शासकीय कार्य में उनकी सहायता करेंगे ।

(ii) वह विभाग/मंत्रालय के उस सदन में अभ्यावेदन करेंगे जिससे वह संबंधित है ।

(iii) वह ऐसे कार्यों का संपादन करेंगे जैसा कि उन्हें मंत्री द्वारा सौंपा गया है ।

टिप्पण : संसदीय सचिव के रूप में गोपनीयता का शपथ ग्रहण से, उनकी पहुंच शासकीय पत्र तक होगी ।

(डी.आर. तिवारी

उप सचिव, भारत सरकार

सेवा में,

1. भारत सरकार के समस्त मंत्रालय/विभाग
2. केबिनेट सचिवालय को (पांच प्रति) डी.ओ.सं. 55/1/2/84/केबिनेट के डी.ओ. सं. संदर्भ सं. के साथ ।
3. प्रधानमंत्री कार्यालय, गृह मंत्रालय (एम एंड जी खंड पांच प्रति)"

....

61. इस बात की परीक्षा किए जाने की आवश्यकता है कि किन उद्देश्यों के लिए 'संसदीय सचिवों की नियुक्ति की गई है जैसा कि प्रतीत होता है कि भारत के संविधान से व्युत्पन्न प्राधिकार या किसी कानून के अंतर्गत ऐसी कोई नियमित काडर की नामपद्धति की उत्पत्ति नहीं हुई है । दूसरे शब्दों में, ये न तो नियमित राज्य सेवा के भाग है न ही राज्य के सुशासन में शामिल निकायों के प्राधिकारिक कार्यपालिका के भाग है । केबिनेट मंत्रियों एवं राज्य मंत्रियों की संख्या धारा 164(1क) के अंतर्गत चुनाव के ठीक पश्चात् नियुक्ति करने के लिए अपेक्षित की गई है । ठीक उसी समय, संसदीय सचिवों की नियुक्ति होती है । सामान्यत: एवं जैसा कि शपथ पत्र के प्रति उत्तर में यह स्वीकार किया गया है कि उनके कार्य और कर्तव्य उन मंत्रियों की सहायता करना है जिनके साथ वे कार्य कर रहे हैं । उन्हें मंत्री के तरह सभी विशेषाधिकार एवं पर्क्स दिए गए हैं । उन्हें मंत्री के समतुल्य स्टॉफ दिए गए है । यह नहीं कहा जा सकता है कि उनकी पहुंच सरकारी अभिलेख एवं सरकारी फाइलों तक नहीं थी । उनकी मुख्य भूमिका जैसा कि यह हमारे पहले के रिकार्ड से दिखाई देता है, सरकारी कार्य में भाग लेना है, कुछ सीमाएं हो सकती है, लेकिन वे सारकार के कामकाज में, पब्लिक के साथ संबंध और उनके रिकार्ड तक बाहरी लोगों के लिए कोई रास्ता नहीं है । नाम पद्धति के साथ मुख्य रूप से उनके साथ प्राथमिक रूप से चिन्हित दोनों में अंतर है । एक को नियमित मंत्री कहा जाता है जबकि दूसरे को संसदीय सचिव । इन दोनों लोक सेवकों में मुख्य अंतर कैसे और क्या है यह प्रश्न किसी भी मामले में और किसी भी व्यक्ति के लिए कल्पना करना के छोड़ दिया गया है । जबकि रिकार्ड से कुछ भी दर्शित नहीं होता है । सरकार के सामान्य आचरण को देखने पर लगता है कि ये नियुक्तियां प्राथमिक रूप से निर्वाचित सदस्यों को उपकृत करने के उद्देश्य से किया गया था पहला यह कि जिनको नियमित कैबिनेट में शामिल नहीं किया जा सकता था या दूसरा यह और संविधान के अनुच्छेद 164(1क) में निहित परिसीमाओं के लिए किया गया था । उन्हें मंत्री का नाम नहीं दिया जबकि मंत्री की स्थिति विशेषाधिकार व कार्य दिए गए । ऐसी शक्ति के प्रयोग के इस स्थिति ने ऐसा परिणाम बनाया जो असत्य प्रतीत होता है । वास्तव में 'संसदीय सचिव' व्यक्तिगत रूप से मंत्री के नाम के सिवाय सभी प्रकार से विधित: मंत्री थे, जबकि संसदीय सचिव वस्तुत: मंत्री थे जो मंत्री के तरक सभी प्राधिकार, शक्ति, परिलब्धि, प्रास्थिति और विशेषाधिकारों का प्रयोग करते है ।

80 (.....) प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 तक संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्ति का कैबिनेट मंत्री के प्रास्थिति और श्रेणी देने का उद्देश्य केवल निर्वाचित सदस्यों को उपकृत कर राजनीतिक संतुलन बनाने के उद्देश्य से किया था । किसी भी तर्क के अभाव में इस तथ्य का समर्थन किया है कि राज्य में ऐसे उच्च सार्वजनिक कार्यालय में नियुक्त व्यक्तियों के कर्तव्य और कार्य के बारे में बताए जाने और उन्हें कैबिनेट मंत्रियों का दर्जा देने के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता है । यह पर्याप्त रूप से अनुचित है यह पर्याप्त रूप से उपयोगी है कि संबंधित अधिकारियों की ओर से अनुचित हेतुक के लिए वास्तविक उद्देश्यों को हटा देता हो भले ही यह माना जाता है कि नियुक्ति और शपथ दिलाने की ऐसी शक्ति जो मुख्यमंत्री में निहित है ।

.....

83. जहां तक प्रत्यर्थी सं0 2 और 4 का संबंध है, उनकी नियुक्ति सार्वजनिक कार्यालय में संसदीय सचिवों के नाम से कैबिनेट के दर्जे में की गई है और वे संबंधित मंत्रालयों में कर्तव्य व कार्य का निष्पादन कर रहे हैं । वे विधान सभा में सरकार के प्रतिनिधि है और मुख्य मंत्री को उनके समुचित आदेशों को पारित करने में सहायता देते हैं । स्पष्ट है कि वे निर्णय लेने व निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेते हैं । उक्त पद की प्रास्थिति और दर्जा के साथ कार्य, कर्तव्य, उत्तरदायित्व और विशेषाधिकार इसीलिए जोड़ा गया कि तथ्य और सार में कैबिनेट मंत्री या मंत्री की तरह नियुक्ति की गई जबकि अभिव्यक्त संसदीय सचिव के रूप में किया जा सके । हमने यह पहले ही देखा है कि संसदीय सचिव का पद किसी कानूनी शक्तियों के प्रयोग के अग्रसरण में नियमित पद नहीं बनाया गया है और गोवा राज्य में उसकी ओर से ऐसा कोई भी कानून नहीं बनाया है ।

संसदीय सचिवों की नियुक्ति मुख्य मंत्री द्वारा यह कहते हुए बनाया गया है कि वे संवैधानिक रूप से मंत्री परिषद् के रूप में आएंगे । यदि संसदीय सचिवों की ऐसी नियुक्तियां राज्य विधान सभा में नियुक्ति से संबंधित है जैसा भारत के संविधान के अनुच्छेद 187(3) के अंतर्गत विधान सभा के अध्यक्ष से परामर्श के पश्चात्, राज्य का राज्यपाल ऐसे पद पर नियुक्ति के लिए

आवश्यकताओं, सेवा की शर्तों, योग्यता के संबंध में प्रवृत्त संहिताबद्ध कानून में विनिर्दिष्ट है, ऐसी नियुक्ति कर सकता है । यह स्वीकार किया गया है कि यह ऐसा मामला नहीं है इसलिए ऐसी नियुक्तियां विधान सभा के काडर से की नहीं है और वास्तव में न ही ये राज्य का मामला है । (बल दिया गया)

80. जगमोहन सिंह भट्टी बनाम भारत संघ (2015 का सी.डब्ल्यू पी.नं0 15186 (ओ.एंड एम.)(2017 एस.सी.सी. आनलाइन पी.एंडएच. 2150) वाले मामले में माननीय पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने यह संसदीय सचिवों के नियुक्ति के विवाद को परीक्षित किया और उपरोक्त नियुक्तियों को अपास्त किया । माननीय उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित प्रेक्षण दिया :

74. मुख्य संसदीय सचिवों/संसदीय सचिवों की नियुक्ति वास्तव में राज्य के विधान सभा के लिए निर्वाचित सदस्यों के बीच से की जाती है जो कनिष्ठ मंत्री होते हैं और सरकार के बदलने पर बदल जाते हैं । वे संसदीय या अपने राजनीतिक पक्ष के कार्य में मुख्य व्यक्ति को सहायता देते हैं जैसा कि विभागों के प्रशासन में होता है ।

78. मुख्य संसदीय सचिवों के समान होता है और विधान सभा के सदन में मंत्री के बराबर होता है । उनकी नियुक्तियां संविधान (इक्यानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2003 का स्पष्ट उल्लंघन और अस्वीकृतियां है । ऐसी नियुक्तियां, विधान सभा के सदन में मंत्रियों की संख्या के परिसीमा के इस सांविधानिक आशय के विपरीत है जो यह कहता है कि उनकी संख्या 15 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती है । वास्तव में प्रत्यर्थी सं0 7 से 10 की नियुक्तियां संवैधानिक आदेश जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 164(1क) के निहित है, से बचकर निकलने के लिए गोलमाल कर दिया गया है । इसलिए इसे अमान्य किया गया है ।

81. माननीय कलकत्ता उच्च न्यायालय ने भी पश्चिम बंगाल विधान सभा में संसदीय सचिवों की नियुक्ति के विवाद को विशाक भट्टाचार्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (ए.आई.आर. 2015 कल. 187) के मामले में परिक्षित किया और माननीय उच्च न्यायालय ने निम्न प्रेक्षण दिया :

43. इसी प्रकार अनुच्छेद 186 और अनुच्छेद 187, जैसा सभापति और उप सभापति पर निर्भर नहीं कर सकती है । इसलिए भी इन अनुच्छेदों में निर्दिष्ट अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को संसदीय सचिवों के साथ तुलना नहीं किया जा सकता है । इनमें से किसी भी व्यक्ति को अनुच्छेद 186 और 187 के अंतर्गत नहीं भेजा गया है जैसा कि संसदीय सचिव के रूप में पैरा 37 में निर्दिष्ट कर कार्यों और कर्तव्यों के निवर्हन के लिए आवश्यक है, जो मंत्रिपरिषद् के बराबर है ।

44. इस बात में कोई विवाद नहीं है कि विधि द्वारा राज्य के विधायिका को दी गई शक्ति, विशेषाधिकार और ऐसे विधायिका में सदन के रूप में या सदस्य के रूप में परिभाषित है । हम राज्य विधायिका के सदस्य के रूप में प्रत्यर्थी पक्ष की स्थिति के संबंध में विवाद को निर्णीत नहीं कर रहे हैं । हम उनके संसदीय सचिव के रूप में प्रास्थिति को परीक्षित कर रहे हैं । वे राज्य की विधायिका के सदन, उसके और सदन के समितियों के सदस्य के रूप में वर्णन के लिए ठीक नहीं है ।

49. प्रवर्तन को चुनौती दी गई है कि संसदीय सचिवों के पदों को बनाया गया था और उसे मुख्यमंत्री के विवेक पर प्रसाद पर छोड़ दिया गया है । इतिहास में संसदीय सिचव का सिद्धांत अपरिचित इतिहास नहीं है । हमने प्रवर्तनीयता को परीक्षित किया है जिससे संसदीय सचिव के पद को सृजित किया गया है । जिसमें नियुक्तियों के कार्य प्रणाली के संबंध में कार्यों के विभाजन रेखा, कर्तव्य और संसदीय सचिव के रूप में सुविधाएं प्रावधान किए गए हैं । उसी प्रकार के उद्देश्य और विषय के साथ अनुच्छेद 164 को संशोधित कर अनुच्छेद 164(1क) निगमित किया गया । संसदीय सचिवों के कार्यों को कानून में परिभाषित किया गया है जो मंत्रिपरिषद् के कर्तव्यों और कार्यों के परिधि से परे नहीं हो सकता है । उनके कर्तव्य ऐसे नहीं है जैसा कि महाधिवक्ता, सभापति और उपसभापति के हैं, जो संविधान के अन्य उपबंधों के आधार पर सृजित किए गए हैं ।

संसदीय सचिव के पद के कार्य को, मंत्रियों के कार्यों से संलग्न किया गया है । दूसरे शब्दों में, वे राज्यों के मंत्रियों के उत्तरदायित्व के अंश है । उनका विभागों के कर्तव्यों और कार्योंा में विवेचना और भागीदारी वे है, जो संलग्न किए गए हैं, जो निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रभाव डालते है । जहां तक उसका वह विभाग संबंधित है । दूसरे शब्दों में वे मंत्री कहलाए बिना भी मंत्री की तरह कार्यों को निर्वहन करते हैं । वे सचिव नहीं है जो अनुच्छेद 309 के अधीन लोक सेवक के रूप में होते है । संसदीय सचिव ठीक उसी तरह एक राजनीतिक कार्यपालक है जैसा कि अन्य राजनीतिक कार्यपालक राज्य में होते हैं ।

62. यद्यपि एक हो यह देखना है कि संसदीय सचिव की नियुक्ति मंत्री की नियुक्ति के समान है । क्या यह संविधान के आदेशों के अधीन प्रतिबंधों या परिसीमाओं को पराजित करने के लिए और दरकिनार करने के लिए प्रयोग किया गया है ? निश्चित रूप इस पद की नामप्रणाली असंगत है । किस उद्देश्य के लिए उनकी नियुक्ति की गई और यह देखना है कि उनके कार्यों का कैबिनेट के मैकेनिज्म के आधार पर मूल ढांचे पर क्या प्रभाव पड़ता है ।

63. अनुच्छेद 164(1क) के प्रावधानों के संदर्भ से मंत्री और संसदीय सचिव के बीच के अंतर को समझा जा सकता है। ऐसे संसदीय सचिव की नियुक्ति, नियुक्ति का उद्देश्य, कर्तव्य और कृत्यों और परिलब्धियों और उनको दिए गए विशेषाधिकार किसी राज्यमंत्री के समान हैं। राज्यमंत्री कुछ नहीं है लेकिन विधानसभा का एक निर्वाचित सदस्य हो जो मंत्री परिषद् का एक भाग है जो राज्यपाल को राज्य के कृत्यों के निर्वहन में सहायता करता है और सलाह देता है। चाहे वह मंत्रिमंडल या मंत्रिमंडल के भीतर राज्यमंत्रियों का एक भाग बनने वाला व्यक्ति है। उनकी संख्या स्पष्ट रूप से और अविवादास्पद रूप से अनुच्छेद 164(1क) के उपबंधों द्वारा शासित होती है। उनकी नियुक्तियों को सम्यक् रूप से अधिसूचित किया जाता है तथा राज्यपाल के माध्यम से उन्हें शपथ दिलाई जाती है। यह प्रतीत होता है कि भारत के संविधान से प्राधिकार उद्भूत करने वाला संसदीय सचिव की नाम पद्धति वाला नियमित संवर्ग नहीं है अर्थात् वे न तो नियमित राज्य सेवा के न ही राज्य के प्रशासन का शासन करने वाली राजनीतिक कार्यपालक प्राधिकारियों का एक भाग है। उनकी भूमिका सरकार के कार्यों में तथ्यात्मक रूप से कुछ निर्बन्धनों सहित भाग लेने की है किंतु निःसंदेह वे सरकार के कार्यकरण में बाहरी व्यक्ति हैं।

64. प्रस्तुत मामले में, कानूनी प्रश्न कुछ भी नहीं है लेकिन अधिनियम परिसीमा पर काबू करने के लिए और प्रतिबंधों को संविधान के अनुच्छेद 164(1क) के अधीन अधिरोपित किया गया है इसलिए यह संविधान के प्रतिकूल है और समाप्त किए जाने योग्य है।

82. कई उच्च न्यायालयों ने उपरोक्त उल्लिखित संप्रेक्षणों के परिशीलन कर बहुतायत रूप से स्पष्ट किया है कि संसदीय सचिव का पद व उनके द्वारा कार्यों के निर्वहन के प्रकाश में मंत्री के समान ही हैं और उनकी पहुंच सरकारी फाइलों तक और निर्णय लेने एवं शासन को प्रभावित करने की है। यह उल्लिखित करना सुसंगत है कि पंजाब राज्य, असम, राज्य, गुजरात, मेघालय और पश्चिम बंगाल के राज्यों में संसदीय सचिव का पद निरर्हता को हटाने के लिए उनके अपने अपने विधानों के अंतर्गत आता है।

विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए तथ्यों का विश्लेषण :

मुद्दा 1- क्या प्रत्यर्थी विधान सभा सदस्यों ने संसदीय सचिवों का पद धारण किया है ? उनकी लोक अभिलेख और जनता के साथ बातचीत में पहुंच है। व्यवहारतः सिवाय नामपद्धति के वे लगभग किसी राज्य के मंत्री के रूप में कार्य करते हैं। यह प्रतीत होता है कि मुख्यतः ये नियुक्तियां विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों जिसे नियमित मंत्रिमंडल में शामिल नहीं किया जा सका है, को इस कारण या अन्य कारणों से मुख्यतः संविधान के अनुच्छेद 164 (1क) में अंतर्विष्ट निर्बन्धनों के लेखे शामिल करने के लिए की गई है। वास्तव में 'संसदीय सचिव' को वह सब प्राप्त होता है जो किसी मंत्री को प्राप्त होता है सिवाय नाम।

83. इस मुद्दे का उत्तर वर्तमान निर्देशित मामले में इस आयोग द्वारा पारित आदेश तारीख 23-3-17 (उपाबंध 3, पृष्ठ सं. .... से पृष्ठ ....तक) द्वारा उत्तर दिया गया है जिसमें इस आयोग ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्यर्थियों ने संसदीय सचिवों का पद तारीख 13-3-15 से 8-9-2016 तक धारण किया था।

मुद्दा 2- क्या संसदीय सचिव का पद सरकार के अधीन एक पद है ?

84. वर्तमान संदर्भित मामले में तथ्यों की विसमता ऐसी है कि प्रत्याशी तारीख 13-3-15 की नियुक्तियों के आदेश द्वारा संसदीय सचिव के रूप में नियुक्त किए गए थे तथापि, ऐसे किसी पद को सृजित करने तथा पद के पदधारियों पर न्यस्त कार्य तथा उत्तरदायित्वों की प्रकृति को परिभाषित करने के लिए कोई विधि या आदेश विद्यमान नहीं था। इस प्रकार इस बारे में प्रश्न हो सकता है कि क्या पद सर्वथा ही था और क्या ऐसा पद सरकार के अधीन था।

85. तथ्य यह है कि नियुक्तियों जीएनसीटीडी आदेश, तारीख 13-5-15 द्वारा की गई थीं या केवल ऐसा पद है जिसे नियुक्त किया जा सकता है। अब इसलिए इसे तथ्य के आधार पर प्रत्यर्थी संसदीय सचिव के रूप में नियुक्त किए गए थे। यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संसदीय सचिवों का पद तारीख 13-3-15 के नियुक्ति आदेश द्वारा अस्तित्व में आया और इस प्रकार पद के अस्तित्व का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। इसके अतिरिक्त यह तथ्य कि प्रत्यर्थियों को पद की शपथ दिलाई गई थी इसे और अधिक स्पष्ट करता है कि इस संदर्भ के प्रयोजन के लिए पद के अस्तित्व पर कोई प्रश्न ही नहीं उठाया जा सकता है।

86. इस प्रश्न के बारे में कि क्या संसदीय सचिव का पद सरकार के अधीन एक पद था, क्या इस पद की प्रकृति को समझना महत्वपूर्ण है। "पद" अभिव्यक्ति को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है। महादेव बनाम शांति भाई [(1965) 2 एससीआर 422] के मामले में विचारार्थ प्रश्न यह था कि रेल प्रशासन द्वारा वकीलों के पैनल पर किसी व्यक्ति की नियुक्ति को पद के रूप में माना जा सकता है और क्या वह पद लाभ का पद है, न्यायालय ने इस मामले में मैकमिलन बनाम गेस्ट [(1942) एससी 561; (1942) एएलएलईआर 606] के मामले में हाउस आफ लार्ड्स में लार्ड राइट ने संप्रेक्षण का उल्लेख किया जिसमें राइट की यह राय है कि "पद" शब्द की विषय वस्तु अनिश्चित है इसके विभिन्न अर्थ नए अंग्रेजी शब्दकोष के चार स्तंभों के

अंतर्गत आते हैं किंतु मैं निम्नलिखित का इस मामले के प्रयोजन के लिए अति सुसंगत रूप में अपनाता हूं। ऐसा पद स्थान या स्थान जिससे कतिपय कर्तव्य जुड़े हुए हों विशेष रूप से जो कम या अधिक सार्वजनिक प्रकृति के हैं। (बल दिया गया)

87. लार्ड राइट की दी गई परिभाषा को ध्यान में रखते हुए, जैसा ऊपर कोट किया गया है, यह माना जा सकता है कि संसदीय सचिव के पद, जो एक पद है, से भी कुछ कर्तव्य जुड़े हुए होंगे क्योंकि नियुक्ति आदेश और साथ के दिल्ली विधानसभा के कारबार संचालन नियम इस मुद्दे को जानबूझ कर चुप्पी सादे हुए छोड़ दिए गए प्रतीत होते हैं। इस बारे में निश्चितता के साथ अभिनिश्चित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि ये कर्तव्य कौन से थे या कौन से रहे होंगे। यह स्थिति हमें संसदीय सचिव के पद के इतिहास तथा अन्य राज्यों में संसदीय सचिवों की नियुक्ति के संबंध में माननीय उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों को अवलोकन करने के लिए तथा उन तथ्यों तथा परिस्थितियों के बोध के आधार पर पद की प्रकृति को अभिनिश्चित करने के लिए विवश करती है।

88. ऊपर पैरा 62 में विचार विमर्श तथा मौलाना अब्दुल सकूर बनाम रिखाब चंद (ऊपर), गुरु गोविन्द बसु बनाम शंकरी प्रसाद घोषाल (ऊपर), बिहारी लाल डोब्रे बनाम रोसनलाल डोब्रे (ऊपर) प्रद्युत बारदोलाई बनाम स्वप्न राय (ऊपर) में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रगणित कसौटियों को ध्यान में रखते हुए, यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि प्रत्यर्थी जीएनसीटीडी के आदेश द्वारा संसदीय सचिवों की नियुक्ति की गई थी, इस प्रकार उन्हें मुख्यमंत्री के प्रसादपर्यन्त इस पद पर सेवा करते रहना था जिसे किसी सूचना के बिना उनकी नियुक्ति प्रतिसंहृत करने की शक्ति प्राप्त थी।

89. चूंकि संसदीय सचिवों के कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का कोई वर्णन नहीं है तथा केवल निदेश जिनका अस्तित्व उनसे सम्बन्धित था कि वे व्यष्टि मंत्रियों से जुड़े हुए थे। यह कि संसदीय सचिव सम्बद्ध मंत्रियों के निदेशों और निरंतर पर्यवेक्षण के अधीन कार्य कर रहे थे तथा सम्बद्ध मंत्रियों द्वारा यथा निदेशित और प्रत्यायोजित उत्तरदायित्वों को लेने की अपेक्षा की गई थी। अतः, सरकार के नियंत्रण का बड़ा विस्तार है जिससे वह रीति जिसमें पद के कर्तव्यों का निर्वहन किया गया था।

90. यह भी अविवादित तथ्य है कि संसदीय सचिवों को किया जाने वाला सदस्यों का विनिश्चय नियुक्त प्राधिकारी अर्थात् जीएनसीटीडी द्वारा लिया गया था और किए गए व्यय के संदाय और इस पद में किया या संदाय और सरकार के बजटीय स्रोतों से बाहर जा कर किया गया था।

91. इसके सिवाय, पैरा सं. 01 में विचार-विमर्श प्रचुरता से स्पष्ट है, 'सरकार के अधीन' किसी पद पर कब्जा करने का प्रश्न भी हितों के संघर्ष के प्रश्न से जुड़ा है क्योंकि "लाभ के पद के सिद्धांत के पीछे प्रधान मूलाधिकार यह है कि विधायक को बिना किसी सरकारी दबाव के किसी प्रकार के अधीन रहते हुए बेधड़क अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए अवश्य स्वतंत्र होना चाहिए।"

92. अतः, यह व्यापक अर्थ का प्रश्न है, यदि घर और लोगों की ओर से विधायक के कर्तव्य के मध्य संघर्ष की कोई संभावना विद्यमान होती हैं और पद के सम्बन्ध में अपने हित को उन्होंने कब्जा किया हुआ है। चूंकि संसदीय सचिव सम्बन्ध मंत्रियों द्वारा यथाप्रत्यायोजित और निर्देशित कर्तव्यों को वहन कर रहा था, इस तथ्य का कोई प्रश्न नहीं है कि संसदीय सचिव सरकार का कार्य करेंगे और अतः, वे सरकार के लिए कार्य करेंगे। विधायन द्वारा कार्यपालिका का पर्यवेक्षण और नियंत्रण लोकतंत्र के संसदीय प्ररूप की बुनियादी सुविधा है तथा विधानसभा का एक सदस्य, जो सरकार के लिए कार्य करता है उसके हित के संघर्ष की आवाज से स्वतंत्र होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि व्यापक प्रभाव था कि इन संसदीय सचिवों पर सरकार द्वारा प्रयोज्य किया गया था और इस प्रकार सरकार उसके प्रभाव की स्थिति में थी और दिल्ली विधान सभा के सदस्य के रूप में उसके द्वारा स्वतंत्र कार्य किए जाने में हस्तक्षेप कर रही थी।

93. अतः, यह प्रचुरता से स्पष्ट है कि संसदीय सचिव का पद सरकार के अधीन एक पद था और ऐसे पद पर कब्जा हितों संघर्ष की आवाज से सामना कर रहा था।

मुद्दा 3 : क्या संसदीय सचिव का पद एक ऐसा पद है जिससे लाभ की प्राप्ति होती है अथवा लाभ की प्राप्ति की होने की संभावना है ?

94. इस खंड के प्रारम्भ के समय इस निर्देश मामले की विशिष्टियों में यह समझना आवश्यक है कि जो इसके समय के बाहर आने से पूर्व उठाया गया है। प्रत्यर्थियों की तारीख 13.03.2015 के जीएनसीटीडी आदेश द्वारा दिल्ली सरकार के मंत्रियों के लिए संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्ति की गई थी। अतः, याचिकाकर्ता ने तारीख 19.06.2015 को माननीय भारत के राष्ट्रपति के समक्ष अपनी याचिका फाइल की थी। इस प्रकार जीएनसीटीडी के साथ-साथ प्रत्यर्थी विधानसभा सदस्य सावधान हो गए और ऐसी बहुत-सी प्रसुविधाएं, जो इन विधानसभा सदस्यों को प्रदान की गई थीं, दुविधा में वापस ले लिया गया था तथा संसदीय सचिवों को कार्य के आबंटन के लिए न तो कोई आदेश पारित किया गया था और न ही दिल्ली विधानसभा के कारबार के संचालन के नियम में कोई संशोधन लाया गया था। वह तथ्य, जिसमें जीएसीडीटी तथा प्रत्यर्थी सावधान हो गए

और उस तथ्य से अपने कदम को अमान्य करने के लिए सभी प्रयास किए कि जीएनसीडीटी ने तारीख 23.06.2015 को "दिल्ली विधानसभा सदस्य (निरर्हता का हटाया जाना) संशोधन विधेयक, 2015" को पुरःस्थापित किया और 24.06.2015 को इसे पारित किया जिसमें याचिकाकर्ताओं द्वारा पांच दिन के भीतर शिकायत फाइल की गई थी । इसके अतिरिक्त, विधानसभा सचिवालय ने संसदीय सचिवों के पदों के आबंटन के लिए तारीख 23.09.2015 को एक आदेश शीघ्र अगले दिन अर्थात् 24.09.2015 को वापस लिया गया था/अमान्य किया गया था, जिसमें यह और दर्शाया गया कि जीएनसीटीडी ने बहुत ही सावधानी से यह सुनिश्चित करने के लिए दिखाया कि पद की सत्य प्रकृति को प्रकट नहीं किया जाता है ।

95. याचिकाकर्ताओं ने इस सम्बन्ध में जीएनसीडीटी से प्राप्त बड़े उत्तर से कतिपय तथ्यों की तरफ ध्यान दिलाया है और ये तथ्य कथन करते हैं कि संसदीय सचिवों और प्रत्यर्थियों से प्राप्त लाभों की प्रकृति उन पर केवल कुटिल उत्तर देने के लिए है ।

96. तारीख 13.03.2015 के नियुक्ति आदेश में संसदीय सचिव अर्थात् शासकीय उद्देश्यों के लिए परिवहन और मंत्रियों के कार्यालय की जगह के दो हकदारी को स्पष्टतः अनुबद्ध किया गया है । जीएनसीडीटी ने प्रस्तुत किया है कि इन लाभों को केवल संसदीय सचिवों को न कि विधानसभा सदस्यों को प्रदान किया गया है । इसके अतिरिक्त, जीएनसीडीटी ने यह भी प्रस्तुत किया है कि संसदीय सचिवों और मंत्रियों पर होने वाले व्यय के वियोजन के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया था ।

97. जीएनसीडीटी ने निम्नलिखित के अनुसार 20.09.2016 को कथन किया है कि:

"क. विधि विभाग ने कथन किया है कि संसदीय सचिव का पद जीएनसीडीटी अधिनियम, 1991 और जीएनसीडीटी के कारबार संव्यवहार नियम के अधीन न तो परिभाषित किया गया है न ही इसके लिए कोई उपबंध किया गया है ।

ग. स्टाफ कार नियम में, नीचे नियम 44 में निम्नानुसार कथन किया गया है:

"मंत्रियों की सभी पंक्ति, उप-मंत्री और संसदीय सचिव सहित इन नियमों में प्रयुक्त "मंत्री" पद । यदि इन नियमों का कोई उपबंध, जहां तक वे मंत्रियों और उप-मंत्रियों से सम्बन्धित है, मंत्री (भत्ते, चिकित्सा उपचार और अन्य विशेषाधिकार) नियम, 1957 के किन्हीं तत्स्थानी उपबंध प्रतिकूल हैं, बाद में आने वाले उपबंध लागू होंगे जैसा कि मार्च, 2015 के स्टाफ कार्य नियम के स्वामी कंपाइलेशन के रूप में उद्धरित किया गया है।" इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थियों को तारीख 13.03.2015 के नियुक्ति आदेश द्वारा संसदीय सचिव के रूप में नियुक्त किया गया था और तब इस नियुक्ति आदेश में उनकी भूमिकाओं, उत्तरदायित्वों अथवा कर्तव्यों, आदि की कोई परिभाषा नहीं दी गई है और सभी के द्वारा यह कथन किया है कि वे व्यष्टिक मंत्रियों के साथ जुड़े होंगे, उनको कोई वेतन नहीं दिया जाता और वे सम्बद्ध मंत्रियों के कार्यालय के स्थान में कार्य करने और उनकी कार्यालय की कार के सम्बन्ध के लिए हकदार होंगे । याचिकाकर्ता ने अपने तथ्य के संदर्भ में यह ध्यान दिलाया है कि नियुक्ति आदेश में इन संसदीय सचिवों के लिए विहित किए गए किसी एकल कर्तव्य के बिना कार्यालय की कार का उपबंध किया गया है और जब कार्यालय की कार से वास्तव में लाभ है, इसके उपबंध बिना किसी कार्य के सौंपे गए अलाभ प्रकृति का होता है तथा यह और संसदीय सचिवों के लाभ की सहमति के लिए आशय की स्थापना की जाती है । भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने जया बच्चन बनाम भारत बनाम (सुप्रा) के मामले में विचार किया था कि अपेक्षित निरर्हता को प्रभावित करने के क्रम में लाभ के पद के बनाने की एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में 'चौफर ड्राइवेन कार ऐट स्टेट एक्सपेंशेस' की प्रसुविधा का उपबंध किया गया है और अतः, यह नोट करने के लिए सही है कि कार्यालय की जगह और चौफर ड्राइवेन कार/परिवहन की अभिलाभ सामग्री प्राप्त की गई थी जिससे प्रत्यर्थी विधानसभा सदस्य संसदीय सचिव का पद नियुक्ति के पश्चात् के लिए हकदार था ।

98. जीएनसीडीटी ने तारीख 23.09.2015 के आदेश सं. 16(50)/2014-15/एलएएस/सीटी/5437-5443 द्वारा यह कथन किया है कि विधानसभा सचिवालय ने पत्र सं. 16(87/2016/एलएएस/सीटी/7285), तारीख 12.09.2016 द्वारा माननीय सभापति को श्री अजय रावल, सचिव द्वारा हस्ताक्षरित तारीख 24.09.2015 के टिप्पण की प्रति प्रदान की है जिसमें यह कथन किया गया है कि माननीय सभापति ने निदेश दिया है कि मंत्रियों के संसदीय सचिवों के लिए कमरों के आबंटन सम्बन्धी तारीख 23.09.2015 के आदेश को अगले आदेश तक दुविधा में रखा था ।

99. जीएनसीडीटी ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित ब्यौरों का भी उपबंध किया है:

(क) "मंत्री (परिवहन विकास, जीएडी नियोजन और श्रम) के लिए सचिव से तारीख 26.03.2015 की अपेक्षाओं के सम्बन्ध में यह कथन किया गया है कि माननीय मंत्री से उनके कार्य की प्रसुविधा के लिए 'ए' विंग का हॉल, 7वां स्तर में मंत्री (परिवहन विकास, जीएडी नियोजन और श्रम) के लिए निम्नलिखित संसदीय सचिवों के लिए कार्यालय की जगह (केबिन) को बनाये जाने की वांछा की गई हैं ।'

1. श्री संजीव झा, संसदीय सचिव (परिवहन)
2. सुश्री सरिता सिंह, संसदीय सचिव (नियोजन)

3. श्री नरेश यादव, संसदीय सचिव (श्रम)

4. श्री जरनैल सिंह, संसदीय सचिव (विकास)

(ख) तारीख 13.04.2015 की अपेक्षा, जिसमें यह कथन किया गया है कि परिवहन विकास, जीएडी नियोजन और श्रम के मंत्री के पद में मंत्री (परिवहन और जीएडी) के लिए ओएसडी के आदेश के परिणामस्वरूप शीघ्रता से 'ए' विंग का हॉल, 7वां स्तर पर हॉल परिसर के केबिन में कुर्सी केटीसी, इंटरकॉम, कम्प्यूटर सिस्टम, इंटरनेट और बैठक-कुर्सी के साथ अधिकारियों की एक मेज की व्यवस्था की जाए ।

(ग) तारीख 20.04.2015 की अध्यपेक्षा, जिसमें कथन किया गया है कि तारीख 26.03.2015 के पूर्व के अनुरोध की निरंतरता में शीघ्रतापूर्वक 'ए' विंग का हॉल, 7वां स्तर में मंत्री (जीएडी, विकास, नियोजन और श्रम, आदि) के लिए दो अधिक केबिन बनायी जाएं ।

(घ) तारीख 28.04.2015 की अध्यपेक्षा, जिसमें कथन किया गया है कि परिवहन, जीएडी, विकास, श्रम और नियोजन के मंत्रियों के पद में कार्यालय प्रयोग के लिए 7वां स्तर, 'ए' विंग पर हॉल परिसर में तीसरे केबिन में सेंटर टेबल, ऑफिसर टेबल, ऑफिसर चेयर, बैठक कुर्सी, कम्प्यूटर, इंटरनेट प्रसुविधा, इंटरकॉम और वर्टिकल लाइन के साथ एक सोफा सेट प्रदान करने के लिए है । कृप्या इसे अतिशीघ्र के रूप में समझा जाएगा ।

(ङ) तारीख 29.04.2015 अध्यपेक्षा, जिसमें कथन किया गया है कि परिवहन, जीएडी, विकास, श्रम और नियोजन के मंत्रियों के पद में कार्यालय प्रयोग के लिए 7वां स्तर, 'ए' विंग हॉल परिसर में केबिन के लिए कुर्सी के साथ चार सामान्य आकार के ऑफिस टेबल कृप्या शीघ्रता से प्रदान करें ।

(च) उपरोक्त सभी अपेक्षाओं को अगली आवश्यकता के लिए दिल्ली सचिवालय भवन में सिविल कार्य को देखने के पश्चात् एई(सिविल), पीडब्ल्यू के द्वारा अग्रेषित किया गया था ।

(छ) इसके अतिरिक्त डीडब्ल्यूडी से प्राप्त जानकारी को भी दर्शित करती है कि उपरोक्त उप-पैरा (क) से (ङ) में यथा कथन के अनुसार चार अपेक्षा (तारीख 26.03.2015, 13.04.2015, 29.04.2015 और 28.04.2015) 7वां तल, दिल्ली सचिवालय भवन पर 40वर्गमीटर के कार्यालय स्थान के सृजन के सम्बन्ध में प्राप्त हुई थी । डीडब्ल्यूडी ने तारीख 12.09.2016 के पत्र द्वारा सूचित किया है कि कार्यालय केबिन तारीख 20.05.2015 को सृजित किए गए थे तथा 20.05.2015 को कब्जे के लिए फिट पाये गए थे । पीडब्ल्यूडी द्वारा यह भी कथन किया गया है कि इन केबिन/कार्यालय के स्थान को देने की वास्तविक तारीख 25.05.2015 की और बजटीय मुख्य शीर्ष एमएच 4059 के अधीन इन कार्यालय केबिन पर पीडब्ल्यूडी द्वारा 3,73,871/- रुपये की कुल रकम उपगत की गई थी जिसमें सिविल और इलेक्ट्रॉनिक वर्क पर 2,22,500/- रुपये और फर्नीचर पर 1,51,373/- रुपये समावेश किए गए थे (बल आपूर्ति) ।

100. जीएनसीडीटी ने यह और प्रस्तुत किया है कि लोक निर्माण विभाग ने तारीख 14.09.2016 के अपने उत्तर में यह सूचित किया है कि उप-सचिव सीटी दिल्ली विधानसभा सचिवालय से अपेक्षा पत्र सं. 16(26)/2015-16/एलएएस/सीटी/865, तारीख 15.05.2015 का पत्र प्राप्त हुआ था जिसमें 21 संसदीय सचिवों के लिए 21 एक्जिक्यूटिव टेबल, 21 एक्जिक्यूटिव चेयर, 136 विजिटर चेयर, जिसके लिए पीडब्ल्यूडी द्वारा 11,75,828/- रुपय खर्च किए गए थे । इस सम्बन्ध में पीडब्ल्यूडी ने यह और सूचित किया है कि दिल्ली विधानसभा सचिवालय ने तारीख 16.06.2015 के अपने पत्र द्वारा यह बताया था कि इस उद्देश्य के लिए 13,26,300/- रुपये की मंजूरी की गई थी ।

101. इस अवसर पर यह भी पुनः बताया जाना उचित है कि प्रत्यर्थियों के नियुक्ति के आदेश में स्पष्ट टिप्पण किया गया था कि संसदीय सचिव मंत्रियों के कार्यालय के जगह का प्रयोग करने के लिए हकदार होंगे जिनके साथ वे जुड़े हुए हैं । तथापि, निर्वाचन क्षेत्र के कार्यालय के अतिरिक्त पृथक कार्यालय की जगह, नियुक्ति आदेश में नियत की गई इस स्थिति के बदले प्रत्यर्थी विधानसभा सदस्य को भी प्रदान की गई थी और कई अवसरों पर संसदीय सचिवों को एक से अधिक कार्यालय की जगह दी गई थी और उनके पुनर्निर्माण के लिए उदार अनुदान दिया गया था । यह 'लाभ' की परिभाषा के अधीन स्पष्ट रूप से दिया गया है ।

102. संसदीय सचिवों को उनके निर्वाचन क्षेत्र (जीएनसीडीटी द्वारा तैयार की गई जानकारी के अनुसार) के कार्यालय के अतिरिक्त आबंटित किए गए कार्यालयों के बारे में ब्यौरे निम्नानुसार हैं:-

क्र.सं.	विधानसभा सदस्य का नाम	आबंटित किया गया कार्यालय	ब्यौरे के आदेश
1.	श्री आदर्श शास्त्री	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
2.	सुश्री अल्का लांबा	ओल्ड सीपीओ भवन, कश्मीरी गेट, दिल्ली में दो कार्यालय का कमरा ।	कला, संस्कृति और भाषा विभाग के अधीन सिंधी अकादमी द्वारा प्रदान किया गया कार्यालय । पीडब्ल्यूडी द्वारा पुनःनिर्माण कार्य किया गया । सचिव सिंधी अकादमी के तारीख 13.09.2016 का पत्र संख्या 2(39)5ए/16/8470 ।
3.	श्री अनिल कुमार वाजपेयी	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
4.	श्री अवतार सिंह	कार्यपालक इंजीनियर, के कार्यालय दक्षिण पूर्व (भवन), लोक निर्माण विभाग हौज खास, नई दिल्ली में कार्यालय स्थान ।	लोक निर्माण विभाग के पत्र संख्या तारीख 17.06.2016 द्वारा ।
		भू-तल, श्रम कल्याण केन्द्र, गिरी नगर, कालकाजी, नई दिल्ली में कार्यालय स्थान ।	श्रम विभाग के पत्र संख्या तारीख 14.09.2016 द्वारा ।
5.	श्री जरनैल सिंह (तिलक नगर)	'ए' विंग, 7वां स्तर, दिल्ली सचिवालय का हॉल	मंत्री (परिवहन, विकास, नियोजन और श्रम), तारीख 26.03.2015 के लिए सचिव से अपेक्षा ।
		प्रशिक्षण-सह-उत्पादन केन्द्र, अशोक नगर	समाज कल्याण विभाग ।
6.	श्री कैलाश गहलोत	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
7.	श्री मदन लाल	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
8.	श्री मनोज कुमार	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
9.	श्री नरेश यादव	'ए' विंग, 7वां स्तर, दिल्ली सचिवालय का हॉल	मंत्री (परिवहन, विकास, नियोजन और श्रम), तारीख 26.03.2015 के लिए सचिव से अपेक्षा ।
10.	श्री नितिन त्यागी	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
11.	श्री प्रवीण कुमार	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
12.	श्री राजेश गुप्ता	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
13.	श्री राजेश ऋषि	सी2, जल बोर्ड ऑफिस जनकपुरी, सी2 फायर स्टेशन, जनकपुरी, डावरी फ्लाई ओवर के नीचे ।	दिल्ली जलबोर्ड, तारीख 15.01.2016 और 14.09.2015 पत्र संख्या 56/84 द्वारा ।
		फिश मार्केट, उत्तम नगर, मेट्रो स्टेशन के नजदीक, दिल्ली पर जेई (जल/सीवर) स्टोर पर कक्ष सं. 1 और 2 ।	दिल्ली जलबोर्ड, तारीख 10.05.2016 पत्र सं. 466 द्वारा ।
14.	श्री संजीव झा	'ए' विंग, 7वां स्तर, दिल्ली सचिवालय का हॉल	मंत्री (परिवहन, विकास, नियोजन और श्रम), तारीख 26.03.2015 के लिए सचिव से अपेक्षा ।
15.	सुश्री सरिता सिंह	'ए' विंग, 7वां स्तर, दिल्ली सचिवालय का हॉल	मंत्री (परिवहन, विकास, नियोजन और श्रम), तारीख 26.03.2015 के लिए सचिव से अपेक्षा ।

16.	श्री शरद कुमार चौहान	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
17.	श्री शिवचरण गोयल	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
18.	श्री सोम दत्त	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
19.	श्री सुखवीर सिंह दलाल	लागू नहीं होता	लागू नहीं होता
20.	श्री विजेन्द्र गर्ग विजय	इन्द्रपुरी स्थित पीडब्ल्यूडी ऑफिस रोड सब-डिवीजन पर कार्यालय की जगह ।	पीडब्ल्यूडी, तारीख 21.07.2015 के पत्र द्वारा ।

103. उपरोक्त प्रस्तुत किए गए विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि संसदीय सचिव के कार्यालय में लाभ को प्रस्तुत किया गया था जिसे 'लाभ' के पूर्वाविलोकन से बाहर नहीं किया जा सकता और अतः, यह निष्कर्ष किया जा सकता है कि संसद सचिव का कार्यालय लाभ के पद की प्राप्ति है और उस कार्यालय के पदग्राही के लिए लाभ की प्राप्ति की संभावना की गई थी ।

विवाद्यक 4 : क्या संसदीय सचिव के पद की प्रकृति या कृत्य कार्यपालिक है ?

104. इस विवाद्यक उपरोक्त पैरा सं. 77-78 में निकाले गए निष्कर्ष से भागत: उत्तर दिया गया है कि संसदीय सचिवों का कार्यपालिक पद है और हित के प्रतिकूल की संभावना का विश्लेषण पैरा 92 में विवाद्यक 2 के अधीन ऊपर दिया गया है ।

105. संसदीय सचिव के पद को ठीक ही कई माननीय उच्च न्यायालयों द्वारा पद के इतिहास के आलोक में कनिष्ठ मंत्री के पद के समान बताया है (पैरा 78-81 देखें) और यह तथ्य कि वे शासकीय फाइलें देख सकते हैं और उनकी मंत्रियों की पंक्ति और प्रास्थिति है और वे मंत्री के कृत्य करते हैं ।

106. जी. एन. सी. टी. डी. से प्राप्त उत्तर में यह उल्लेख किया गया है कि संसदीय सचिव संबद्ध मंत्रियों ने यथासमनुदेशित कर्तव्यों का पालन किया और उन मंत्रियों के कार्यालयों की बैठकों में भाग लिया जिनके साथ वे सहबद्ध थे । यह नहीं कहा जा सकता कि ये बैठकें केवल सलाहकारी क्षमता हुई जब बैठकों की अध्यक्षता इन संसदीय सचिवों द्वारा की गई और उनमें महत्वपूर्ण कार्यपालिक विनिश्चय किए गए । जी. एन. सी. टी. डी. से प्राप्त उत्तर के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि याची ने उचित ही यह इंगित किया कि संसदीय सचिवों ने ऐसी बैठकों में भाग लिया और उनकी अध्यक्षता की जिनमें नीतिगत विरचना या कार्यपालिक विनिश्चय किए गए और कई मामलों में संसदीय सचिवों द्वारा अध्यक्षता की गई समिति बैठकों में 'विनिश्चय किया गया' और न केवल विचाराधीन विषय पर मात्र सिफारिश की गई । संसदीय सचिवों ने निरीक्षण किए और ऐसे निरीक्षणों के दौरान मौखिक निर्देश दिए जिनका उल्लेख निरीक्षण रिर्पोटों में किया गया । फिर भी, बैठकों की फाइलें कभी-कभी सूचना और आवश्यक कार्रवाई के लिए मंत्रियों के संसदीय सचिवों को भेजी गई ।

107. संसदीय सचिवों द्वारा अध्यक्षता की गई/भाग ली गई बैठकों और किए गए निरीक्षणों और जन सुनवाई (जी. एन. सी. टी. डी; द्वारा दी गई सूचना के अनुसार) का संक्षिप्तांश इस प्रकार है :

क्र.सं.	**विधायक का नाम**	**की गई बैठकों के ब्यौरे**
1.	श्री आदर्श शास्त्री	सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री के संसदीय सचिव की हैसियत में अंकीय भारत से सशक्तीकरण के सम्मेलन सत्र में भाग लिया और प्रतिपूर्ति के रूप में 15,479/- रु. संदत्त किया गया ।
		नि:शुल्क वाई-फाई प्रोजेक्ट के बारे में माननीय मुख्यमंत्री और उप-मुख्यमंत्री के स्तर पर हुई पुनरीक्षण बैठक में भाग लिया ।
		मंत्रि परिषद ने कैबिनेट विनिश्चय सं. 2208 तारीख 15 सितम्बर, 2015 द्वारा अपने सूचीबद्ध अभिकरणों के द्वारा एन. आई. सी. एस. आई; से परामर्श लगाने का अनुमोदन दिया और इन प्रस्तावों के मूल्यांकन के लिए समिति गठित की गई और उप-मुखमंत्री ने विशेष अतिथि के रूप में श्री आदर्श शास्त्री के भाग लेने का अनुमोदन किया ।

2.	सुश्री अलका लाम्बा	उपलब्ध नहीं ।
3.	श्री अनिल कुमार बाजपेयी	डी. जी. ई. एच. एस. अधिकारी और दिल्ली सरकार सेवानिवृत्त पेंशनधारी/अधिकारी/कर्मचारी एसोसिएशन के साथ 28 मई, 2015 को हुई बैठक की अध्यक्षता की जिसमें कार्यपालिक विनिश्चय किए गए और संसदीय सचिव ने प्रतिनिधियों द्वारा उठाए गए मुद्दों के लिए स्पष्टीकरण दिया ।
4.	श्री अवतार सिंह	उपलब्ध नहीं ।
5.	श्री जरनैल सिंह (राजौरी गार्डन)*	तारीख 24 सितंबर, 2015 को दिल्ली विद्युत कर्मचारी संघ के प्रतिनिधियों के साथ हुई बैठक की अध्यक्षता की जिसमें संविदागत कर्मचारियों के गैर-विनियमितीकरण पर चिंता व्यक्त की और बैठक के टिप्पण को मंत्री के ओ.एस.डी. द्वारा निदेशक (एच.आर.), आई.पी.जी.सी.एल. को मामले पर विचार करने और संसदीय सचिव को की गई कार्रवाई की सूचना देने के लिए भेजा गया ।
		6 अगस्त, 2015 को डी.ई.एस.यू. सब-स्टेशन स्टाफ के साथ हुई बैठक की अध्यक्षता की । बैठक दिल्ली ट्रांसको लिमिटेड के विभिन्न सब-स्टेशनों में कार्यरत प्रचालक/शिफ्ट कर्मचारियों के शिकायतों के बारे में थी ।
6.	श्री जरनैली सिंह (तिलक नगर)	माननीय मंत्री की छुट्टी अवधि के दौरान 27 मई, 2016 को ए.पी.एम.सी. की पुनर्विलोकन बैठक की अध्यक्षता की ।
		तिगरी खानपुर की मंडी की बाबत गठित समिति के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया ।
		परिवहन और विकास मंत्री के कार्यालय में 9 सितंबर, 2015 को हुई बैठक की अध्यक्षता की जहां तिगरी खानपुर की नई आधुनिक मंडी के विकास को गति प्रदान करने, विद्यमान अनुज्ञप्तिधारियों को समायोजित करने के लिए प्लेटफार्म बनाकर मंगोलपुरी मंडी को पुन: आरंभ करने और नये अनुज्ञप्तिधारियों के आवंटन के लिए मापदंड विरचित करने आदि से संबंधित कई महत्वपूर्ण कार्यपालिक विनिश्चय किए गए ।
		4 नवंबर, 2015 को परिवण और विकास मंत्री के कार्यालय में बैठक की गई जिसमें 200-250/- करोड़ रुपए की अनुमानित परियोजना लागत की तिगरी खानपुर में मंडी के विकास के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने हेतु परिवहन और विकास मंत्री के संसदीय सचिव की अध्यक्षता वाली परियोजना समिति गठित करने का विनिश्चय किया गया ।
		मंत्री की अनुपस्थिति में, 16 दिसंबर, 2015 को परिवहन और विकास मंत्री के कार्यालय में हुई पुनर्विलोकन समिति की अध्यक्षता की जिसमें कई महत्वपूर्ण कार्यपालिक विनिश्चय किए गए ।
		18 मार्च, 2016 को परिवहन और विकास मंत्री के कार्यालय में बैठक हुई जिसमें महत्वपूर्ण कार्यपालिक विनिश्चय किए गए । इस बैठक में यह भी विनिश्चय किया गया कि संसदी सचिव गाजीपुर मंडी में अंडा व्यापार के नियंत्रण की संभावना पर माननीय मंत्री को एक प्रस्ताव प्रस्तुत करेंगे । उक्त बैठक में यह भी विनिश्चय किया गया कि संसदीय सचिव के साथ बी.सी., डी.ए.एम.बी. द्वारा गाजीपुर फल और सब्जी मंडी के संयुक्त निरीक्षण की रिपोर्ट अनधिकृत अधिभोगियों को हटाने के सुझाव के साथ प्रस्तुत की जाए ।
		27 मई, 2016 को परिवहन और विकास मंत्री के संसदीय सचिव द्वारा ए.पी.एम.सी. की बैठक आयोजित करने के लिए एक बैठक सूचना जारी की गई ।

		8 जून, 2016 को परिवहन और विकास मंत्री के कार्यालय में बैठक हुई जिसमें पुन: मंडी में स्थान के आबंटन, बाढ़ तैयारी, अधिकारियों की प्रोन्नति आदि पर कई महत्वपूर्ण कार्यपालिक विनिश्चय किए गए ।
		8 दिसंबर, 2016 को हुई पुनर्विलोकन बैठक में यह विनिश्चय किया गया कि श्री जरनैल सिंह, संसदीय सचिव (विकास) और अन्य सदस्यों की समिति पशुपालन विकास द्वारा चलाई जा रही सभी गौशालाओं का दौरा करेगी और उनके रखरखाव तथा अन्य मुद्दों से संबंधित रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी ।
		श्री जनरैल सिंह, संसदीय सचिव (विकास) ने विशेष अतिथि के रूप में कृषि विपणन बोर्ड की बैठकों में भाग लिया ।
		श्री जनरैल सिंह, संसदीय सचिव (विकास) ने ए.पी.एम.सी., नरेला में 10 जून, 2015 को हुई जनसुनवाई की अध्यक्षता की । दूसरी जनसुनवाई 11 मार्च, 2015 को आजादपुर में माननीय मंत्री (विकास) द्वारा की गई जिसमें श्री जनरैल सिंह, संसदीय सचिव (विकास) ने भी भाग लिया । उन्होंने 19 दिसंबर, 2015 को भी मत्स्य और मत्स्य पालन के पणधारियों के साथ मुद्दों पर चर्चा के लिए बैठक की ।
7.	श्री कैलाश गहलोत	उपलब्ध नहीं ।
8.	श्री मदनलाल	उपलब्ध नहीं ।
9.	श्री मनोज कुमार	की गई बैठकों का उल्लेख मंत्रालय द्वारा सलाहकार प्रकृति का किया गया । कोई ब्यौरा उपलब्ध नहीं कराया गया ।
10.	श्री नरेश यादव	प्रतिभा एकेडमी की स्थापना का सुझाव देने के लिए गठित समिति का सदस्य और इसकी अवसंरचना, प्ररुपिता, समयबद्धता, रूपरेखा आदि के लिए गठित समिति की अध्यक्षता ।
		घरेलू कर्मकांडों के लिए विभिन्न कल्याण उपायों का सुझाव देने के लिए माननीय मंत्री (श्रम) द्वारा गठित समिति का सदस्य ।
11.	श्री नितिन त्यागी	11 फरवरी, 2016 को महिला और बाल विकास मंत्रालय की बैठक में विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया ।
12.	श्री प्रवीण कुमार	शिक्षा विभाग की योजना स्कीम की सतत मानीटरिंग के लिए उप-मुख्यमंत्री स्तर पर हुई पुनर्विलोकन बैठक में भाग लिया ।
13.	श्री राजेश गुप्ता	गृह, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, ऊर्जा, पी.डब्ल्यू.डी. और उद्योग मंत्री ने 29 दिसंबर, 2015 को एक बैठक की जहां उनके और दो अन्य संसदीय सचिवों के सदस्य के रूप में दिल्ली में सड़क की बत्तियों पर पुनरीक्षित नीति विरचित करने के लिए एक सशक्त समिति गठित करने का विनिश्चय किया तथापि, सड़क की बत्तियों के विषय को बाद में लोक कल्याण विभाग को अंतरित कर दिया गया इसलिए इस सशक्त समिति की कोई बैठक नहीं हुई ।
		स्वास्थ्य मंत्री की अध्यक्षता में स्वाथ्य विभाग के कार्यकरण का पुनर्विलोकन करने के लिए 4 मार्च, 2015 और 11 मार्च, 2015 को हुई साप्ताहिक पुनर्विलोकन बैठक में भाग लिया जहां नवजात मृत्यु दर को कम करने, सब के लिए इलेक्ट्रानिक स्वास्थ्य कार्ड उपलब्ध कराने, पी.एच.सी. के कंप्यूटरीकरण आदि की कार्य योजना जैसे विषयों पर महत्वपूर्ण कार्यपालिक विनिश्चय किए गए ।
14.	श्री राजेश ऋषि	उपलब्ध नहीं ।

15.	श्री संजीव झा	परिवहन मंत्री के सम्मेलन कक्ष में 5 जुलाई, 2015 को हुई बैठक की अध्यक्षता की जहां डी.टी.सी. के कर्मचारी पेंशन स्कीम के क्रियान्वयन के बारे में कई विनिश्चय किए गए ।
		ऑर्ड-इवेन स्कीम अर्थात् 1 जनवरी, 2016 से 15 जनवरी, 2016 के दौरान लगाए गए संविदा वहन बस आपरेटरों को संदत्त किए जाने के लिए विभिन्न बस मॉडलों के लिए भाड़ा प्रभार विनिश्चित करने हेतु 10 दिसंबर, 2015 और 11 दिसंबर, 2015 को हुई परिवहन/डी.टी.सी. विभाग द्वारा गठित डी.टी.सी. अधिकारियों की समिति की अध्यक्षता की ।
		ऑटोरिक्शा के लिए 10,000 आशय पत्र के जारी करने में अभिकथित अनियमितता से संबंधित मामले में, ऑटोरिक्शा यूनिट, बुराड़ी का निरीक्षण परिवहन मंत्री के ओ.एस.डी. द्वारा उनके साथ किया गया और उनके आदेश पर कार्यालय कक्ष पर ताले लगाए गए और सीलबंद किए गए ।
16.	सुश्री सरिता सिंह	उपलब्ध नहीं ।
17.	श्री शरद कुमार चौहान	उपलब्ध नहीं ।
18.	श्री शिवचरण गोयल	आयुक्त (व्यापार और कर) कार्यालय द्वारा आयोजित बिल बनाओ ईनाम पाओ स्कीम के अधीन कुछ पुरस्कार वितरण समारोह में वित्त मंत्री के संसदीय सचिव ने भाग लिया ।
19.	श्री सोमदत्त	गृह, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, ऊर्जा, पी.डब्ल्यू.डी. और उद्योग मंत्री ने 29 दिसंबर, 2015 को एक बैठक की जहां उनके और दो अन्य संसदीय सचिवों के सदस्य के रूप में दिल्ली में सड़क की बत्तियों पर पुनरीक्षित नीति विरचित करने के लिए एक सशक्त समिति गठित करने का विनिश्चय किया तथापि, सड़क की बत्तियों के विषय को बाद में लोक कल्याण विभाग को अंतरित कर दिया गया इसलिए इस सशक्त समिति की कोई बैठक नहीं हुई ।
		टी.पी.डी.डी.एल. और एम.सी.डी. के साथ 5.34 करोड़ रुपए के आरंभिक अनुमानित बजट के साथ दिल्ली में लाईटें फिर से लगवाने के लिए बैठक की गई ।
		दिल्ली राज्य उद्योग और अवसंरचना विकास निगम की ओर से 2 मई, 2015 को एस.एम.ए. और एस.एस.आई. औद्योगिक क्षेत्र के साथ बवाना औद्योगिक क्षेत्र, बजीरपुर औद्योगिक क्षेत्र और राजस्थानी औद्योगिक नगर का दौरा किया ।
		28 मई, 2015 को क्षेत्र के विधायक के साथ मायापुरी औद्योगिक क्षेत्र का दौरा किया । 10 जून, 2015 को क्षेत्र के विधायक के साथ नरेला औद्योगिक क्षेत्र का दौरा किया । दिल्ली राज्य उद्योग और अवसंरचना विकास निगम की ओर से 17 जून, 2015 को झिलमिल औद्योगिक क्षेत्र के फ्लैट युक्त कारखाना काम्प्लेक्स का दौरा किया ।
		1 जुलाई, 2015 को नरायणा औद्योगिक क्षेत्र का दौरा किया । 8 जुलाई, 2015 को बादली औद्योगिक क्षेत्र का दौरा किया । 15 जुलाई, 2015 को पटपड़गंज औद्योगिक क्षेत्र का दौरा किया । 22 जुलाई, 2015 को तिलक नगर औद्योगिक क्षेत्र का दौरा किया । दिल्ली राज्य उद्योग और अवसंरचना विकास निगम की ओर से 29 जुलाई, 2015 को मंगोलपुरी फेज-I औद्योगिक क्षेत्र का दौरा किया ।
		दिल्ली राज्य उद्योग और अवसंरचना विकास निगम की ओर से 12 अक्तूबर, 2015 को डी.एल.एफ. मोती नगर औद्योगिक क्षेत्र और 14 अक्तूबर, 2015 को कीर्ति नगर औद्योगिक क्षेत्र का स्थल निरीक्षण ।

		15 मार्च, 2016 को आनंद पर्वत औद्योगिक क्षेत्र के संदर्भ में दिल्ली राज्य उद्योग और अवसंरचना विकास निगम की बैठक में भाग लिया। *संसदीय सचिव की क्षमता में इन निरीक्षणों के दौरान उनके द्वारा कतिपय मौखिक निर्देश दिए गए और कुछ का उल्लेख निरीक्षण रिपोर्टों में किया गया।*
20.	श्री सुखवीर सिंह दलाल	गृह, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, ऊर्जा, पी.डब्ल्यू.डी. और उद्योग मंत्री ने 29 दिसंबर, 2015 को एक बैठक की जहां उनके और दो अन्य संसदीय सचिवों के सदस्य के रूप में दिल्ली में सड़क की बत्तियों पर पुनरीक्षित नीति विरचित करने के लिए एक सशक्त समिति गठित करने का विनिश्चय किया तथापि, सड़क की बत्तियों के विषय को बाद में लोक कल्याण विभाग को अंतरित कर दिया गया इसलिए इस सशक्त समिति की कोई बैठक नहीं हुई।
21.	श्री विजेन्द्र गर्ग विजय	सार्वजनिक कार्य विभाग मंत्री ने मशीनीकृत पार्किंग (स्वचालित मल्टीलेवल कार पार्किंग प्रणाली) पर एक प्रस्तुतीकरण लिया और यह मत व्यक्त किया कि पी.डब्ल्यू.डी. को स्वचालित मल्टीलेवल कार पार्किंग प्रणाली के निर्माण के लिए कुछ नमूना कार्य करना चाहिए और इस बैठक की कार्य-सूची श्री विजेन्द्र गर्ग, संसदीय सचिव को जानकारी और आवश्यक कार्रवाई के लिए भेजी गई।
राजौरी गार्डन के विधान सभा क्षेत्र के विधायक श्री जरनैल सिंह ने 17 जनवरी, 2017 को पद त्याग दिया था और अप्रैल, 2017 में इस रिक्ति को भरने के लिए उप-चुनाव किए गए थे। अत: उनकी निरर्हता के बारे में कोई प्रश्न नहीं उठता।		

108. इस प्रकार विमर्शित तथ्यों और परिस्थितियों से यह काफी स्पष्ट होता है कि संसदीय सचिव के पद के कृत्य न केवल कार्यपालिक प्रकृति के हैं बल्कि स्वत: कार्यपालिका के भाग थे।

विवाद्यक 5 : क्या "संसदीय सचिव" के पद को गैर छूट "लाभ के पद" कहा जा सकता है ?

109. इस विवाद्यक का उत्तर उपरोक्त चार विवाद्यकों के लिए दिए गए विश्लेषण के समग्र समझ पर निर्भर है।

110. लाभ के पद के प्रश्न को मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जांच किए जाने की अपेक्षा है और "लाभ के पद" पद का तकनीकी निर्वचन नहीं किया जा सकता। इस संदर्भ में यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि लाभ के पद को धारण करने का निर्वाचन पश्चात् वर्जन के पीछे विचार और जारी निरर्हता तथा लाभ के पद धारण करने के लिए अरर्हता की निर्वाचन पूर्व खामी यह है कि सरकार के अधीन लाभ का पदधारक जिसकी संवीक्षा सदन में की जाएगी, जनता और सदन के प्रति अपने कर्तव्यपालन की अपनी योग्यता से समझौता करता है और जोखिम में डालता है। अत: लाभ के पद के प्रश्न का निर्वचन और परीक्षा करते समय इस उद्देश्य को ध्यान में रखना आवश्यक है।

111. 1997 में दिल्ली की विधान सभा ने दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र के विधान सभा के सदस्य को चुने जाने या सदस्य होने पर निरर्हता से कतिपय पदों को छूट प्रदान करने के लिए दिल्ली विधानसभा सदस्य (निरर्हता का निराकरण) अधिनियम, 1997 (1997 का दिल्ली अधिनियम, 6) नामक विधि अधिनियमित की। लाभ का पद धारित करने के लिए दिल्ली के मुख्यमंत्री के संसदीय सचिव के पद को लागू निरर्हता को दिल्ली विधानसभा सदस्य (निरर्हता का निराकरण) अधिनियम, 1997 से उपाबद्ध अनुसूची में इसे जोड़कर हटाया गया था। यह उल्लेख करना गलत नहीं हो सकता है कि विधानसभा में अपनी विवेक से इस पद को लाभ का पद माना और इस प्रकार इसे छूट प्रापत प्रवर्ग में रखा।

इस अधिनियम की अनुसूची में मूल रूप से केवल वे दो पद सम्मिलित हैं अर्थात्:-

i. दिल्ली खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड के अध्यक्ष पद; और

ii. दिल्ली महिला आयोग के अध्यक्ष का पद। इस अनुसूची को वर्ष 2002 में निम्नलिखित को जोड़े जाने के लिए संशोधन किया गया था;

iii. राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली की विधानसभा में विरोधी दल के नेता का पद;

iv. राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली की विधानसभा में मुख्य सचेतक का पद;

इसअधिनियमकी अनुसूची को वर्ष 2006 में निम्नलिखित को जोड़े जाने के लिए संशोधन किया गया था;

v. यमुना पार क्षेत्र विकास, बोर्ड दिल्ली के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का पद;

vi. दिल्ली ग्रामीण विकास बोर्ड,दिल्ली ने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का पद;

vii. जी.एन.सी.टी.डी. के मुख्यमंत्री के संसदीय सचिव का पद;

viii. जी.एन.सी.टी.डी. द्वारा गठित नौ जिला विकास समितियों के अध्यक्ष के पद;

ix. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति कलायाण बोर्ड दिल्ली के अध्यक्ष का पद;

x. अग्निशमन सलाहकार समिति के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्य के पद;

xi. चिकित्सा सलाहकार समिति, दिल्ली के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्य के पद;

xii. अध्यक्ष दिल्ली सरकार द्वारा प्रायोजित महाविद्यालय के शासी बोर्ड के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्य के पद;

xiii. दिल्ली सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 2003 के अधीन रजिस्ट्रीकृत सहकारी संस्था या संगठन के अध्यक्ष और सदस्य का पद; और

xiv. जी.एन.सी.टी.डी. द्वारा गठित कानूनी या गैर कानूनी निकाय या समिति या निगम या सोसाइटी के अध्यक्ष, निदेशकट और सदस्य ।

112. इसलिए उक्त तारीख को 14 पदों को छूट प्रदान कर दी गई थी तथापि मुख्यमंत्री से भिन्न अनुसूची में नहीं जोडा गया था । अन्य मंत्रिमंडल सदस्य के संसदीय सचिव के पद को जी.एन.सी.टी.डी.द्वारा छूट प्राप्त प्रवर्ग के अधीन रखने का प्रयास किया गया था जिसने इस प्रयोजन के लिए तारीख 23 जून, 2015 को अर्थात् भारत के माननीय राष्ट्रपति के समक्ष यह याचिका प्रस्तुत करने के पांच दिन के भीतर दिल्ली विधानसभा सदस्य (निरर्हता का हटाया जाना) (संशोधन) विधेयक, 2015 पुरस्थापित किया और इस विधेयक को अगले ही दिन अर्थात् 24 जून, 2015 को पारित कर दिया गया था । यह प्रतिरक्षा की गई कि वे विधेयक को अत्याधिक सावधानी बरतने के सिद्धांत के अधीन पुरस्थापित किया गया था जो मान्य नहीं है क्योंकि पद की प्रकृति प्रशासनिक थी और विधानसभा सदस्यों को लाभ का पद धारण करने से निरर्हित किए जाने से बचाने के लिए इस पद को छूट देना आवश्यक था । इसके अतिरिक्त अत्याधिक सावधानी बरतने के सिद्धांत का उद्देश्य और कारण का कथन विधेयक, 2015 में कोई उल्लेख नहीं किया गया है । अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसके प्रज्ञान में, दिल्ली विधानसभा को लाभ के पद के रूप में संसदीय सचिव का पद माना जाएगा । चूंकि भारत के राष्ट्रपति ने इस विधेयक पर अपनी अनुमति देने से इंकार कर दिया है, इसलिए लाभ का पद धारण करने के लिए प्रत्यर्थी विधानसभा सदस्यों पर लागू निरर्हता को हटाया नहीं जा सकता है और बनी रहेगी ।

113. इस प्रक्रम पर यह अवेक्षा करना भी समीचीन होगा कि दिल्ली विधान के मंत्रियों के संसदीय सचिव के रूप में 21 विधानसभा सदस्यों की नियुक्ति की गई थी और दिल्ली विधानसभा के 28 विधानसभा सदस्य थे या दूसरे शब्दों में विधानसभा के लगभग चालीस सदस्य सरकार के लिए कार्य कर रहे थे जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 239कक के खंड 4 का घोर उल्लंघन है जो अधिकतम दस विद्यमान विधान सभा सदस्यों को मंत्रियों के रूबप में नियुक्त किए जाने के लिए अनुज्ञात करता है ।दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस आधार पर नियुक्ति आदेशऱ को अपास्त कर दिया कि उक्त आदेश को दिल्ली के उपराज्यपाल के पास नहीं भेजा गया था और इसलिए यह अनुच्छेद 239कक के आदेश के उल्लंघन में था । इस प्रक्रम पर यह अवेक्षा करना भी समीचीन होगा कि जा.एन.सी.टी.डी ने ऐसा आदेश पारित करने में, अत्यंत महत्वपूर्ण संवैधानिक उपबंधों की अनदेखी करने का प्रयास किया है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थियों को न संसदीय सचिव नियुक्त किया गया था जो ऐसा पद थे किसी विधित द्वारा या जी.एन. सी.टी.डी. के आदेश द्वारा कभी भी सृजित नहीं किया गया था और पदधारकों की भूमिका और दायित्व को किसी भी रीति में कभी भी दर्शित नहीं किया गया था । इन परिस्थितियों की संपूर्णता स्पष्ट रूप से यह दर्शित करती है कि इसकी मुख्य बातें जिसके अधीन प्रत्यर्थियों को संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्त किया गया था, नियमों और विनियमों के बाहर हैं और कार्यकारी पद की मांग को पूरा करने के लिए और उन्हें उक्त पद पर अनुगृहीत करने के लिए संवैधानिक उपबंध का भी उल्लंघन है । ऐसी परिस्थितियों में इस तथ्य के संबंध में कोई संदेह नहीं है कि बड़े पैमाने पर संसदीय सचिवों की नियुक्ति इन प्रत्येक विधानसभा सदस्यों के कार्यकरण के लिए ही संकटपूर्ण नहीं है अपितु सम्पूर्ण दिल्ली विधान सभा के लिए भी संकटपूर्ण है और वर्तमान निर्देश का विनिश्चय करते समय इस तथ्य और स्थिति को भी ध्यान और स्थिति को भी ध्यान में रखना आवश्यक होगा ।

निष्कर्ष

114. प्रत्यर्थियों की दिल्ली सरकार के मंत्रियों के संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्ति जी.एन.सी.टी.डी.आदेश तारीख 13 मार्च, 2015 द्वारा की गई थी। याची ने तारीख 22 जून, 2015 को भारत के माननीय राष्ट्रपति के समक्ष तारीख 19 जून, 2015 को याचिका फाइल की । इसके परिणामस्वरूप जी.एन.सी.टी.डी. ने "दिल्ली विधानसभा सदस्य (निरर्हता का हटाया जाना) (संशोधन) विधेयक, 2015" तारीख 15 जून, 2015 को पुरस्थापित किया। दिल्ली विधानसभा द्वारा तारीख 24 जून, 2015 को उक्त विधेयक पारित कर दिया गया था। तथापि इस विधेयक को भारत के माननीय राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्राप्त नहीं हुई। उक्त विधेयक ने उद्देश्यों और कारणों के कथन के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि जा.एन.सी.टी.डी. ने यह मान्यता प्रदान की है कि मंत्रियों के संस्दीय सचिवों का पद लाभ का पद धारण करने के कारण निरर्हता है और भूतलक्षी रूप से ऐसी निरर्हता को हटाए जाने की ईप्सला की है।

115. कानूनी निर्वचन के सिद्धांतों का यह स्वर्णिम नियम है कि किसी उपबंध को ऐसा अर्थ दिया जाना चाहिए जिससे कि विधायिका का आशय को अधिकतम प्रभावी रुप दिया जा सके और उपबंध कार्य योग्य हो। यह माननीय न्यायालयों के अनेक विनिश्चियों से अत्यंत स्पष्ट होता है, जिनमें से कुछ नीचे उद्घत किए जा रहे है।

116. माननीय न्यायमूर्ति रोबिंटन नारीमन द्वारा शेलेष धैर्यवान बनाम मोहन बालकृष्ण लुल्ला [(2016) 3 एससीसी 619] वाले मामलें में किए गए ' प्रयोगकारी निर्वचन का सिद्धांत' के संबंध में व्यक्त किए गए मत और संक्षिप्तीकरण निम्न प्रकार हैः-

" 31. [ ]"प्रयोजनकारी निर्वचन" का सिद्धांत या "प्रयोजनकारी अर्थानव्यन" सिद्धांत इस बौध पर आधारित है कि न्यायालय से उपबंध को वह अर्थ देने की प्रत्याशा की जाती है जो ऐसे उपबंध के पीछे के "प्रयोजन" को पूरा करे। आधारभूत दृष्टिकोण यह अभिनिश्चित करना है कि इससे क्या कार्य पूरा किया जाना आशयित है ? इसको दूसरे रुप में कहते हुए, निर्वचन कार्य प्रक्रिया द्वारा न्यायालय से उस उद्देश्य को प्राप्त करने की आशा की जाती है जिसके लिए विधिक पाठ, इसको प्राप्त करने के लिए बनाया गया है। अहरान बराक के शब्दों मेः

" प्रयोजनकारी निर्वचन तीन घटको पर आधारित है; भाषा, प्रयोजन, और विवेकाधिकार । भाषा, द्भाषिया जो कि एक भाषाविद के रुप में कार्यकर्ता है कि शब्दार्थविज्ञान संभावनाओं को आकार देती है। एक बार द्भाषिया सीमा परिभाषित कर देता है, तब वह शब्दार्थविज्ञान संभाव्यताओं (अभिव्यक्त या विवक्षित) के बीच से पाठ के विधि अर्थ को चयनित करता है। इस प्रकार शब्दार्थविज्ञान घटक द्भाषीय को पाठ जो अपनी भाषा (सार्वजनिक या प्राइवेट) की परिधि में विधिक अर्थ पर निरबंधित करते हुए निर्वचन की सीमाओं को नियत करता है"। [अहरोन बराक का परपजिव इन्टरप्रीटेशन इन लॉ (प्रिंसटन यूनीवर्सटी प्रेस, 2005)]

32. उपर्युक्त तीन घटकों अर्थात भाषा, प्रयोजन और न्यायालय का विवेकाधिकार में से जहां तक प्रयोजनकारी घटक का संबंध है यहरेश्योज्यूरिस है, जो कि पाठ के आधार पर प्रयोजन है। यह प्रयोजन, महत्व, लक्ष्य हित, नितियां और उद्देश्य है जो कि पाठ प्राप्त करने के लिए अभिप्रेत करता है। यह वह कार्य है जो पाठ, पूर्ण करने के लिए अभिप्रेत करता है।

33. हम इस पर भी जोर दे सकते है कि इसी उपबंध का कानूनी निर्वचन कभी भी शब्दार्थ नहीं होता अपितु यह सदैव क्रियात्मक है। यदिप कुछ समय पूर्व तक लिटरल रुल ऑफ इन्टरपरिटेशन, स्वर्णिम नियम के रुप में माना जाता था, यह अब प्रयोजनकारी निर्वचन का सिद्धांत है जो महत्वपूर्ण है विशेष रुप से ऐसे मामलों में जहां शाब्दिक निर्वचन कोई प्रयोजन पूरा नहीं करते या अर्थहीनता परिणाम करेंगे। यदि यह समाप्ति करता है जो कानून के प्रयोजन से भिन्न है तब उसे मंजूर नहीं किया जा सकता। न केवल विधिक प्रक्रिया के विचारक जैसे हार्ट और शैक्स ने कानूनी निर्वचन के लिए विस्तृत रणनीति के रुप में आशयवादीता को नाकार और इसके स्थान पर उन्होने प्रयोजनकारी सिद्धांत प्रस्तावित किया, इस सिद्धांत को न केवल इस देश में अपितु अनेक अन्य विधिक प्रणालियों में विस्तृत रुप से लागू किया जा रहा है"। [रेखाकित पक्तियों पर बल दिया गया है]

117. माननीय कलकत्ता उच्च न्यायालय ने विशाक भट्टाचार्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (ऊपर) के मामले में ठीक नोट किया गया है जो निम्नलिखित हैः-

"50. कई मामलों में न्यायालय उद्देश्य के अनुकूल दृष्टिकोण अपनाता है, जब वे संविधान के प्रावधानों का निर्वचन करता है, तो उसे वाद-विवाद सभा को निर्दिष्ट किया जाए ताकि उचित अर्थान्वयन करके दिशानिर्देश के रूप में हो। संविधान पवित्र या औपचारिक दस्तावेज मात्र नहीं हैं। यह लोगों की सरकार के लिए एक जीवित विरचना के रूप में माना जाता है और इसका संपूर्ण सफलतापूर्वक कार्यकरण लोकतंत्र की आत्मा पर निर्भर करता है, जिसका शब्द और आत्मा के रूप में सम्मान किया जाना चाहिए। "

(जोर दिया गया है)

118. सुरजीत सिंह कारला बनाम भारत संघ (1993) के मामले में न्यायमूर्ति के. जगन्नाथ शेट्टी ने, जैसा कि उन्होंने अवलोकन किया और निम्न निर्णय दिया :-

"19. यह सत्य है कि संविधि में शब्दों, जो वहां नहीं हैं, को पढ़ना अनुज्ञेय नहीं है लेकिन विकल्प या तो विवक्षा शब्दों की पूर्ति करने के मद्दे निर्भर करता है जो प्रकट होने से दुर्घटनावश लोपित हो गए हैं या ऐसी संरचना को अंगीकृत करना जो सभी अर्थों के कतिपय विद्यमान शब्दों को वंचित करती है, शब्दों की पूर्ति करना अनुज्ञेय होगा।"

(क्राइस संविधि विधि, सातवां संस्करण, पी 109)

समान प्रेषण हमेदिया हार्डवेयर स्टोर बनाम बी. मोहनलाल सोकार (1988) 2 एससीसी 513, 524-25) में है, जहां यह अवलोकन किया गया था कि उपबंध की संरचना करने वाले न्यायालय को ऐसे शब्दों को आसानी से नहीं पढ़ना चाहिए जो स्पष्ट रूप से अधिनियमित नहीं किए गए हैं लेकिन संदर्भ जिसमें उपबंध आए हैं, से संबंध रखता है और संविधि का उद्देश्य जिसमें उक्त अधिनियमित किए गए हैं न्यायालय को उसे अर्थपूर्ण बनाने के लिए सामंजस्यपूर्ण सन्निर्मित करना चाहिए। सुसंगत उपबंधों का मिलान करने के लिए हमेशा प्रयास किया जाना चाहिए ताकि संविधि द्वारा आशयित उपचार को उन्नत किया जा सके। (देखें सिराजुलहक खान बनाम सुन्नी सेंट्रल बोर्ड आफ वक्फ (1959) एससीआर 1287, 1299-एआईआर 1959 एससी 198)" (जोर दिया गया है)।

119. माननीय उच्चतम न्यायालय ने विजय कुमार मिश्रा बनाम पटना उच्च न्यायालय [(2016) 9 एससीसी 313] जो कि निम्न प्रकार है--

''25. निर्वचन का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि जो विषय एवं वस्तु से संबंधित है वह अधिनियम अधिनियमित है। कानून को युक्तियुक्त ढंग से निर्वचित करने के लिए न्यायालय अपने आपको विधायक अथवा लेखक की भांति मानता है। इस प्रकार से उद्देश्यपूर्ण अर्थान्वयन से अधिनियम का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार से यह कानून के निर्वचन का मान्यताप्राप्त नियम है कि पद जो कि सामान्यतया समझा जाता है। वह अधिनियम के उद्देश्य से सामंजस्य बनाता है और विधायिका के उद्देश्य को प्रभावित करता है। (देखें कानून का निर्वचन, 12वां संस्करण, पृष्ठ 119 और 127 जीपी सिंह)'' [जोर दिया गया है]

120. ऐसा बिल्कुल नहीं है कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 102 और 191 में दांडिक प्रावधान नहीं है। ये उपचारात्मक प्रकृति का और इसका उद्देश्य प्रभावपूर्ण विधायन से है जो कि सामूहिक रूप से कार्यपालक उत्तरदायित्व, लोगों के प्रतिनिधियों को नियमित रूप से दर्शाता है। इस प्रकार से मस्तिष्क के उद्देश्य को दिमाग में रखते हुए, एक वृहत निर्वचन प्रभावपूर्ण उद्देश्य को इन उपबंधों से अधिनियमित करना है। यह लिखना प्रासंगिक है कि इस अवसर पर माननीय उच्चतम न्यायालय का प्रेक्षण वाद [क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त बनाम हुगली मिल कारपोरेशन लिमिटेड (2012) 2 एससीसी 484] में किया गया है।

सहविधि के द्वारा (सिराज हक खान यू सुन्नी सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ [1959 एस.सी.आर.1287, 1299, ए.आई.आर 1959 एस.सी 198]" [जोर दिया गया है]

119 माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विजय कुमार मिश्र पटना उच्च न्यायालय [(2016) 9 एस सीसी 313)] जो कि निम्न प्रकार हैः-

" 25. निर्वचन का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि जो विषय एवं वस्तु से संबंधित है वह अधिनियम अधिनियमित है। सविधि को युक्तियुक्त ढंग से निर्वचित करने के लिए न्यायालय अपने आपको विधायक अथवा लेखक की भांति मानता है। इस प्रकार से उद्देश्यपूर्ण अर्थान्वयन से अधिनियम का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार से यह संविधि के निर्वचन का मान्यताप्राप्त नियम है कि पद जो कि सामान्यतया प्रयुक्त समझा जाता है वह अधिनियम के उद्देश्य से समंजस्य बनाता और विधायिका के उद्देश्य को प्रभावित करता है। (देखे संविधि का निर्वचन, 12वां संस्करण पेज 119 और 127 जी.पी.सिंह) [जोर दिया गया है।]

121. के प्रभाकरण बनाम जयराजन [(2005) एस.सी.सी. 754] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के संप्रेक्षण पर ध्यान देना भी अत्याधिक सुसंगत है, जो निम्नानुसार है :--

"59. शिबु सोरेन बनाम दयानंद सहाय [(2001) 7 एस.सी.सी. 425] के मामले में इस न्यायालय की तीन सदस्यीय न्यायपीठ का ध्यान उस समय लाभ का पद धारण करने वाले व्यक्ति के कारण निरर्हता की समीक्षा के प्रश्न की ओर आकृष्ट किया गया था। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे उपबंध की प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा सुसंगत कानूनी उपबंधों को ध्यान में रखते हुए वास्तविक रीति में व्याख्या की जानी अपेक्षित है। जबकि "कोई कठोर तथा संकुचित अर्थान्वयन" को न ही अपनाया जा सकता है जिसका "निर्वाचन लड़ने वाले विशिष्ट तथा अन्य पात्र व्यक्तियों को बंद करने" पर प्रभाव पड़ सकेगा, किंतु इसी के साथ-साथ,

"ऐसे कानूनी उपबंध के संबंध में कार्रवाई करने में, जो किसी नागरिक पर निरर्हता अधिरोपित करता है, भाग व्यापक तथा सामान्य दिष्टकोण अपनाना अनुचित होगा और आवश्यक प्रश्नों पर ध्यान न दें।" (एस.सी.सी. पृष्ठ 447 पैरा 36)

दाव पर क्या लगा है वह है निर्वाचन लड़ने तथा पद धारण करने का अधिकार । "व्यावहारिक दृष्टिकोण, जो कसौटियों का पंडिताऊ पिटारा नहीं है" इसलिए न्यायालय समुचित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए मार्गदर्शन अवश्य करें । निरर्हता में प्राप्त किए जाने वांछित उद्देश्य के साथ सारभूत और युक्तियुक्त संबंध अवश्य होना चाहिए और अधिनियमिति के लिए उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए यर्थाथता के भाव के साथ व्याख्या की जानी चाहिए"। [बल दिया गया]

122. सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने के लिए निरर्हता को समाविष्ट करने के पीछे लोगों के प्रतिनिधियों को उनके निजी उद्यमों द्वारा लाभ अर्जित करने से रोकना नहीं है बल्कि विधानमंडल के सदस्यों के रूप में उनके हित के ..... को रोकना है और इसलिए लाभ के साक्ष्य पर अनुचित महत्व तथा धनीय फायदों की वास्तविक संभावता इन संविधानिक उपबंधों को शक्तिहीन बना सकती है । इन उपबंधों द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए ईप्सित उद्देश्य एक विधान मंडल है, जिसके सदस्य हित तथा निरर्हता उपबंध के द्वंद्व की बुराई से मुक्त है और उनके कार्यान्वयन के लिए अपेक्षाएं ऐसी रीति में पढ़ी जानी चाहिए और उनकी व्याख्या की जानी चाहिए जिससे इस उद्देश्य को पूरा किया जा सके । उन मामलों में जहां पद स्पष्टतया कार्यपालक प्रकृति का है और कार्यपालक कृत्य पर प्राधिकार का समादेश देता है वे अत्यंत सामाजिक संस्थान और गरिमा का है – वहां हित के द्वंद्व का मामला स्पष्ट मामला होता है और यदि ऐसा पद लाभ के पद के रूप में धारित नहीं किया जाता है तो ऐसा निर्वचन विधि में बेतुकापन उत्पन्न कर रहा है, जो न केवल संवैधानिक उपबंधों को निरर्थक बना रहा है, बल्कि हमारे विधियों के निकाय में गहराई से सन्निविष्ठ संवैधानिक वाद के विजन को भी नकारात्मक बना रहा है ।

123. परिस्थितियों की विचित्रता के कारण ऊपर पैरा 112, 113 व 120 में किए संप्रेक्षणों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि अभिलेख पर तथ्यों को पद की प्रकृति तथा आगामी उत्तरदायित्वों, जो इस पद के पदधारियों पर सामान्य अनुक्रम में न्यस्त किए गए थे, न्यस्त किए जाएंगे, को ध्यान में रखते हुए पढ़ा जाता है और यह ऐसे बोध को ध्यान में रखते हुए ही है कि इस निर्देश में किसी सही राय पर पहुंचा जा सकता है ।

124. यह प्रश्न कि क्या संसदीय सचिव का पद लाभ का पद था या नहीं, ऐसा प्रश्न है जो साधारण रूप से और केवल लाभ के पद की संभाव्यता से संबद्ध है, क्योंकि ऐसा कोई पद, जिसका प्रभाव ऐसा है जो किसी विधान सभा सदस्य की स्वतंत्रता को प्रभावित करता है और जो जनता या सदन या दोनों के प्रति उसके कर्तव्यों के निष्पादन के सामर्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, ऐसे किसी पद को लाभ का पद कहा जाएगा । वर्तमान पद एक कार्यपालक पद की प्रकृति का है और जिनके अधिभोग के कारण ये विधान सभा सदस्य कार्यपालिका का भाग बन गए थे । प्रत्यर्थी विधान सभा सदस्यों की जीएनसीटीडी द्वारा संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्ति, जीएनसीटीडी अधिनियम, 1991 की धारा 15(1)(क) द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों को पछाड़ी है और उन्हें विफल करती है और साथ ही वह सरकार के विधायी निरीक्षण के सिद्धांत के विरुद्ध है, जो कि संसदीय लोकतंत्र का एक आधारिक सिद्धांत है ।

125. इस प्रक्रम पर, लाभ के पद संबंधी संयुक्त संसदीय समिति (16वीं लोक सभा) द्वारा अपनाए गए उस मानदंड पर विचार करते हैं, जिसे यह परीक्षण करने के लिए अपनाया गया था कि क्या कोई पद लाभ का पद है अथवा नहीं, जिसे पैरा सं. 76 में उल्लिखित किया गया था, जो निम्नानुसार है :

"(i) क्या धारक कोई पारिश्रमिक, जैसे कि आसीन होने की फीस, मानदेय, वेतन आदि का आहरण करता है अर्थात् संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 2(क) में यथापरिभाषित 'प्रतिकारात्मक भत्ते' से भिन्न कोई अन्य पारिश्रमिक प्राप्त करता है ; (इस प्रकार सिद्धांत यह है कि यदि कोई सदस्य उससे अधिक का आहरण नहीं करता है, जो वास्तव में अपने जेब से खर्च किए जाने वाले संदायों की प्रतिपूर्ति के लिए अपेक्षित है और जो उसे कोई धनीय लाभ प्रदान नहीं करता है, तो वह निरर्हता के रूप में कार्य नहीं करेगा)

(ii) क्या वह निकाय, जिसमें कोई पद धारण किया जाता है, कार्यपालक, विधायी या न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है या निधियों के संवितरण, भूमियों के आबंटन, अनुज्ञप्तियों के जारी करने आदि की शक्तियां प्रदत्त करता है या नियुक्ति, छात्रवृत्तियां मंजूर करने आदि की शक्तियां प्रदान करता है ; और

(iii) क्या वह निकाय, जिसमें कोई पद धारण किया जाता है, धारक को संरक्षण के माध्यम से कोई प्रभाव या शक्ति का नियंत्रण करने में समर्थ बनाता है ।

यदि उपरोक्त मानदंडों में से किसी का उत्तर हां में है तो प्रश्नगत पद निरर्हता उपगत करेगा" । [बल दिया गया]

126. संयुक्त संसदीय समिति द्वारा उल्लिखित और सहारा लिए गए धनीय लाभ के प्रथम परीक्षण और पद की कार्यपालक प्रकृति के दूसरे परीक्षण का क्रमश: मुद्दा 3 और मुद्दा 4 के अधीन विश्लेषण किया गया है । यह उल्लेख करना अनिवार्य है कि परीक्षण ऊपर उल्लिखित मानदंड, जिसका संयुक्त संसदीय समिति द्वारा सहारा लिया गया है, एकल रूप से कार्य करता है और यदि उनमें से एक का भी समाधान हो जाता है तो वह ऐसे किसी पद को लाभ के पद के रूप में अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त है ।

127. ऊपर उल्लिखित मानदंड का तीसरा परीक्षण वर्तमान मामले में अत्यधिक महत्वपूर्ण है । संसदीय सचिव के पद ने, उसके पदधारियों को सरकार की उच्चस्तरीय बैठकों में भाग लेने और यहां तक कि उनकी अध्यक्षता करने के लिए भी अनुज्ञात किया था । संसदीय सचिवों को विधान सभा सचिवालय में कार्यालय का स्थान आबंटित किया गया था और अनेक मामलों में अन्यत्र भी कार्यालय स्थान आबंटित किया गया था तथा शासकीय वाहन भी आबंटित किए गए थे । इन संसदीय सचिवों को संबद्ध मंत्री की, उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करनी थी और कार्य या प्राधिकार का वास्तविक प्रत्यायोजन मंत्री के विवेकाधिकार पर छोड़ा गया था । इन संसदीय सचिवों के पास मंत्रियों और मंत्रालयीय फाइलों और टिप्पणियों तक पूर्णकालिक पहुंच थी और इस पहुंच ने उन्हें संरक्षण के माध्यम से प्रभाव और शक्ति का नियंत्रण करने में समर्थ बनाया था ।

128. जहां तक प्रत्यर्थियों की इस दलील का संबंध है कि संसदीय सचिव का पद अब विद्यमान नहीं है क्योंकि उनकी नियुक्ति के आदेश को माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा, उसके तारीख 8.9.2016 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था और वे अब आसीन संसदीय सचिव नहीं है और इसलिए, उन्हें निरर्हित करने का कोई प्रश्न विधि की त्रुटिपूर्ण समझ पर आधारित है और उसका उत्तर दिया जाना चाहिए और उसे हमारे तारीख 23.06.2017 के आदेश द्वारा स्पष्ट किया गया है तथा उसका उत्तर दिया गया है (उपाबंध 3, अंग्रेजी पृष्ठ 121 से 143)

129. इस संदर्भ में, अनुसरित परिपाटी और नामांकन पत्र संबंधी विधि को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण होगा। नामांकन पत्र फाइल करने के प्रक्रम पर, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 36(2)(क) के अनुसार नामांकन पत्रों की संवीक्षा की तारीख को सुसंगत तारीख कहा गया है और यदि कोई व्यक्ति उस तारीख को लाभ का पद धारण किए हुए है तब उसका नमांकान पत्र खारिज किए जाने योग्य होगा । यदि किसी व्यक्ति ने पहले ही त्यागपत्र दे दिया है किन्तु वह स्वीकार नहीं किया गया है, तब भी वह पद पर माना जाएगा और चुनाव लड़ने के लिए अर्हित नहीं है और इसलिए उसका नामांकन पत्र खारिज किए जाने योग्य है। ऐसे मामले में भी जिसमें त्यागपत्र स्वीकार किए जाने कि अधिसूचना जारी की जानी है और अधिसूचना से यह पता चलता है कि त्यागपत्र संवीक्षा की तारीख से अगले दिन स्वीकार कर लिया गया है। तब भी नामांकन पत्र खारिज किए जाने योग्य है। इसी प्रकार विधान सभा का आसीन सदस्य इस तारीख को निरर्हित किए जाने योग्य होगा जिस तारीख को वह लाभ का पद ग्रहण करता है और इस प्रकार की गई निरर्हता केवल विधान मंडल द्वारा ही समाप्त की जा सकती है और न तो त्यागपत्र से और न ही न्यायालय के आदेश द्वारा पद से हटाए जाने से ऐसी निर्रहता समाप्त हो सकती है जो लाभ का पद धारण करने से सृजित होती है।

130. इस समागम पर यह उल्लेखनीय है कि क्या वैयक्तिक संसदीय सचिव को वास्तव में फायदे व्युतपन्न होते हैं या नहीं या सरकार के कार्यपालिका संबंधी कार्यों में भाग लिया है या नहीं, किसी भी प्रकार से सुसंगत नहीं है क्योंकि जब एक बार यह सिद्ध हो गया है कि संसदीय सचिव के पद में ऐसी सुसंगतियां आ जाती हैं जिनसे लाभ का पद ग्रहण करने के लिए निरर्हता बन जाती है, इसलिए जया बच्चन (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सुस्थापित सारभूत सिद्धांत के अनुसार, ऐसे पद पर नियुक्त किए गए सभी व्यक्ति निरर्हित जाएंगे।

131. भारत के संविधान में अंतर्विष्ट विधि के आलोक में तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता पर विचार करने पर, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 और ऊपर उद्धत न्यायिक नज़ीरों से यह निष्कर्ष निकलता है कि संसदीय सचिव का पद जिस पर तारीख 13 मार्च, 2015 के शासन आदेश द्वारा निम्न बीस विधायकों नियुक्त किया गया था सरकार के अधीन ग्रहण किया गया लाभ का पद है, अत: इस आयोग का यह मत है कि निम्न विधायक दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम की धारा 15(1)(क) के अधीन निरर्हित किए जान योग्य है:--

क्रम सं.	विधानसभा सदस्य का नाम	क्रम सं.	
1.	श्री आदर्श शास्त्री (ए.सी.-33 द्वारका)	2.	*सुश्री अल्का लांबा* *(ए.सी.-20 चांदनी चौक)*
3.	श्री अनिल कुमार बाजपेई (ए.सी.-61 गांधी नगर)	4.	*श्री अवतार सिंह* *(ए.सी.-51 कालकाजी)*

5.	श्री जरनैल सिंह (ए.सी.-29 तिलक नगर)	6.	*श्री कैलाश गहलौत* *(ए.सी.-35 नजफगढ़)*
7.	श्री मदन लाल (ए.सी.-42 कस्तूरवा नगर)	8.	*श्री मनोज कुमार* *(ए.सी.-56 कोंडली)*
9.	श्री नरेश यादव (ए.सी.-45 महरौली)	10.	*श्री नितिन त्यागी* *(ए.सी.-58 लक्ष्मी नगर)*
11.	*श्री प्रवीन कुमार* *(ए.सी.-41 जंगपुरा)*	*12.*	*श्री राजेश गुप्ता* *(ए.सी.-17 वजीरपुर)*
13.	श्री राजेश ऋषि (ए.सी.-30 जनकपुरी)	14.	श्री संजीव झा (ए.सी.-2 बुराड़ी)
15.	सुश्री सरिता सिंह (ए.सी.-64 रोहतास नगर)	16.	श्री शरद कुमार चौहान (ए.सी.-1 नरेला)
17.	श्री शिव चरण गोयल (ए.सी.-25 मोती नगर)	18.	श्री सोम दत्त (ए.सी.-19 सदर बाजार)
19.	श्री सुखवीर सिंह दलाल (ए.सी.-8 मुंडका)	20.	श्री विजेन्दर गर्ग विजय (ए.सी.-39 राजेन्द्र नगर)

132. श्री जरनैल सिंह, पूर्व विधायक, विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र-27, राजौरी गार्डन को दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन के तारीख 13 मार्च, 2015 के आदेश द्वारा संसदीय सचिव के रूप में भी नियुक्त किया गया था, यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने तारीख 17 जनवरी, 2017 को राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की विधानसभा की सीट से त्यागपत्र दे दिया था और अप्रैल, 2017 में इस रिक्ति को भरने के लिए उपचुनाव किए गए, अतःउनकी निरर्हता पर कोई भी प्रश्न शेष नहीं रहता है। इस प्रकार, इस संदर्भ में निर्देश दिए जाने की आवश्यकता नहीं है।

ओ. पी. रावत (निर्वाचन आयुक्त) ए.के. जोती (मुख्य निर्वाचन आयुक्त) सुनील अरोड़ा (निर्वाचन आयुक्त)

स्थान : नई दिल्ली

तारीख : 19 जनवरी, 2018

उपाबंध-1

भारत का निर्वाचन आयोग

निर्वाचन सदन,

अशोक रोड, नई दिल्ली-110001

2015 का निर्देश मामला सं. 5

दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991.

विषय: श्री प्रशांत पटेल, अधिवक्ता की ओर से फाइल की गई याचिका जिसमें श्री प्रवीण कुमार, सदस्य दिल्ली विधान सभा और उसके 20 अन्य सदस्यों की निरर्हता का अभिकथन।

प्रशांत पटेल ..... याची

बनाम

श्री प्रवीण कुमार और 20 अन्य ..... प्रत्यर्थी

आदेश

वर्तमान कार्यवाहियों में पक्षकार बनाने के लिए फाइल किए गए निम्न आवेदनों का परिशीलन किया या है:-

(क) श्री अजय माकन, अध्यक्ष दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी की ओर से फाइल किया गया तारीख 9 जून, 2016 का आवेदन ।

(ख) दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार की ओर से फाइल किया गया तारीख 16 जून, 2016 का आवेदन ।

(ग) श्री विवेक गर्ग की ओर से फाइल किया गया तारीख 28 जून, 2016 का आवेदन ।

(घ) श्री सतीश उपाध्याय, भारतीय जनता पार्टी की ओर से फाइल किया गया तारीख 14 जुलाई, 2016 का आवेदन।

(ङ) श्री एस.एन.शुक्ला की ओर से फाइल किया गया तारीख 15 जुलाई, 2016 का आवेदन ।

2. आयोग द्वारा प्राप्त किए गए उपरोक्त आवेदनों के निम्न पक्षकारों/व्यक्तियों द्वारा फाइल किए गए उत्तरों का भी परिशीलन किया गया है:-

(i) तारीख 20 जून, 2016 को फाइल किया गया श्री प्रशांत पटेल, अर्जीदार का पत्र/ अर्जी ।

(ii) तारीख 6 जुलाई, 2016 को सभी प्रत्यर्थी विधायकों की ओर से फाइल किया गया पत्र/अर्जी ।

(iii) तारीख 18 जुलाई, 2016 को श्री प्रशांत पटेल, अर्जीदार का पत्र/अर्जी ।

3. आरंभ में ही प्रत्यर्थी 5 के विद्वान काउंसिल श्री बिश्वजीत भट्टाचार्य ने वर्तमान कार्यवाहियों की पोषणीयता पर प्राथमिक आक्षेप, विशेषकर अर्जीदार द्वारा आयोग के समक्ष सीधे ही तारीख 28 दिसंबर, 2015 को फाइल की गई शिकायत के आधार पर, किए हैं । उन्होंने यह दलील दी है कि अर्जीदार ने सबसे पहले दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 की धारा 15(3) के निबंधनं में अध्यक्ष के समक्ष तारीख 19 जून, 2014/15 को दो पृष्ठ वाली शिकायत फाइल की जिसमें यह अभिकथन किया कि दिल्ली विधानसभा के 21 सदस्य निरर्हित हो गए हैं जो अतब सदस्य बने नहीं रह सकते क्योंकि वे दिल्ली सरकार के अधीन लाभ का पद ग्रहण किए हुए थे । इसके पश्चात् तारीख 28 दिसंबर, 2015 को अर्जीदार ने अभिकथित रूप से सीधे आयोग के समक्ष एक दूसरी शिकायत प्रस्तुत गी । विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल के अनुसार आयोग को तारीख 28 दिसंबर, 2015 की अर्जीदार की शिकायत का संज्ञान नहीं लेना चाहिए था क्योंकि आयोग को विधानसभा के सदस्य की निरर्हता से संबंधित किसी भी शिकायत की सीधे सुनवाई करने की कोई भी अधिकारिता नहीं है । काउंसिल ने यह प्रतिवाद किया है कि तारीख 28 दिसंबर, 2015 की दूसरी शइकायत अर्जीदार द्वारा अध्यक्ष के समक्ष की जानी चाहिए थी न कि सीधे आयोग के समक्ष । काउंसिल ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि तारीख 28 दिसंबर, 2015 को फाइल की गई शिकायत पर अधइकारिता के बिना आयोग द्वारा सुनवाई किया जाना वर्तमान कार्यवाही के आरंभ और उसकी पोषणीयता को प्रभावित करता है । उन्होंने यह दलील दी है कि वर्तमान कार्यवाहियां बंद की जानी चाहिए और अध्यक्ष को इस पर विचार करना चाहिए ।

4. विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल के उपरोक्त प्राथमिक आक्षेपों के उत्तर में अर्जीदार ने कोई भी प्रत्युत्तर नहीं दिया है । तथापि, उन्होंने यह दलील दी है कि उसने अपने उत्तर की तारीख 28 दिसंबर, 2015 की एक प्रति (तथाकथित द्वितीय शिकायत) अध्यक्ष के सचिवालय में फाइल की थी और सचिवालय से इस संबंध में उसके द्वारा प्राप्त की गई रसीद भी दर्शाई ।

5. तथापि, आयोग ने सम्यक् रूप से प्रत्यर्थी सं. 5 के विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल की ओर से किए गए उपरोक्त प्राथमिक आक्षेपों पर विचार किया है । उपरोक्त आक्षेप से यह स्पष्ट हो गया है कि विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल ने उपरोक्त प्राथमिक आक्षेप करते समय तारीख 4 दिसंबर, 2015 के आयोग के नोटिस पर विचार नहीं किया है जो अर्जीदार को इस संबंध में जारी किया गया था कि वह तारीख 28 दिसंबर, 2015 तक अपना हस्ताक्षरित उत्तर फाइल करे और उसके समर्थन में सम्यक् रूप से शपथपत्र भी प्रस्तुत करे । निर्वाचन आयोग के इस औपचारिक इस नोटिस के उत्तर में कि अर्जीदार ने तारीख 28 दिसंबर, 2015 का सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित उत्तर सभी सुसंगत दस्तावेजों जिनका उसने अवलंब लेने का प्रस्ताव रखा है, फाइल किया है और उसके समर्थन में सम्यक् रूप से शपथपत्र भी प्रस्तुत किया है । यहां यह इंगित करना महत्वपूर्ण है कि जब तारीख 16 मार्च, 2016 का निर्वाचन आयोग का ऐसा ही नोटिस प्रत्यर्थियों को जारी किया गया था, तब सभी 21 प्रत्यर्थियों ने अपने उत्तर उस नोटिस के जवाब में सीधे आयोग के समक्ष प्रस्तुत किए थे न कि भारत के राष्ट्रपति के समक्ष । प्रत्यर्थियों के इन उत्तरों को वर्तमान कार्यवाहियों में आयोग द्वारा अभिलेख पर सम्यक् रूप से रखा गया है ।

6. यह भी उल्लेखनीय है कि जब एक बार राष्ट्रपति द्वारा कोई प्रश्न निर्वाचन आयोग को उसकी राय लेने के लिए संविधान के अनुच्छेद 103(2) या संघ राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 या दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 की धारा 15(4) के अधीन भेजा जाता है, तब आयोग द्वारा उसके नोटिस आदि के माध्यम से अर्जीदार और प्रत्यर्थियों को सभी पत्राचार सीधे ही भेजे गए थे और इसी प्रकार उनके अभिवाक भी लिखित कथन, प्रत्युत्तर और शपथपत्र आदि के रूप में पक्षकारों द्वारा सीधे ही आयोग के समक्ष फाइल किए गए हैं और उन्हें राष्ट्रपति के सचिवालय के माध्यम से भेजने की आवश्यकता नहीं है । यह ऐसे निर्देश के मामलों में आयोग की यह सामान्य परिपाटी और प्रक्रिया है । ऐसी ही कार्रवाई का अनुसरण उस समय किया जाता है जब आयोग को संविधान के अनुच्छेद 192 के अधीन राज्यों के राज्यपाल से ऐसे ही निर्देश राज्य के विधान मंडल के आसीन सदस्यों की निरर्हता के प्रश्न के संबंध में प्राप्त होते हैं। आयोग लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 146ख के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में इस प्रक्रिया का अनुसरण करता है और इस अधिनियम के अधीन आयोग को ऐसी कार्रवाइयों के मामले में अपनी प्रक्रिया का विनियमन करने के लिए सशक्त किया गया है।

7. अतः, प्रत्यर्थी सं. 5 के विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल द्वारा किया गया यह आक्षेप कि तारीख 28 दिसंबर, 2015 का अर्जीदार के उत्तर पर, जो तथाकथित द्वितीय शिकायत है, आयोग द्वारा विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि इसके लिए कोई भी विधिक आधार नहीं है और इस प्रकार गुणता न होने के कारण यह कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

8. अर्जी में पक्षकार बनने या कार्यवाहियों में हस्तक्षेप करने के लिए आवेदकों की ओर से विद्वान काउंसिलों की भी सुनवाई की गई है । कुछ प्रत्यर्थियों के विद्वान काउंसिलों ने इन आवेदनों का विरोध इन आवेदनों के संबंध में उनके द्वारा फाइल किए गए उत्तरों का अवलंब लेते हुए किया है, अन्य प्रत्यर्थियों के विद्वान काउंसिलों ने यह दलील दी है कि आवेदकों ने विस्तृत सामग्री उन आवेदनों के साथ फाइल की है जिन पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है और इसके उत्तर फाइल करने के लिए पर्याप्त समय लेने की प्रार्थना की है । आयोग ने विद्वान काउंसिलों को यह स्पष्ट किया है कि इस समय आयोग आवेदकों को पक्षकार बनाने/हस्तक्षेप करने की प्रार्थना का संज्ञान लेने के प्रश्न पर विचार करेगा और आयोग को आवेदकों द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजी साक्ष्य की विधिमान्यता पर विचार नहीं करना है ।

9. आवेदकों, भारतीय जनता पार्टी और इंडियन नेशनल कांग्रेस के विद्वान काउंसिलों ने यह निवेदन किया है कि वर्तमान कार्यवाहियों से विधि और तथ्य तथा उनके हित के महत्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत होते हैं क्योंकि ये राष्ट्रीय पार्टियां हैं, आयोग के समक्ष सभी सुसंगत निर्णय विधि और सूचना प्रस्तुत करके उसकी सहायता करनी चाहिए ताकि वह उचित निर्णय ले सके । इंडिय नेशनल कांग्रेस की ओर से यह भी दलील दी गई है कि उन्हें इस मामले में कोई भी प्रतिकूल भूमिका अदा करने की ईप्सा नहीं करनी है । दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार के विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल ने यह दलील दी है कि आवेदक – सरकार एक आवश्यक और उचित पक्षकार है क्योंकि विधान सभा के 21 सदस्यों की निरर्हता का प्रश्न वर्तमान कार्यवाही में उठाया गया है और कोई भी प्रतिकूल विनिश्चय उक्त सदस्यों के विरुद्ध लेने से सरकारी क्रियाकलाप पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा । एक अन्य विद्वान काउंसिल ने यह अभिकथन किया है कि कुछ पक्षकार सुसंगत और महत्वपूर्ण सूचना प्रस्तुत नहीं करते हैं या उसे दबाते हैं और वह (काउंसिल) ऐसी सामग्री आयोग के समक्ष प्रस्तुत करने में सहायता करेगा ।

10. आयोग ने विधि के सुसंगत उपबंधों पर विचार किया है और विद्वान ज्येष्ठ काउंसिलों द्वारा दी गई दलीलों पर सावधानी पूर्वक उपरोक्त आवेदनों को लेकर विचार किया है । यह विवादित नहीं है कि वर्तमान जांच कार्यवाही दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 की धारा 15(4) के अधीन भारत के राष्ट्रपति से प्राप्त निर्देश के आधार पर निर्वाचन आयोग द्वारा संस्थित की गई है जिसमें आयोग की राय दिल्ली विधानसभा के 21 आसीन उन सदस्यों की अभिकथित निरर्हता के प्रश्न पर राय लेने की ईप्सा की गई है जो इस मामले में प्रत्यर्थी हैं । यह प्रश्न तारीख 19 जून, 2014/15 के अभ्यावेदन में अर्जीदार द्वारा भारत के राष्ट्रपति के समक्ष उठाया गया है और राष्ट्रपति ने इस प्रश्न को उसकी राय जानने के लिए आयोग को दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 की धारा 15(4) के अधीन भेजा है । इस प्रकार, वर्तमान कार्यवाहियों के पक्षकार तारीख 10 नवंबर, 2015 के राष्ट्रपति के उक्त निर्देश, जो आयोग को भेजा गया था, द्वारा तय किए गए हैं जिनमें श्री प्रशांत पटेल, अधिवक्ता अर्जीदार हैं और साथ ही दिल्ली विधानसभा के 21 विधायकों का नाम भी तारीख 19 जून, 2014/15 के उक्त अभ्यावेदन, जो श्री प्रशांत पटेल (प्रत्यर्थी) द्वारा दिया गया था, में दिए गए हैं । अतः दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार सहित ऊपर कथित आवेदकों के उपरोक्त आवेदन जो उन्होंने वर्तमान कार्यवाहियों में पक्षकार बनने के लिए फाइल किए हैं, आयोग के समक्ष चलने योग्य नहीं हैं ।

11. जहां तक आयोग के समक्ष हस्तक्षेपी के रूप में प्रस्तुत होने के लिए की गई प्रार्थना का संबंध है, जैसा कि ऊपर पहले ही उल्लेख किया गया है, आयोग को अपनी प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा

146ख के अधीन प्राप्त है । अतः आयोग आवेदकों को वर्तमान कार्यवाहियों में पक्षकार बनने के लिए अनुज्ञात नहीं कर सकता, आयोग उनके द्वारा दी गई सहायता की, जब कभी अपेक्षित हो, और वांछनीय तथा समीचीन हो, ईप्सा कर सकता है ।

12. प्रत्यर्थियों में से एक प्रत्यर्थी ने आयोग के समक्ष वर्तमान कार्यवाहियों से संबंधित सुसंगत फाइल का निरीक्षण करने की अनुमति लेने की प्रार्थना की है । अर्जीदार तथा 21 प्रत्यर्थियों को, यदि वे इसकी ईप्सा करें, किसी भी कार्य दिवस पर आयोग के आर.सी.सी. खंड के सचिव की पूर्वानुमति के अनुसार एतद् द्वारा उक्त फाइल का निरीक्षण करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है ।

13. अब यह मामला 10 अगस्त, 2016 (बुधवार) को 3 बजे अपराह्न में सुना जाएगा ।

ओ. पी. रावत डा. नसीम जैदी ए.के. जोती

निर्वाचन आयुक्त मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयुक्त

नई दिल्ली, 26 जुलाई, 2016

फा. सं. 113/5/2015-आर.सी.सी.

उपाबंध 2

भारत निर्वाचन आयोग निर्वाचन सदन,

अशोक रोड, नई दिल्ली-110001

2015 का निर्देश मामला सं. 5

(दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 की

धारा 15(4) के अधीन भारत के राष्ट्रपति की ओर से निर्देश)

विषय- श्री प्रशांत पटेल, अधिवक्ता, ईस्ट आफ कैलाश, नई दिल्ली की ओर से दिल्ली विधानसभा के 21 विधायकों की विधानसभा की सदस्यता से अभिकथित निरर्हता के लिए अर्जी ।

आदेश

यह दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 1991-अधिनियम कहा गया है) की धारा 15(4) के अधीन भारत के राष्ट्रपति से तारीख 10 नवंबर, 2015 का निर्देश है जिसमें श्री प्रवीन कुमार सहित दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की विधानसभा के अन्य 20 सदस्यों की, दिल्ली सरकार के अधीन लाभ का पद संसदीय सचिव के रूप में धारण करने के आधार पर निरर्हता के प्रश्न पर निर्वाचन आयोग की राय लेने की ईप्सा की गई है जिसके साथ तारीख 19 जून, 2015 (जिसे श्री प्रशांत पटेल, अधिवक्ता द्वारा गलती से 19 जून, 2014 लिखा गया है) का पत्र भी संलग्न है ।

2. राष्ट्रपति के सचिवालय द्वारा अग्रप्रेषित तारीख 19 जून, 2015 के पत्र का परिशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि उक्त पत्र अर्जीदार द्वारा हस्ताक्षरित नहीं है न ही इसके साथ कोई शपथपत्र लगाया गया है ताकि अर्जीदार की इस दलील को सारभूत किया जा सके कि दिल्ली सरकार के मंत्रालय में संसदीय सचिव का पद एक लाभ का पद है । अतः, निर्देश के ऐसे मामलों में आयोग द्वारा अपनाई जाने वाली सामान्य परिपाटी और प्रक्रिया के अनुसार एक नोटिस तारीख 4 दिसंबर, 2015 को अर्जीदार को इस संबंध में जारी किया गया था कि वह सभी सुसंगत दस्तावेजों के साथ अर्जीदार द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित एक अर्जी 28 दिसंबर, 2015 तक फाइल करे जिस पर उन्हें अवलंब लेना है और इसके समर्थन में शपथपत्र भी फाइल करें । अर्जीदार ने आयोग के तारीख 4 दिसंबर, 2015 के नोटिस का उत्तर तारीख 28 दिसंबर, 2015 को यह कथन करते हुए दिया कि वह नए सिरे से सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित, सभी सुसंगत दस्तावेजों के साथ अर्जी फाइल करेगा जिसका उसे अवलंब लेना है और उसके समर्थन में सम्यक् रूप से शपथपत्र भी फाइल करेगा । यहां यह इंगित करना महत्वपूर्ण है कि यद्यपि अर्जीदार ने तारीख 28 दिसंबर, 2015 के अपने उपरोक्त उत्तर में यह कथन किया है कि उसने अपने उत्तर के साथ सम्यक् रूप से शपथपत्र प्रस्तुत किया था किंतु बाद में यह पता चला कि उक्त उत्तर के साथ कोई भी ऐसा शपथपत्र संलग्न नहीं था और मात्र 10 रुपए वाला ई-स्टांप पेपर उत्तर के साथ उपाबद्ध पाया गया । उपरोक्त उत्तर के साथ 15 अन्य दस्तावेज भी अर्जी के साथ लगाए गए थे जिन्हें उपाबंधों के रूप में सूचीबद्ध किया गया है ।

3. याची के उपरोक्त उत्तर को प्राप्त करने के पश्चात् तारीख 16 मार्च, 2016 को तारीख 19 जून, 2015 की याचिका में नामित सभी 21 विधानसभा सदस्यों को नोटिस भेजे गए थे । नोटिस याचियों के पत्र तारीख 19 जून, 2015 तथा तारीख 28 दिसंबर, 2015 के उनके उत्तर सहित नोटिस भेजे गए थे और सभी अन्य दस्तावेजों को तारीख 28 दिसंबर, 2015 के उत्तर के साथ उपाबद्ध किया गया था । इस नोटिस द्वारा प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया गया था कि वे तारीख 11 अप्रैल, 2016 को या उससे पूर्व अपने उत्तर फाइल करें । प्रत्यर्थियों ने आयोग से समय विस्तार चाहने के पश्चात् तारीख 9 मई, 2016 को अपने-अपने लिखित कथन फाइल किए थे, देखिए उनके आवेदन तारीख 8 अप्रैल, 2016 । सभी उक्त 21 विधानसभा सदस्य (इसमें प्रत्यर्थी) ने अधिकांश समरूप लिखित कथन प्रस्तुत किए थे कि वे दिल्ली सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारित नहीं कर रहे हैं जिनका कारण उनका संसदीय सचिव के रूप में नियुक्त किया जाना है । उन लिखित कथनों में उन्होंने यह मुद्दा भी उठाया है कि आयोग द्वारा याची के तारीख 28 दिसंबर, 2015 के उत्तर को ग्रहण नहीं किया जा सकता । जिस पर याची ने 'नए सिरे से याचिका' को वर्णित किया था जिसमें यह दलील दी गई कि उक्त याचिका भारत के राष्ट्रपति के माध्यम से प्रकट नहीं हुई थी । और राष्ट्रपति के पास उक्त याचिका पर अपने विवेक का प्रयोग करने का कोई अवसर नहीं था जिससे कुछ नए आधार उद्भूत हुए हैं जिन्हें याची के तारीख 19 जून, 2015 की मूल याचिका में सन्निहित नहीं किया गया था । याची ने तारीख 8 जून, 2016 को अपना प्रत्युत्तर फाइल करके प्रत्यर्थियों की दलीलों का विरोध किया ।

4. उसी बीच में मामले में हस्तक्षेप चाहने के लिए कुछ तीसरे पक्षकारों द्वारा कतिपय आवेदन फाइल किए गए थे । जब इन आवेदनों पर विचार करने के लिए तारीख 21 जुलाई, 2016 को उन्हें ग्रहण किया गया, प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल श्री विश्वजीत भट्टाचार्य ने याची के तारीख 28 दिसंबर, 2015 के उत्तर को बनाए रखने पर प्रारंभिक आक्षेप उठाए जो उनके द्वारा याची के 'द्वितीय याचिका' के रूप में वर्णित किया गया । आयोग ने अपने तारीख 26 जुलाई, 2016 के आदेश द्वारा इस आधार पर प्रत्यर्थी के उपर उल्लिखित उपरोक्त प्रारंभिक आक्षेपों को अस्वीकार कर दिया कि आक्षेपित याचिका तारीख 28 दिसंबर, 2015 को फाइल की गई थी, जो वास्तव में आयोग के तारीख 4 दिसंबर, 2015 के नोटिस पर याची का उत्तर था और जिसे राष्ट्रपति के माध्यम से अपेक्षित नहीं था ।

5. जब आयोग द्वारा तारीख 10 अगस्त, 2016 को मामले पर आगे सुनवाई की गई थी, सभी शेष प्रत्यर्थियों ने वैसे ही प्रारंभिक आक्षेप उठाए थे और यह कहा था कि उन्हें उसी मुद्दे पर भी सुना जाना चाहिए था क्योंकि उनके पास कतिपय अतिरिक्त तथ्य और विधिक निवेदन थे और प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से श्री भट्टाचार्य ने केवल बहस की और उन्हें सभी प्रत्यर्थियों का प्रतिनिधित्व किया जाना नहीं समझा जा सकता क्योंकि वे उन सबके लिए प्राधिकृत नहीं हैं । उन आक्षेपों पर विचार करते हुए आयोग ने तथा याची के तथाकथित द्वितीय याचिका तारीख 28 दिसंबर, 2015 को ग्रहण करने के बारे में उपरोक्त प्रारंभिक आक्षेप पर सभी अन्य प्रत्यर्थियों को अवसर दिए जाने था उनके निवेदन करने का विनिश्चय किया ।

6. तदनुसार तारीख 19 अगस्त, 2016 और 29 अगस्त, 2016 को सभी शेष 20 प्रत्यर्थियों के विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल/विद्वान काउंसिल द्वारा निवेदन किया गया । याची की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल ने विस्तार से दलीलें दी कि तथाकथित द्वितीय याचिका तारीख 28 दिसंबर, 2015 भी चलने योग्य थी और आयोग द्वारा और 21 विधायकों की अनर्हता के प्रश्न पर अपनी राय देने के लिए आयोग द्वारा संज्ञान लिया जाना चाहिए, जैसा कि 1991 के अधिनियम की धारा 15(4) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा आयोग को अपनी राय देने के लिए कहा गया है ।

7. प्रत्यर्थी संख्या 1, 16, 17 और 20 की ओर से विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल श्री मनीष वशिष्ठ और श्री समीर वशिष्ठ ने याची द्वारा आयोग के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से फाइल किए गए अधिकथित द्वितीय याचिका तारीख 28 दिसंबर, 2015 के चलने योग्य के बारे में प्रारंभिक आक्षेप उठाए और यह कथन किया कि याची ने सर्वप्रथम यह अभिकथन करते हुए 1991 अधिनियम की धारा 15(3) के निबंधनों में राष्ट्रपति को तारीख 19 जून, 2014/15 को दो पृष्ठ की शिकायत की थी कि उपरोक्त मामले में प्रत्यर्थी विधान सभा में बने रहने की सदस्यता से अनर्हित हो गए हैं क्योंकि वे संसदीय सचिवों के रूप में दिल्ली सरकार के अधीन लाभ का पद धारण कर रहे थे । इसके पश्चात् तारीख 28 दिसंबर, 2015 को याची के बारे में आयोग को द्वितीय शिकायत किया जाना अभिकथित है । विद्वान काउंसिलों के अनुसार आयोग द्वारा याची के 28 दिसंबर, 2015 की शिकायत पर संज्ञान नहीं लेना चाहिए था क्योंकि माननीय राष्ट्रपति द्वारा उस मामले को निर्दिष्ट नहीं किया गया था । यह भी दलील दी गई थी कि तारीख 28 दिसंबर, 2015 का द्वितीय शिकायत राष्ट्रपति के पास प्रस्तुत की जाने चाहिए थी न कि प्रत्यक्ष रूप से आयोग के पास ।

8. विद्वान काउंसिल ने आगे यह भी दलील दी कि उक्त द्वितीय शिकायत में जो आयोग के सचिव को संबोधित की गई थी, याची ने भिन्न अभिकथन किए थे जो तारीख 19 जून, 2015 की शिकायत के मूल भाग रूप में नहीं थी । उन्होंने सुधार किए गए द्वितीय शिकायत को प्रश्नगत किया और यह दलील दी कि द्वितीय याचिका नए आधार सृजित करने का स्पष्ट प्रयास

था जो प्रथम याचिका में पहले नहीं दिए गए थे । विद्वान काउंसिल की यह राय थी कि याची ने सम्यक रूप से प्रक्रिया का पालन किए बिना साक्ष्य देने की ओर अग्रसर हुए ।

9. विद्वान काउंसिल ने साक्ष्य की विश्वसनीयता और विधि के उपबंधों पर भी दलील दी जिससे अंतर्गत ऐसे साक्ष्य पर विचार नहीं किया जा सकता । यह भी कथन किया गया था कि यदि कतिपय दस्तावेजों का संज्ञान लिया जाना अपेक्षित है, तो उन्हें मूल दस्तावेज होना चाहिए न कि फोटोप्रति ।

10. उन्होंने 1991 के अधिनियम की धारा 15(3) की ओर भी ध्यान दिलाया जिसमें 'अनर्हता के प्रश्न' के बारे में बताया गया है और इसलिए प्रश्न, शब्द पर जोर दिया गया और वर्तमान मामले में तारीख 19 जून, 2015 की प्रथम शिकायत द्वारा ऐसा प्रश्न उठाया गया था । इस बारे में 'क्या उक्त 21 विधायकों ने लाभ का पद धारित किया था या नहीं । इसलिए उक्त प्रश्न के बारे में आयोग की राय मात्र प्रथम शिकायत पर सीमित होगी । उन्होंने अपने पूर्वोक्त निवेदनों के समर्थन में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया जो इस प्रकार है- पी के श्री खेतान बनाम पी श्री कुमारन नायर (2006)13 एसएससी 574, टाटा आयरन और स्टील कंस्टिट्वैंसीज लिमिटेड बनाम झारखंड राज्य और अन्य (2014) 1 एससीसी 536, और एन ज्योति बनान भारत का निर्वाचन आयोग और एक अन्य (2007 की रिट याचिका सं. 17601) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय का विनिश्चय ।

11. विद्वान काउंसिल ने यह दलील दी कि वे तारीख 19 जून, 2015 की प्रथम शिकायत को ग्रहण करने के बारे में आयोग की शक्ति और अधिकारिता को चुनौती नहीं दे रहे हैं, परंतु तारीख 28 दिसंबर, 2015 की द्वितीय शिकायत के चलने की योग्यता को प्रश्नगत कर रहे हैं, इसलिए उन्होंने यह निवेदन किया कि आयोग निरंतर जांच कर सकता है परंतु केवल प्रथम शिकायत के आधार पर और कुछ भी प्रकट परवर्ती प्रथम निर्देश पर विचार नहीं किया जाना चाहिए ।

12. इसके अतिरिक्त विद्वान काउंसिल श्री समीर वशिष्ट ने यह निवेदन किया है कि शपथ पत्र जो आदेश 19 नियम 3, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के और उच्चतम न्यायालय आदेश 9, नियम 13 के अनुरूप नहीं है, खारिज किया जाना चाहिए । उन्होंने यह कथन किया कि वर्तमान मामले में याची ने विहित प्ररूप में शपथपत्र फाइल नहीं किया है । विद्वान काउंसिल ने यह दलील दी है कि याची ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 1951 का अधिनियम कहा गया है) की धारा 146(3) और (4) दांडिक परिस्थितियों के अपवंचन के लिए शपथपत्र फाइल नहीं किया, जिन बातों को याची जानता था कि उसके द्वारा किए गए अभिकथन झूठे और कपटपूर्ण हैं और शपथपत्र में उन्हें फाइल न करके वह दंड सहिता, 1860 के अधीन दायित्व से बच जाएगा ।

13. प्रत्यर्थी सं. 2 और 5 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान काउंसिल श्री कमल मेहता ने उपरोक्त विद्वान काउंसिलों द्वारा रखी गई दलीलों का प्रतिरोध करते हुए यह इंगित किया है कि शपथपत्र फाइल करने का प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है कि मिथ्या निवेदन नहीं किए गए थे और यदि याची द्वारा इस रीति में शपथपत्र फाइल किया गया है तो इसे स्वीकार किया जाना चाहिए.....

14. प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल सुधीर नंदराजोग और प्रत्यर्थी सं. 9 की और से विद्वान काउंसिल श्री सुभांशु पधी ने यह जोर दिया है कि वर्तमान मामले में तारीख 28 दिसंबर, 2015 की द्वितीय शिकायत पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि इसे कभी भी राष्ट्रपति को प्रस्तुत नहीं किया गया; कि आयोग अर्ध न्यायिक निकाय के रूप में है, उसके पास केवल सीमित शक्ति हैं और जांच की इसकी अधिकारिता और शक्ति राष्ट्रपति के निदेश से ही प्रारंभ होती है जो द्वितीय शिकायत तारीख 28 दिसंबर, 2015 के निर्देश में नहीं किया गया था । अतः एन. ज्योति उपरोक्त वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के विनिश्चय का प्रबल रूप से अवलंब लिया गया, उन्होंने यह दलील दी कि आयोग जांच के क्षेत्र को विस्तार नहीं दे सकता । विद्वान काउंसिल ने यह भी दलील दी कि तारीख 4 दिसंबर, 2015 का नोटिस कमीशन द्वारा भेजा गया था जिसमें केवल याची के हस्ताक्षर और शपथपत्र चाहा गया था । इसलिए याची द्वारा उक्त नोटिस में कोई अतिरिक्त दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया जा सका ।

15. प्रत्यर्थी सं. 8 और 3 की ओर से विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल श्री अमिताब चतुर्वेदी ने यह निवेदन किया है कि अनर्हता जो 1991 के अधीनियम की धारा 15(1) और (क) के अधीन अधिकथित है जिसमें फायदे के पद के बारे में बताया गया है, और शिकायत अधिनियम की धारा 15(3) के अधीन की गई है । मूल दस्तावेज में दिए गए शिकायतों और दस्तावेजों के आधार पर, राष्ट्रपति मामले को निर्वाचन आयोग के पास भेजेंगे । राष्ट्रपति के तारीख 10 नवंबर, 2015 का निर्देश विशेष रूप से जो तारीख 19 जून, 2015 पर उल्लिखित है और इसलिए उक्त निर्देश 28 दिसंबर, 2015 के द्वितीय शिकायत का आधार नहीं हो सकता । द्वितीय शिकायत पर केवल तभी विचार किया जा सकता है यदि प्रथम शिकायत का अगला भाग जो इसमें नहीं है । विद्वान काउंसिल ने यह भी दलील दी कि इस प्रयोजन के लिए भी 1991 के अधिनियम की धारा 146 का आश्रय भी नहीं

लिया जा सकता । उन्होंने यह दलील दी कि धारा 146 जब 1951 का अधिनियम अधिनियमित किया गया, तब 1991 के अधिनियम में सम्मिलित नहीं किया गया और यह सचेत लोप संसद् की ओर से हुई थी कि उन्होंने स्वप्रयोजन 1951 के अधिनियम की परिधि से 1991 के अधिनियम की धारा 15 का लोप किया, यद्यपि संसद् ने 1965 में 1991 के अधिनियम की संशोधित धारा 146 द्वारा संज्ञेय संघ राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 की धारा 14(4) के निर्देश को सम्मिलित किया गया । उपरोक्त प्रतिपादना के संबंध में उन्होंने आय-कर आयुक्त, केरल बनाम तारा एजेंसीज (2007)6 एससीसी 429, कंपटीशन कमीशन आफ इंडिया बनाम स्टील अथारिटी आफ इंडिया लिमिटेड (2010) एससीसी 744 और पी.की. श्रीकांत बनाम पी. श्रीकुमारन नायर (2006)13 एसएससी 574 वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय और राय प्रमाथा नाथ मुलिक बहादुर बनाम सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया इन काउंसिल एआईआर 1930 प्रिवी काउंसिल 64 वाले मामले में प्रिवि काउंसिल का विनिश्चय का अवलंब लिया ।

16. विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल ने यह भी अभिकथन किया कि यह उपधारणा की गई कि वर्तमान मामले में 1951 के अधिनियम की धारा 146 के अधीन आयोग के पास दस्तावेजों को मंगाने की शक्ति है । उक्त शक्ति का केवल तब प्रयोग किया जा सकता है जब आयोग सभी तात्विक सामग्रियों की परीक्षा कर ले और उसका यह समाधान हो गया था कि ऐसी राय बनाना अपर्याप्त था । यह भी दलील दी गई कि आयोग पक्षकारों की सहमति से पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर प्रथमतः जांच करनी चाहिए । आयोग का नोटिस के माध्यम से याची को साक्ष्य के लिए बुलाया जाना चाहिए और इसलिए आयोग के समक्ष साक्ष्य पेश किया जाएगा.....

17. विद्वान ज्येष्ठ काउंसिल ने आयोग के तारीख 26 जुलाई, 2016 के आदेश के पैरा 6 में 'अग्रिम पत्राचार' शब्द उल्लेख करते हुए यह दलील दी है कि आयोग द्वारा किया गया अवलोकन यहां पर लागू नहीं हो सकता क्योंकि ऐसी प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था । उन्होंने यह निवेदन किया कि 1951 के अधिनियम की धारा 146ख, अधिनियम की धारा 146 के अधीन अध्यपेक्षाओं को अवहेलना के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता, यह दलील दी गई कि यदि किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए प्रक्रिया विहित की गई है तो यह बात केवल इस बात के अनुसरण में होनी चाहिए कि इस समय कोई दूसरी रीति नहीं है । उसने यह भी दलील दी थी कि 1991 के अधिनियम की धारा 40 के फलस्वरूप, आयोग निर्वाचन के संबंध में उसमें उल्लिखित मामलों के बारे में ही शक्ति का प्रयोग करेगा । इसलिए यह सचेत लोप था कि जब 1991 के अधिनियम की धारा 15 का 1991 के अधिनियम 146 में विनिर्दिष्टतः उल्लेख नहीं किया गया है तो आयोग के पास वर्तमान मामले में ऐसी कोई शक्ति नहीं है ।

18. (i) प्रत्यर्थी सं. 10 की और से विद्वान् काउंसिल श्री रजत नावेद ने यह निवेदन किया है कि यदि विधानमंडल ने जानबूझकर इस उपबंध को सम्मिलित नहीं किया है तो निर्वाचन आयोग इसे अंतर्विष्ट नहीं कर सकता है और यह संविदियों के पार्ट से बाहर होगा । मूल शिकायत में तीन महत्वपूर्ण बातों की परीक्षा की जानी चाहिए । मुख्यमंत्री द्वारा तारीख 13 मार्च, 2015 को आदेश जारी करके विधायकों को संसदीय सचिव के पद दिए गए थे । (ii) उन्हें सरकारी वाहन भी दिए गए थे । (iii) संसदीय सचिव के रूप में मंत्रियों के कार्यालय की जगह थे । मूल शिकायत में तीन महत्वपूर्ण बातों की परीक्षा की जानी है ; इसलिए निर्देश का संपूर्ण क्षेत्र पूर्वोक्त तीन बातों तक सीमित हैं और दूसरी शिकायत में शेष सभी अभिकथन राष्ट्रपति के निर्देश से परे हैं ।

19. विद्वान् काउंसिल श्री जिवेश नगरात प्रत्यर्थी सं. 18 और 15 की और से हाजिर हुए, उन्होंने विद्वान् काउंसिल द्वारा किए गए पूर्ववर्ती निबंधनों को दोहराया और यह निवेदन किया कि दूसरी शिकायत अधारहीन और असंगत अभिकथन किए गए हैं जहां याची ने सरकार द्वारा विधायकों की अरर्हता को दूर करने के संबंध में विधि में ईप्सित संशोधनों को चुनौती दी है और इस प्रयोजन के लिए भूतलक्षी प्रकृति का बिल पेश किया गया । काउंसिल ने इन दावों को प्रश्नगत किया और यह कहा कि यह इन मुद्दों को उठाने के लिए समुचित न्यायालयी नहीं है । **अरिकाला नारसा रेड्डी** बनाम **वेंकटाराम रेड्डियागरी और एक अन्य**, ए.आई.आर. 2014 एस.सी. 1290 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की मताभिव्यक्तियों का अवलंब लिया । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि आयोग याची के मूल अभिवचनों के परे साक्ष्य पर विचार नहीं कर सकता ।

20. प्रत्यर्थी सं. 19 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसिल श्री सुशील कुमार शर्मा ने याची द्वारा फाइल किए गए शपथपत्र की विधिमान्यता को प्रश्नगत किया है और, **अमर सिंह** बनाम **भारत संघ और अन्य,** (2011) 7 एस.सी.सी. 69 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया और यह कथन किया कि खाली कागजातों पर लिखित वचन देना शपथपत्र के रूप में विचार नहीं किया जा सकता । उन्होंने यह निवेदन किया कि साक्ष्य का तब तक अवलंब नहीं लिया जा सकता जब तक कि उसके बारे में यह नहीं कहा जाए कि उन्हें मूल प्रतियों को प्रस्तुत किया बिना कैसे उपगत किया गया ।

21. शेष परिस्थितियों के सभी विद्वान् काउंसिलों ने उपरोक्त विद्वान् काउंसिल द्वारा दिए गए दलीलों को अंगीकार किया है ।

22. याची प्रशांत पटेल की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल श्री अतुल नड्डा ने अपने प्रति निवेदनों में यह दलील दी है कि आयोग के समक्ष वर्तमान मामला छानबीन करने वालों अधिकारिता की प्रकृति का है न कि विरोधात्मक अधिकारिता वाला । इसलिए वर्तमान जांच शिकायत के तथ्यों पर आधारित नहीं हैं बल्कि इस प्रश्न को राष्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए ।

23. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल ने यह भी कथन किया है कि अधिनियम 1991 की धारा 15 के अधीन आयोग को क्या इसे निर्दिष्ट किया गया था, परिवाद में कतिपय तथ्यों का उल्लेख नहीं किया गया था । परंतु यह प्रश्न है कि क्या किसी व्यक्ति ने "लाभ का पद" धारित किया है जिसके लिए जांच की जानी चाहिए । काउंसिल ने यह भी कथन किया है कि 1991 के अधिनियम की धारा 15 भारत के संविधान के अनुच्छेद 192 के समविषयक है । आयोग की अधिकारिता जांच करते समय अभियोक्ता के अभिवचनों द्वारा और न अभियुक्त द्वारा बाध्य है । इसलिए याची द्वारा फाइल किया गया दस्तावेजों में कोई प्रतिकूलता नहीं हो सकती । यद्यपि शिकायत तुच्छ है या वापस ली गई हो तो इस बारे में आयोग को जांच कराने में कोई कठिनाई नहीं होगी और अपने विचार प्रकट करते हुए भारत के राष्ट्रपति को अपनी जांच प्रस्तुत की जानी चाहिए ।

24. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल ने अपनी दलील देते हुए वृंदाबेन नायक (ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 1892) और एन. जी. रंगा (ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 1609) वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए यह दलील दी की याची को नोटिस भेजने में कुछ भी गलती नहीं है और किसी भी मामले में यह दलील नहीं दी जा सकती कि आयोग द्वारा जांच करने में बाधा प्रकट होती । जब एक बार अनरर्हता का 'प्रश्न' उद्भूत होता है तो इस बारे में तथ्य को देखना अतात्विक है कि किसके द्वारा इस बात को उठाया गया था और किन परिस्थितियों के अंतर्गत इस पर बात की गई थी । उन्होंने यह भी कथन किया कि शपथपत्र फाइल नहीं किया गया या उसे नोटरी से प्राधिकृत नहीं कराया गया, यह प्रक्रियात्मक गलती है जिसे कार्रवाई के किसी प्रक्रम पर सही कराया जा सकता हो । इसलिए निर्देश को बनाए रखना शिकायतकर्ता पर निर्भर नहीं करता है जब शिकायतकर्ता ने कई दस्तावेज फाइल किए हैं ।

25. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल ने यह भी दलील दी कि यदि शिकायत में कोई अभिकथन किया गया है जो गलत है, याची उन परिस्थितियों का सामना करने के लिए तैयार है और तब तक कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता न्याय को त्यागने के रास्ते में खड़ी न हो जाए ।

26. श्री मनीष वशिष्ट विद्वान् काउंसिल ने याची के निमित दी गई दलीलों के अपने प्रतिउत्तर में कथन किया कि जब भी किसी मामले में जिसका विचारण किसी अधिकरण/आयोग/न्यायालय द्वारा किया जाता है के सिविल परिणाम होते हैं, ऐसी कार्यवाहियों की प्रकृति प्रतिकूल होगी । उन्होंने यह अभिकथन किया कि हमारा संविधान जो सामान्य विधि का अनुसरण करता है और आयोग एक संवैधानिक निकाय है जो सामान्य विधि का अनुसरण करता है । विद्वान् काउंसिल ने आगे यह कथन किया है कि याची द्वारा उस दिन फाइल किए गए नये सिर शपथपत्र के पैरा 2 का परिशीलन करने पर (सभी दस्तावेज ..... मेरे द्वारा रचित हैं) और कि याची ने इस प्रकार यह स्वीकार किया है कि उसके द्वारा फाइल किए गए सभी दस्तावेज पड़े हुए हैं । उसने यह भी कथन किया कि 1951 के अधिनियम की धारा 146 समाधान शब्द को आयोग द्वारा तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक कि दोनों पक्षकारों को सुनवाई का व्यापक अवसर न दे दिया जाए । काउंसिल ने यह अभिवाक् किया कि आयोग को नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का सहारा लेना चाहिए ।

27. विद्वान् काउंसिल श्री सचिन कुमार ने अपने उत्तर में यह दलील दी कि न तो प्रत्यर्थी और न काउंसिल याची द्वारा फाइल किए गए नये शपथपत्र का पता था और यह कहा गया कि क्या आयोग ने अपने अभिलेख में इसे स्वीकार किया है या नहीं । काउंसिल ने यह कथन किया कि याची ने पिछले साल शिकायत प्रस्तुत की थी और उसने आज यह कहते हुए शपथपत्र फाइल किया है कि जब कभी उसने अपनी जानकारी और विश्वास के साथ सत्य शपथपत्र फाइल किया है, उसे स्वीकार नहीं किया जा सका । काउंसिल ने इस नये सुधारों के आधार पर अपना लिखित निवेदन फाइल करने के लिए कुछ समय की ईप्सा की है ।

28. आयोग ने प्रत्यर्थियों और याची के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल/काउंसिल द्वारा किए गए निवेदनों और प्रतिनिवेदनों पर सावधानीपूर्वक विचार किया । इसमें मौजूद पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों और प्रति दलीलों की गुणता पर विचार करने से पूर्व यह भी सलाह योग्य है कि वर्तमान कार्यवाहियों से संबंधित 1951 के अधिनियम की धारा 146 को लागू करने के मुद्दे का निपटारा किया जाए । जैसाकि कई विद्वान् काउंसिल द्वारा बात उठायी गई है । विद्वान् काउंसिल श्री अमिताभ चतुर्वेदी द्वारा मुख्यत: यह दलील दी गई कि 1991 की अधिनियम की धारा 15(4) का निर्देश संसद् द्वारा जानबूझकर नहीं किया गया था जब 1991 का अधिनियम अधिनियमित किया गया था, जबकि संघीय राज्य क्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 की धारा 14 की उपधारा (4) का निर्देश 1965 के संशोधित 1951 की अधिनियम की धारा 146 में निर्दिष्ट रूप से किया गया था । यह प्रकट हुआ है कि विद्वान् काउंसिल इस तथ्य का उल्लेख करने में विफल हुए हैं कि 1951 का अधिनियम की धारा 146 वर्तमान

स्वरूप में 1965 में प्रथम बार 1951 के अधिनियम में प्रोस्थापित किया गया था और यह ऐसा संशोधन नहीं था कि धारा जो 1965 में बनाई गई थी जैसाकि उनके द्वारा दलील दी गई । 1951 की अधिनियम की धारा 146 जिसे 1951 में मूलत: अधिनियमित किया गया था । स्थानीय प्राधिकरण, लोक न्यास में पदधारण करने पर दोषसिद्धि आदि के आधारों पर अनहरर्ता के पूर्णतया भिन्न-भिन्न विषयों पर विचार किया गया है । यह धारा 146 जिसे मूलत: अधिनियमित किया गया था, उसे निर्वाचन सुधारों पर भार्गव समिति की सिफारिशों पर लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा 1956 में 1951 के अधिनियम से विलुप्त कर दिया गया था । वास्तव में वर्तमान धारा 146 भाग VIII का संपूर्ण अध्याय IV जिसमें धारा 146, 146क, 146ख, 146ग सम्मिलित हैं उन्हें 1965 में प्रथम बार 1951 के अधिनियम में अंतर्विष्ट किया गया था । उक्त अध्याय का अंतर्वेषण संसद् द्वारा **ब्रुन्दाबंद नायक** बनाम **भारत का निर्वाचन आयोग** (ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 1895) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा कुछ मताभिव्यक्तियों के आधार पर संसद् द्वारा उक्त अध्याय को बनाया गया था जिसका का प्रभाव यह था कि निर्वाचन आयोग को उसके द्वारा संसद् और राज्य विधानमंडल में बैठने वाले सदस्यों की अनहरर्ता के प्रश्न पर अपनी राय देने के लिए राष्ट्रपति और गर्वनर से प्राप्त किए गए निर्देशों पर आयोग द्वारा साक्षियों को समन जारी करने के मामले में अभिलेख तलब करने आदि और जांच बैठाने के संबंध में सिविल न्यायालय की शक्तियां विहित होंगी । विधि के अधीन यह भी सुसंगत है जैसाकि 1965 में समझा गया है कि आयोग संविधान के अनुच्छेद 103(2) और संघीय राज्य क्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 और संविधान के अनुच्छेद 192(2) के राज्यपालों से निर्देश प्राप्त कर सकता है । तथा तदनुसार संविधान के अंतर्गत सभी सुसंगत उपबंध और अधिनियमित विधियां जैसाकि उस समय उन्हें समझा गया है, उनका 1991 के अधिनियम की धारा 146 में उल्लेख किया गया था। इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि 1951 के अधिनियम की धारा 146 में 1991 के अधिनियम की धारा 15(4) के निर्देश का जानबूझकर लोप किया गया था ; ऐसा केवल 1991 के अधिनियम को अधिनियमित करते समय 1991 में अवधानतावश ही लोप हुआ था । 1951 के अधिनियम में ऐसे ही अन्य अवधानतावश कई लोप हुए थे । उदाहरणार्थ, धारा 29ख, जिसका कंपनी अधिनियम, 1956 और विदेशी अंशदान विनियमन अधिनियम, 1976 में अंतर्विष्ट हुआ जिनका अब निरसन कर दिया गया है और उन्हें 2013 और 2010 के नये अधिनियमों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया ।

29. परंतु ऐसा अवधानतावश लोप आयोग की शक्तियों में किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डालता है जिससे कि राष्ट्रपति द्वारा 1991 के अधिनियम की धारा 15(4) के अधीन अपनी राय देने के लिए आयोग को निर्दिष्ट प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अपनी राय देने के प्रयोजन से जांच करें । उच्चतम न्यायालय की संविधान न्याय पीठ ने **भारत के निर्वाचन आयोग** बनाम **एम. जे. रंगा** (ए.आई.आर. 1978 एस. सी. 1609) में स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि निर्वाचन आयोग के पास राष्ट्रपति या राज्यपाल से प्राप्त किए एक निर्देशों के मामले में जांच करने की नि:संदेह शक्ति है जिसमें संसद् या विधानमंडल में बैठे हुए सदस्यों की निरर्हता के प्रश्न पर इसकी राय की ईप्सा की जाती है । इस प्रकार यह आवश्यक है कि आयोग प्रक्रिया के बारे में दिशा-निर्देश देने के लिए 1951 की अधिनियम की धारा 146 के उपबंधों पर हमेशा विचार कर सकते हैं कि आयोग द्वारा राष्ट्रपति से जांच के संबंध में निर्देश के मामले में प्रक्रिया का अंगीकार या उसका अनुसरण किया जा सकता है । 1965 में, 1951 के अधिनियम में धारा 146 को अंतर्विष्ट किए जाने से पूर्व आयोग वास्तव में संविधान के अनुच्छेद 103(2) और 192 (2) के अधीन राष्ट्रपति और राज्यपाल से प्राप्त किए गए निर्देशों में कई जांच की थी । उच्चतम न्यायालय ने महिन्दर सिंह गिल बनाम मुख्य निर्वाचन आयुक्त ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 851 में यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां किसी प्राधिकारी को कोई कर्तव्य या कृत्य का पालन करना सौंपा गया है वहां उस कर्तव्य या कृत्य के पालन को प्रभावी बनाने के लिए सभी आवश्यक और आनुषंगिक शक्तियां विविक्षित रूप से ऐसे प्राधिकारी में न्यस्त होती हैं । इसलिए 1951 में के अधिनियम की धारा 15(4) के प्रति प्रत्यक्ष निर्देश के अभाव में भी 1991 की अधिनियम की धारा 146 में आयोग संसद और राज्य विधानमंडल के पीठासीन सदस्यों के निरर्हता के मामले में संविधान या किसी वैधानिक विधि के अधीन राष्ट्रपति/राज्यपालों को दी जाने वाली अपने राय बनाने के प्रयोजनों के लिए कोई भी जांच करते समय धारा 146 में संसद द्वारा दिए गए सिद्धांतों और मार्गदर्शन का सदैव सहारा ले सकता है । तदनुसार इस मामले में आयोग 1951 की अधिनियम की धारा 146ख में यथा परिकल्पित दिल्ली विधानसभा के 21 सदस्यों की निरर्हता के मामले में जांच करने के लिए अपनी स्वयं की प्रक्रिया अपना सकता है ।

30. इस संदर्भ में, राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र दिल्ली शासन अधिनियम, 1991 (1991 का अधिनियम) की स्कीम पर ध्यान देना भी सुसंगत है । इसे राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र दिल्ली के विधानसभा और मंत्री परिषद् से संबंधित संविधान के उपबंधों को पूरक करने और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया था । 1991 के अधिनियम की धारा 15 दिल्ली विधानसभा के सदस्यों की निरर्हता से संबंधित है । दिल्ली विधान सभा के पीठासीन सदस्यों के मामले में ऐसे निरर्हता के प्रश्न को केवल उक्त उपबंध की उपधारा (3) के अधीन और उक्त उपबंध की उपधारा (4) के आधार पर यथाविनिर्दिष्ट राष्ट्रपति द्वारा विनिश्चित किया जा सकता है । ऐसे विनिश्चय पर पहुंचने से पहले राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग की राय लेगा और ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा ।

31. 1991 के अधिनियम की धारा 15(4) के साथ-साथ 1951 के अधिनियम की धारा 146 के उपबंधों का निर्वचन करते समय आयोग को, भारतीय रिजर्व बैंक बनाम पीयरलेस जेनरल फाइनेंस एंड इनवेंस्टमेंट कांस्टीट्यूनसीज लिमिटेड, 1987 एस.सी.आर. (2) 1 में उच्चतम न्यायालय की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों द्वारा मार्गदर्शित होना है ।

निर्वचन को मूल पाठ और संदर्भ पर निर्भर होना चाहिए । ये निर्वचन के आधार हैं । मूल पाठ बनावट है और संदर्भ उसमें रंग भरता है । इनमें से किसी को भी नजअंदाज नहीं किया जा सकता । किसी कानून का सर्वोत्तम निर्वचन तब होता है जब हम ये जानते हों कि इसे क्यों अधिनियमित किया गया था । इस जानकारी के साथ कानून को पहले पूर्णरूप से और फिर धारा दर धारा खंड दर खंड वाक्यांश दर वाक्यांश और शब्द दर शब्द पढ़ा जाना चाहिए । यदि किसी कानून को उसके अधिनियमन के संदर्भ में कानून बनाने वाले की नजरों से देखा जाता है बशर्ते ऐसे संदर्भ से उसकी स्कीम धाराएं, खंड, वाक्यांश और शब्द भिन्न अर्थ बताते हैं या भिन्न प्रतीत होते हैं तब कानून को संदर्भ द्वारा उपबंधित नजरिये के बिना देखा जाता है । इस नजरिये से हमें अधिनियम को समग्र रूप से देखना चाहिए और यह पता लगाना चाहिए कि प्रत्येक धारा, प्रत्येक खंड, प्रत्येक वाक्यांश और प्रत्येक शब्द का क्या आशय है और उसे किस लिए डिजाइन किया गया है जिससे उसे संपूर्ण अधिनियम की स्कीम के अनुरूप हों । किसी कानून के किसी भाग का और किसी कानून के किसी शब्द का अर्थान्वयन एकाकी रूप से नहीं किया जा सकता । कानूनों का अर्थान्वयन ऐसे किया जाना है जिससे प्रत्येक शब्द का अपना महत्व हो और हर बात अपने स्थान पर हो ।

32. वाणिज्यकर अधिकारी, राजस्थान बनाम मैसर्स बिनानी सीमेटलिमिटेड और अन्य (2014)3 एस. सी. आर. 482 में,उच्चतम न्यायालय ने कोर्पस जुरिस सेकण्डम, 82 की.जे.एस. परिनियम को निर्दिष्ट करते हुए हुए कथित किया है कि जब उसी विषय से युक्त किसी साधारणऔर किसी विशिष्ट परिनियम काअर्थ लगाना इस कारण से संगत रूप में परिनियमि को निर्दिष्ट करते हुएकथितकिया है कि जब उसी विषय सेयुक्त किसी साधारण और किसी विशिष्ट परिनियम का अर्थ लगाना हैइस कारणसे हरेक से संगत रूप से परिनियमोंपर विचार करना आवश्यक है और ऐसे परिनियम सामंजस्यपूर्ण होना चाहिए, संगतविधायी नीति को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से यदि संभव हो ।

33. पूर्वोक्त सूचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह कानूनी निर्माण का नियम है जोसाधारण संचालन को विनिर्दिष्ट करता है न कि आत्यंतिक नियम को, किंतु यह केवल कानूनी अर्थ को गलत उपदर्शन करता है चूंकि यह पाठ्य उपदर्शनों द्वारा जो अन्य दिशा में प्रश्न अधिभूत हो ।

34. अतः आयोग का यह मत है कि 1991 के अधिनियम की धारा 146 के उपबंध, वर्तमान जांच के संसाधन के मार्गदर्शन के तत्कालीन मामला का निपटारा करना उचित होगा ।

35. तदनुसार, प्रत्यर्थी के लिए विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा उठायी गई आपत्ति कि आयोग के 1951 के अधिनियम की धारा 146 के अधीन मार्गदर्शन प्राप्त करने की कोई शक्ति नहीं है, का कोई विधिक आधार नहीं है और गुणरहित होनेके कारण चलने योग्य नहीं है ।

36. इस प्रकार प्रक्रिया विनिश्चित करने के बाद जिसका अनुसरण आयोग द्वारा वर्तमान मामले में किया जा सके, विनिश्चित किए जाने वाला अगला प्रश्न, जांच की प्रकृति और कार्यवाहियों कार्यक्रम है जिसे आयोग द्वारा अंगीकृत किया जा सकेगा । आयोग की राय में, राष्ट्रपति या राज्यपालों से ऐसे निर्देश मामलों में कार्यवाहियां प्रतिकूल नहीं कही जा सकती जैसाकि सामान्य से मामले में, जहां एक पक्षकार के अपने अधिकार वाद के दूसरे पक्षकार के अधिकार के साथ आयोग द्वारा आधारित किए जाने होते हैं । वर्तमानप्रकृति के मामले में आयोग को अपनी राय राष्ट्रपति को या यथास्थिति संबंधित राज्य के राज्यपाल को इस प्रश्न पर देरी होती है कि क्या संसद या राज्य विधानमंडल का कोई आसीन सदस्य, जिसका मामला आयोग को निर्दिष्ट किया गया है संसद या राज्य विधानसभा का ऐसा सदस्य बने रहने के लिए, शिकायत के अधिकारों पर कोई न्यायनिर्णयन किए बिना, निर्हरता के अधीन आ गया है । इस प्रकार के मामले में, आयोग को इसे निर्दिष्ट किए गए प्रश्न पर अपनी राय निर्मित करने और प्रस्तुत करनी है, भले ही मूल शिकायतकर्ता इसकी जांच में आयोग को कोई सहायता देने में असफल रहे या इनकार करे । पूर्व में, समान प्रकृति का एक मामला सिक्किम के राज्यपाल द्वारा आयोग को इसकी राय के लिए निर्दिष्ट किया गया था और शिकायतकर्ता/याची ने आयोग के समक्ष शिकायत को वापस लेना चाहा था । आयोग ने उस शिकायतकर्ता/याचीकी प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया था और मामले में सम्यकजांच के पश्चात् सिक्किम के राज्यपाल को अपनी राय प्रस्तुत की थी ।अतः, ऐसे मामलों में केवल शिकायतकर्ता की शिकायत में किए गए कथनों या अभिकथनों द्वारा की आयोग की शक्तियां परिसीमित नहीं होती हैं । यह सभी आवश्यक सूचना और सामग्री इसे निर्दिष्ट किए गए प्रश्नों पर अपनी राय देने के परियोजना के लिए सुसंगत स्रोतों से एकत्रित करता है और अपनी राय निर्दिष्ट करने वाले प्राधिकारियों को प्रस्तुत करता है ।

37. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए आयोग को 4.12.2015 को नोटिस में कोई दोष या अनियमितता प्रतीत नहीं होती जब याची से वर्तमान मामले में एक सम्यक रूप से हस्ताक्षरित याचिका (क्योंकि मूल याची का उसके द्वारा हस्ताक्षरित नहीं थी) 28.12.2015 तक फाइल करने के लिए और ऐसी सभी दस्तावेज प्रस्तुतकरने के लिए कहा गया था जिन पर वह अपनी 19.6.2015 की मूल शिकायत में किए गए अभिकथनों के समर्थन में अवलंब लेना चाहता था । अधिकथित दूसरी याचिका तारीख 28.12.2015 आयोग द्वारा तारीख 4.12.2015 के उत्तर में याचीद्वारा फाइल की गई । यह सही है कि याची ने आयोग के 4.12.2015 के उक्त नोटिस के उत्तर में अपने तारीख 15.12.2015 के जबाव में कथन किया था कि वह एक नई याचिका फाइल कर रहा है ।किंतु आयोग को याची द्वारा प्रस्तुत नई याचिका के रूप में उल्लिखित उक्त उत्तर के सार पर विचार चल रहा है न कि उसके मात्र प्रकार पर ।आयोग का सुविचारित मत है कि याची का उक्त उत्तर राष्ट्रपति सचिवालय के माध्यम से भेजा जाना आवश्यक नहीं था । जब राष्ट्रपति ने आयोग को इसकी राय के लिए एक बार निर्देश दे दिया हो तो आगे का आयोग द्वारा संबंधित पक्षकारों से सभी पत्राचार या विपर्यन प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है न कि राष्ट्रपति सचिवालय के माध्यम से । यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है किप्रत्यर्थियों द्वारा तारीख 16.3.2016 के आयोग के नोटिस के उत्तर में फाइल किए गए लिखित कथन तारीख 9.5.2016 उनके द्वारा आयोग को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किए गए थे न कि राष्ट्रपति सचिवालय के माध्यम से । यदि प्रत्यर्थियों द्वारा आयोग को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत लिखित कथन अभिलेख पर लिए जा सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि अधिकथित तारीख 28.12.2015 की याचिका जैसाकि प्रत्यर्थियों द्वारा दावा किया गया है, उस पर विचार किए बिना उनका संज्ञान न लिया जाए। यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि जब राष्ट्रपति विधि के किसी प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय की राय प्राप्त करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन उच्चतम न्यायालय में कोई निर्देश भेजता है तो उच्चतम न्यायालय भारत के न्यायवादी से और ऐसे अन्य प्राधिकारियों से जिन्हें वह निदेश देना उच्चतम न्यायालय नियमों के अधीन उचित समझे, जवाब की अपेक्षा करता है और ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है कि ऐसा पत्राचार संबंधित प्राधिकारियों के साथ उच्चतम न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति सचिवालय के माध्यम से किया जाए ।

38. आयोग को याची के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल के इन निवेदनों में भी बल दिखाई देता है कि 1991 के अधिनियम की धारा 15(4) के अधीन जिसे राष्ट्रपति द्वारा आयोग की राय के लिए निर्दिष्ट किया गया है वह यह 'प्रश्न ' कि क्या दिल्ली विधानसभाके 21 सदस्य संसदीय सचिवों के रूप में लाभ का पद धारित करने के कारण निर्हरता के अधीन आ गए है न कि याची की मात्र शिकायत । मामले की इस दृष्टि से भी आयोग याची की तारीख 28.12.2015 की तथाकथित दूसरी याचिका को पूर्ण रूप से उपेक्षा नहीं कर सकता ।

39. अतः आयोग तारीख 26.7.2015 के अपने पूर्व आदेश के पैरा 6 को दोहराते हुए यह राय रखता है कि आयोग किसी भी व्यक्ति से यह अपेक्षा कर सकता है कि इस समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा दावा किए गए किसी विशेषाधिकार के अधीन ऐसे बिन्दुओं और मामलों पर सूचना प्रस्तुत करे जो आयोग की राय में जांच की विषयवस्तु के लिए उपयोगी हों या सुसंगत हों । अतः आयोग इसकेद्वारा दिए गए नोटिसों के माध्यमसे ऐसी जांच केप्रक्रम में किसी भी समय ऐसे दस्तावेजों की मांग कर सकता है जो उसकी राय में न्याय देने के लिएसुसंगत और महत्वपूर्ण हो। इसके अलावा, आयोग पक्षकारों को ऐसे बिन्दुओं और मामलों में विस्तारपूर्वक सूचना देनेके लिएपक्षकारों को निदेश दे सकता है जो जांच की विषयवस्तु के लिए आयोग की राय में उपयोगी और सुसंगत हों और जिन्हें वह वांछनीय और समीचीन समझे ।

40.इस संबंध में आयोग ने 4.12.2015 का एक नोटिस याची को तारीख 28.12.2015 तक अपना उत्तर प्रस्तुत करने के लिए भेजा था जो उसके द्वारा सम्यक रूप से हस्ताक्षरित हों और उसमें वे सभी सुसंगत दस्तावेज हों जिन्हें वह सम्यक रूप से दिए गए शपथपत्र द्वारा समर्थित रूप में अवलंब करना चाहता हो । निर्वाचन आयोग के इसऔपचारिक उत्तर में, याची ने अपना उत्तर तारीख 28.12.2015 को फाइल किया । शपथपत्र फाइल न करने के किसी प्रक्रियात्मक दोष सेयाची द्वारा फाइल की गई तथाकथित दूसरी याचिका पर विचार करने की आयोग की शक्तियों को परिसीमित नहीं किया जा सकता । आयोग द्वारा भेजे गए नोटिसों के उत्तर के माध्यम से पक्षकारों द्वारा फाइल किए गए ताइदी दस्तावेज, आयोग द्वारा अगले प्रक्रम पर जांच में विनिश्चित किए जाएंगे । इस विषय में आयोग याची द्वारा 28.12.2015 को प्रस्तुत दस्तावेजों की मूल प्रति प्रस्तुत न करने के लिए स्पष्टीकरण की ईप्सा कर सकता है और जिन्हें वह महत्वपूर्ण समझे ।

41. तथापि, आयोग को प्रत्यर्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेलों के इस निवेदन में भी पर्याप्त बल दिखाई देता है कि याची कुछ अतिरिक्त 'प्रश्नों' को अपने उत्तरों, प्रत्युत्तरों आदि में आयोग के समक्ष उठाकर जांच के क्षेत्राधिकार को विस्तारित नहीं कर सकता है । अतः आयोग को इसके द्वारा 4.12.2015 को दिए गए नोटिस के उत्तर में याची द्वारा प्रस्तुत की गई 28.12.2015 की याचिका पर यह सुनिश्चित करने के लिए विचार करना होगा कि इसमें प्रत्यर्थियों की निर्हरता के संबंध में कुछ और अतिरिक्त प्रश्न तो नहीं उठाए गए हैं । प्रत्यर्थियों के किसी भी विद्वान काउंसेल ने कोई विनिर्दिष्ट आक्षेप नहीं किया यहां तक कि तारीख 28.12.2015 की याची की याचिका के पैरा 1 और 2 पर भी आयोग द्वारा विचार किया जा सकता है । यह दोनो पैरा तारीख 19.6.2015 की याची की मूल याचिका में उठाए गए प्रश्नों की मात्र पुनरावृत्ति है ।आयोग की राय में पैरा 3, 5,

6, 7, 8, 9, 10 और 14 ('संसदीय सचिवों की स्थिति' शब्दों के साथ प्रारंभ होने वाले और 'एस.के.शर्मा द्वारा पृष्ठ 153-158' शब्दों के साथ अंत होने वाले पैरा 14 के पूर्वांतिम उपपैरा के सिवाय) की विषयवस्तु पर भी कोई उचित आक्षेप नहीं किया जा सकता क्योंकि यह सभी पैरा याची द्वारा तारीख 19.6.2015 की उसकी मूल याचिका में उठाए गए प्रश्न से संबंधित है अर्थात् संसदीय सचिवों के रूप में दिल्ली सरकार के अधीन लाभ का पद धारित करने के लिए प्रत्यर्थियों की निर्हरता का प्रश्न । तथापि, पैरा 4,11,12,13 और ऊपर उल्लिखित पैरा 14 का पूर्वांतिम उपपैरा की अंतर्वस्तु में कुछ अतिरिक्त अभिकथन किए गए हैं । तदनुसार, ये पैरा 4, 11, 12, 13 और ऊपर उल्लिखित पैरा 14 का पूर्वांतिम उपपैरा को याची की तारीख 28.12.2015 के उत्तर से हटाने का निर्देश दिया गया और परिणामस्वरूप उक्त पैराओं में किए गए कथनों/सम्प्रेक्षणों के समर्थन में क्रम संख्या 7, 8, 13, 15 और 15 पर उपरोक्त उत्तर के साथ उपबंधित दस्तावेजों के संबंधमें भी यह निदेश दिया गया कि उन्हें वर्तमान कार्यवाहियों के अभिलेख पर न लिया जाए ।

42. इस आदेश को पूर्ण करने से पूर्व प्रत्यर्थियों के इस अभिकथन का निर्देश करना भी सुसंगत होगा कि याची ने कतिपय दस्तावेजों को जो उसके द्वारा अभिलेख पर दिए गए हैं कूटरचित/गढ़ा है । उनके उपरोक्त अभिकथन के समर्थन में उन्होंने याची के शपथपत्र के प्रति भी निर्देश किया है जो उसके द्वारा अंतिम सुनवाई की तारीख 29.8.2016 को फाइल किया गया था जिसमें उसने कथन किया था "कि याचिका, प्रत्युत्तर और दस्तावेज जो उसके द्वारा उपरोक्त मामले में उस दिन तक फाइल किए गए हैं शपथकर्ता द्वारा प्रारूपित किया गया है" । इस तथ्य के अलावा कि किसी भी प्रत्यर्थी ने विनिर्दिष्ट रूप से किसी विनिर्दिष्ट दस्तावेज का जिसे याची द्वारा अभिकथित रूप से कूटरचित या गढ़ा गया हो, उल्लेख नहीं किया है, आयोग इस बात सेसहमत नहीं है कि मात्र 'प्रारूपित' शब्द के उपयोग से याची ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि आयोग के अभिलेख पर लाया गया कोई दस्तावेज कूटरचित या गढ़ा हुआ है । वास्तव में, याची ने स्वयं बाद में एक अतिरिक्त शपथपत्र फाइल करके इस अभिकथन से इनकार करते हुए अपने पूर्व के शपथपत्र की उपरोक्त लिपकीय गलती को सुधारा है ।

43. प्रत्यर्थियों द्वारा याची की तारीख 28.12.2015 की तथाकथित दूसरा याचिका की ग्राह्यिता के संबंध में उठाए गए प्रारंभिक प्रश्न को तदनुसार विनिश्चित किया जाता है ।

44. इस मामले की आगे सुनवाई राष्ट्रपति द्वारा तारीख 10.11.2015 को आयोग को निर्देशित मुख्य प्रश्न पर तारीख 23.9.2016(शुक्रवार) को 3.00 बजे अपराह्न आयोग के सचिवालय में होगी ।

ह. ह. ह.

(ओ. पी. रावत) (डा. नसीम जैदी) (ए.के.जोति)

निर्वाचन आयुक्त मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयुक्त

तारीख : 16 सितंबर, 2016

फा. सं. 113/5/2015/आरसीसी-जिल्द।V

उपाबंध 3

भारत निर्वाचन आयोग निर्वाचन सदन

2015 का संदर्भ वाद संख्या-5

[दिल्ली सरकार राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र अधिनियम, 1991 की धारा 15(4) के अधीन भारत के राष्ट्रपति से निर्दिष्ट]

निर्देश में : दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 की धारा 15(1)(क) के अधीन श्री प्रवीण कुमार और दिल्ली विधान सभा के बीस अन्य सदस्यों की अभिकथित निरर्हता के प्रश्न पर भारत के निर्वाचन आयोग की राय की ईप्सा से दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 की धारा 15(4) के अधीन भारत के राष्ट्रपति से प्राप्त निर्देश।

आदेश

यह निर्देश तारीख 10 नवंबर, 2015, भारत के राष्ट्रपति से प्राप्त दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 की धारा 15(4) के अंतर्गत भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा राय मांगी गई, जिसके अधीन यह सदस्य इस अधिनियम की धारा 15(1)(क) के अधीन निरर्हित घोषित किए गए।

2. उक्त निर्देश में, विधान सभा सदस्यों की निरर्हता के संबंध में प्रश्न उठा, यह 22 जून, 2015 को भी प्रशांत पटेल (इसमें इसके पश्चात् याची कहा गया है) के वाद् में राष्ट्रपति के समक्ष उठा, जिसके द्वारा याची ने दिल्ली विधान सभा के श्री प्रवीन कुमार और 20 अन्य सदस्यों को जीएनसीटीडी अधिनियम की धारा 15(1)(क) के अंतर्गत निरर्हित घोषित किया गया में दिल्ली सरकार, राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र में मंत्रियों के संसदीय सचिव के अंतर्गत पदधारण किए गए थे ।

3. प्रत्यर्थी दिल्ली सरकार में सचिव के रूप में पदधारण किए हुए थे। यह आदेश 13 मार्च, 2015 को दिल्ली सरकार द्वारा किया गया था। जब कार्यवाही आयोग के समक्ष चल रही थी तभी माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय में इस नियुक्ति को चुनौती दी गई।

4. माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने 8 सितंबर, 2016 को 2015 की सिविल रिट याचिका सं0 4714(राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा व राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की सरकार एवं अन्य) में इस नियुक्ति को अपास्त कर दिया क्योंकि इस नियुक्ति को उप राज्यपाल को सूचित किए बिना किया गया था । उच्च न्यायालय का निर्णय यहां पर सुविधा के लिए पुन:निर्दिष्ट किया जा रहा है—

"1. यह याचिका लोकहित वाद् के माध्यम से दिल्ली सरकार द्वारा 13 मार्च, 2015 को दिल्ली विधान सभा में नियुक्त सदस्यों (के विरुद्ध चुनौती दी गई) जो कि मंत्रियों के संसदीय सचिव के, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी की सरकार के विरुद्ध चुनौती दी गई।

2. चुनौती का आधार यह था कि इसमें नियुक्ति के पूर्व भारत के संविधान के अनुच्छेद 239कक में वांछित उप राज्यपाल की राय नहीं ली गई।

3. 2015 की रिट याचिका (संविधान) सं0 5888 और दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की सरकार व भारत संघ और अन्य जो कि 4 अगस्त, 2016 को न्यायालय द्वारा दिया गया था इस प्रकार से है—

"संवैधानिक योजना के अनुसार यह आवश्यक है कि मंत्रिपरिषद् के निर्णय को उप राज्यपाल को संसूचित किया जाए, जैसा कि विधि बनाने की शक्ति को दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, संविधान के अनुच्छेद 239कक के खंड (3)(क) में प्रदत्त किया गया है और आदेश को तभी किया जा सकता है जहां पर उप राज्यपाल भिन्न विचार नहीं ले सकता है और केन्द्रीय सरकार को किसी भी निर्देश की आवश्यकता नहीं है जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 239कक के खंड (4) में सपठित अध्याय 5 दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र के व्यवसायिक संव्यवहार सरकार नियम, 1993 में विहित है।

4. याची की ओर से विशिष्ट दलील दी गई कि 13 मार्च, 2015 को दिए गए आक्षेपित आदेश को बिना उप राज्यपाल को संसूचित किए, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान काउंसेल को विवादित नहीं किया जा सकता है।

5. इस प्रकार से, हम पाते हैं कि याची की ओर से विद्वान काउंसेल बलपूर्वक प्रस्तुत करता है कि दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की सरकार व भारत संघ एवं अन्य में मुद्दे को अच्छी तरह से अपने क्षेत्र में लाता है बिना किसी अन्य विवाद को रिट याचिका में प्रस्तुत किए 13 मार्च, 2015 को आक्षेपित आदेश को अपास्त कर दिया गया।

रिट याचिका को तदनुसार अनुमति प्रदान करते हैं, कोई लागत नहीं।

मुख्य न्यायाधीश

न्या0 संगीता ढींगरा सहगल

8 सितंबर, 2016/वीएलडी"

5. प्रत्यर्थी ने वर्तमान संदर्भित वाद में प्रारंभिक आक्षेप किया जिसके बाद दिल्ली उच्च न्यायालय ने नियुक्ति के आदेश को 13 मार्च, 2015 के आदेश में अरर्हता के प्रश्न को नहीं उठाया ।

<u>पक्षकारों द्वारा किए गए निवेदन</u>

6. प्रत्यर्थी सं.1,16, 17, और 20 की ओर से विद्वान काउंसेल श्री मनीष वशिष्ठ और श्री समीर वशिष्ठ उपस्थित हुए और उनकी ओर से तर्क दिए गए कि संसदीय सचिव का पद उच्च न्यायालय की निर्णय के बाद अस्तित्व में नहीं रहा इसलिए आयोग को अनावश्यक रूप से वाद् को आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

7. इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं.1-6 और 8-21 ने दोहराया कि आयोग के समक्ष कार्यवाही संदर्भित वाद् को उच्च न्यायालय के निर्णय के पश्चात् निष्फल और निष्प्रभावी किया गया। प्रत्यर्थी ने कहा कि उच्च न्यायालय नियुक्ति को अपास्त कर इसे अवैध, असंवैधानिक और प्रारंभत: शून्य घोषित कर दिया जिसका अभिप्राय यह है कि अभिकथित निरर्हता के लिए एक मात्र आधार

विद्यमान नहीं है। प्रत्यर्थियों के अनुसार उच्च न्यायालय के आदेश का आवश्यक उपसिद्धांत यह है कि संसदीय सचिवों का "पद" कभी अस्तित्व में नहीं था और इस प्रकार किसी लाभ का और पारिणामिक निरर्हता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।

8. याची ने अपने प्रत्युत्तर में यह दलील दी हे कि उच्च न्यायालय के आदेश के पश्चात् संसदीय सचिवों के पद की अस्तित्वहीनता के बारे में प्रत्यर्थी का प्रतिवाद गलत है । याची द्वारा यह प्रतिवाद किया गया है कि दिल्ली उच्च न्यायालय ने केवल नियुक्ति आदेश को अपास्त किया है और इसे आरंभ से ही शून्य के रूप होना अभिनिर्धारित नहीं किया है याची ने यह कथन किया है कि उच्च न्यायालय के आदेश को गलत पढ़कर आयोग को भ्रम में डाल रहे हैं और न्याय की प्रक्रिया में विलंब पैदा कर रहे हैं ।

9. याची यह और निवेदन करता है कि तत्प्रतिकूल किसी अन्य अभिव्यक्ति के अभाव में उच्च न्यायालय का आदेश उसकी तारीख अर्थात् 8 दिसंबर, 2016 से प्रभावी होगा और प्रत्यर्थी उक्त आदेश का कोई अन्य निर्वचन करने के लिए स्वतंत्र नहीं है। इसलिए याची यह दलील देता है कि उच्च न्यायालय के आदेश का वर्तमान निदेश मामले से संबंधित आयोग के समक्ष कार्यवाहियों का कोई प्रभाव नहीं होगा क्योंकि प्रत्यर्थियों ने संसदीय सचिवों का पद 13 मार्च, 2015 से 8 सितंबर, 2016 तक ही धारण किया था।

10. याची ने विद्वान काउंसेल ने यह और दलील दी कि माननीय उच्च न्यायालय का तारीख 8 सितंबर, 2016 के आदेश का आयोग के समक्ष आरंभ की गई कार्यवाहियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है चूंकि प्रत्यर्थियों की ओर से काउंसेलओं द्वारा दी गई दलील के अनुसार उक्त आदेश में "आरंभ से ही शून्य" जैसा कोई शब्द नहीं है। इसलिए प्रत्यर्थियों के निवेदन माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की मूल वाक्य रचना के अनुरूप नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए। याची ने पंजाब राज्य बनाम गुरुदेव सिंह (1991) 4एससीसी 1 में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख किया है जो पंजाब राज्य के पुलिस पदाधिकारी की बर्खास्तगी से संबंधित है, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि—

"5 यदि कोई अधिनियम शून्य पर अधिकारातीत है, न्यायालय के लिए इसे ऐसा घोषित करना पर्याप्त है और स्वत: समाप्त हो जाएगा; इसे अपास्त किए जाने की आवश्यकता नहीं है, व्यथित पक्षकार मात्र घोषणा की मांग कर सकते हैं कि यह शून्य है और उस पर आबद्धकर नहीं है। कोई घोषणा मात्र कार्यों की विद्यमान स्थिति की घोषणा करती है और इसे अभिखंडित नहीं करती जिससे कार्यों की नई स्थिति उत्पन्न हो सके।

6. किन्तु फिर भी आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश में कम से कम वस्तुत: प्रर्वतन तब तक नहीं होता जब तक इसे सक्षम निकाय या न्यायालय द्वारा शून्य या अकृतता के रूप में घोषित न कर दिया जाए।" (बल दिया जाए)

याची के विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल ने यह प्रतिवाद् किया कि दिल्ली सरकार का नियुक्ति आदेश फिर भी विधिक परिणाम रखने के योग्य था क्योंकि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने इसे शून्य घोषित नहीं किया था किन्तु केवल इसे अपास्त किया था। फिर भी न्यायालय के उक्त नियुक्ति आदेश को अवैध घोषित किया है तो इसका केवल भविष्यलक्षी प्रभाव होगा इसलिए प्रत्यर्थी विधान सभा सदस्यों ने 13 मार्च, 2015 से 8 सितंबर,2016 तक संसदीय सचिव का पद धारण किया था और उन्होंने उसी क्षण निरर्हता उपगत कर दी ।

11. याची के विद्वान वरिष्ठ काउंसेल ने यह और कथन किया कि प्रत्यर्थी विधानसभा सदस्यों ने यदि एक मिनट के लिए भी पद को धारण किया होता तो उन्होंने निरर्हता उपगत की होती और चूंकि वर्तमान मामले में उन्होंने 13 मार्च, 2015 को उनकी नियुक्ति की तारीख से 8 सितंबर, 2016 तक जब माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा उनके नियुक्ति आदेश को रद्द कर दिया था, परिलब्धियों को प्राप्त किया है, जिसके कारण वे निरर्हित होंगे । उन्होंने यह कथन करते हुए अपनी बहस को समाप्त किया कि इस तथ्य के संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय का आदेश प्रतिवादित नियुक्ति आदेश को रद्द करने के लिए था और जब तक लाभ का पद विद्यमान है, तब तक ऐसे पद का धारक निरर्हित होगा । अत:, उक्त आदेश को उसके पश्चात् रद्द किए जाने से यह निर्देश निरर्थक नहीं हो जाएगा ।

12. श्री अमिताभ चतुर्वेदी, प्रत्यर्थी सं0 8 के विद्वान काऊंसेल ने यह दलील दी कि किसी भी पक्षकार की ओर से इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि तारीख 13 मार्च, 2015 के नियुक्ति आदेश को माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी । तथापि, माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष केवल यह मुद्दा था कि क्या आदेश, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1991 और कारबार संव्यवहार नियम, 1993 के उपबंधों के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 239कक के अधीन प्रदत्त दिल्ली सरकार द्वारा अधिकारिता के प्रयोग में किसी त्रुटि से दूषित है । 2015 की रिट याचिका (सिविल) सं0 5888, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार बनाम भारत संघ और अन्य के मामले के अनुसार, इस मुद्दे पर तारीख 4 अगस्त, 2016 के मूल निर्णय में इस बात का कथन किया गया था कि दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार क्या कर सकती थी । उक्त निर्णय के अनुसार दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र विधान सभा के पास कुछ अपवादों के साथ संपूर्ण दिल्ली राष्ट्रीय

राजधानी राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की शक्ति है । अनुच्छेद 239कक के खंड (4) के अनुसार, मंत्री परिषद् को कतिपय कार्यपालक शक्तियां प्रदान की गई हैं और इस प्रकार प्रदान की गई कार्यपालक शक्तियां खंड (3) के अधीन विधायी शक्तियों को विस्तृत करती है । अत:, माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष मात्र यह प्रश्न था कि इस बात की परीक्षा की जाए कि क्या तारीख 13 मार्च, 2015 का नियुक्ति आदेश संविधान के अनुच्छेद 239कक के खंड (3) और खंड (4) के अनुपालन में है अथवा नहीं । यह और दलील दी गई थी कि न्यायालय सीधे-सीधे 'शून्य' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकता थी ; तथापि उक्त आदेश को असंवैधानिक/अधिकार से परे के रूप में घोषित करने का अर्थ उसे शून्य करना ही है । प्राधिकारी के पास कार्यपालक और विधायी शक्तियों, दोनों के साथ-साथ होने के संबंध में विनिश्चय, उक्त आदेशों को पारित करते समय उक्त प्राधिकारी की सक्षमता के बारे में विचार करते हुए किया जाएगा । अत:, यदि उसे बिना किसी प्राधिकार के पारित किया गया है तो वह अधिकार से परे होगा, जो उसे शून्य ठहराएगा । अत:, याची का यह तर्क कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के उक्त आदेश का केवल भविष्यलक्षी प्रभाव होगा, सही नहीं है । यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में दिल्ली सरकार द्वारा पारित एक नियुक्ति आदेश, जो कि एक कार्यपालक कार्रवाई है, एक ऐसा आदेश था, जिसके संबंध में उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि उसे बिना किसी कार्यपालक सक्षमता के जारी किया गया था और इसलिए वह असंवैधानिक है । यह और दलील दी गई थी कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश के कारण, दिल्ली सरकार का तारीख 13 मार्च, 2015 का प्रतिवादित आदेश कभी विद्यमान ही नहीं था, जिससे इस तथ्य के संबंध में निष्कर्ष सामने आता है कि किसी पद का सृजन नहीं किया गया था । अत:, माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई रिट याचिका में याचियों की प्रार्थना और दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश को एक साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय का तारीख 13 मार्च, 2015 का प्रतिवादित आदेश आरंभ से ही शून्य है ।

13. तारीख 22 नवंबर, 2016 को आयोग के समक्ष सुनवाई के दौरान प्रत्यर्थी सं0 1, 17 और 20 के लिए विद्वान काऊंसेल श्री वशिष्ठ ने आगे यह और तर्क दिया था कि दिल्ली सरकार के नियुक्ति आदेश को, माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा, उसे अनुच्छेद 239कक के अनुसार न होने के कारण आरंभ से ही शून्य के रूप में घोषित किया गया है । विद्वान काऊंसेल ने यह दलील दी थी कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश के कारण, तारीख 13 मार्च, 2015 का प्रतिवादित आदेश को "अपास्त" कर दिया गया था । "अपास्त" शब्द का शब्दकोष में दिया गया अर्थ उसे अभिशून्य करना, रद्द करना या शून्य घोषित करना है । माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश ने दिल्ली सरकार द्वारा अनुच्छेद 239कक के अधीन जारी आदेश को रद्द कर दिया था और चूंकि नियुक्ति आदेश को अपास्त कर दिया गया था अर्थात् विधिक रूप से अभिशून्य घोषित कर दिया गया था, इसलिए इसके परिणामस्वरूप आयोग द्वारा विनिश्चय किए जाने के लिए कुछ बाकी नहीं रह गया है । विद्वान काऊंसेल ने बिलेश्वर खान उद्योग खैद्युत सहकारी मंडली लिमिटेड आदि बनाम भारत संघ (1991) 2 एस.सी.सी. 518 को निर्दिष्ट किया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया था कि अपास्त के सामान्य अर्थ को "आदेश विद्यमान नहीं है या उसे रद्द कर दिया गया है" के रूप में उपबंधित किया गया है । शेष मणि शुक्ला बनाम डी.आई.ओ.एस. देवरिया और अन्य 2009 (15) एस.सी.सी. 436 वाले एक अन्य मामले में यह संप्रेक्षण किया गया था कि असंवैधानिक आदेश शून्य है ।

14. प्रत्यर्थी सं0 9 और 13 के विद्वान काऊंसेल श्री शुभांशु पाधी ने भी यह तर्क दिया था कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश में प्रयुक्त "अपास्त" शब्द का अर्थ यह है कि उसे कानून के अधीन किसी आज्ञापक उपबंध, जो इस मामले में भारत के संविधान का अनुच्छेद 239कक है, का अनुपालन न करते हुए जारी किया गया है, और इसलिए यह उसे अभिशून्य और शून्य बनाता है । उन्होंने यह और तर्क दिया कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 102, जो यह कथन करता है कि "यदि वह लाभ का पद धारण करता है", निरर्हता आकर्षित करने के लिए किसी पद को धारित करना अनिवार्य बनाता है । तथापि, जब संसदीय सचिवों के पदों को स्वयं माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया था, इसलिए निर्णय को अनुच्छेद 102 के समरूप पढ़ने पर स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी कभी भी पद के धारक नहीं थे । इस प्रकार, विधि भूतलक्षी रूप से प्रवर्तित होगी और वह पिछली तारीख अर्थात् नियुक्ति की तारीख 13 मार्च, 2015 से लागू होगी । अत:, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चूंकि स्वयं नियुक्ति की विधिपूर्वक नहीं की गई थी, इसलिए लाभ के पद का प्रश्न ही किसी प्रकार से नहीं उठता है । विद्वान काऊंसेल ने शिबु सोरेन बनाम दयानंद सहाय और अन्य, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 2583 वाले मामले को निर्दिष्ट किया था, जो यह स्पष्ट करता है कि 'लाभ का पद' क्या है, अर्थात् "व्यक्ति को सरकार के अधीन पद धारण करना चाहिए और वह पद लाभ का पद होना चाहिए और उस पद को छूट प्राप्त नहीं होनी चाहिए" । विद्वान काऊंसेल द्वारा जिस एक और मामले को निर्दिष्ट किया गया था, वह श्रीमती कांता कथुरिया बनाम मानक चंद सुराना (1969) 3 एस.सी.सी. 268 वाला मामला था । यह दलील दी गई थी कि माननीय उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय के अनुसार यह अभिनिर्धारित किया गया था कि कोई पद उसके धारक से स्वतंत्र होना चाहिए । तथापि, विद्वान काऊंसेल द्वारा रखे गए तर्क के अनुसार, वर्तमान निर्देश में चूंकि स्वयं पद को रद्द कर दिया गया है, इसलिए विधि भूतलक्षी प्रकृति की होगी और वह नियुक्ति को प्रारंभ से ही शून्य बनाएगी । माननीय उच्चतम न्यायालय ने पी.वी. जार्ज और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य (2007) 3 एस.सी.सी. 597 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि "यदि विनिर्दिष्ट रूप से अन्यथा कथन नहीं किया जाता है तो न्यायालय

द्वारा घोषित विधि का भूतलक्षी प्रभाव होगा" । अत:, नियुक्ति आदेश को माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा एक बार रद्द कर दिए जाने के पश्चात् वह आदेश पिछली तारीख, अर्थात् नियुक्ति की तारीख से लागू होगा और चूंकि कोई भी कोई पद धारण नहीं कर रहा है, इसलिए कार्यवाहियों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए ।

15. प्रत्यर्थी सं0 15 और 18 के विद्वान काऊंसेल श्री जीवेश नागरथ द्वारा यह दलील दी गई थी कि यदि माननीय उच्च न्यायालय के आदेश के प्रभाव को नास्ति अभिवाक् के रूप में माना जाता है और यदि नियुक्ति को विधिमान्य समझा जाता है, तब माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय का निर्णय स्वयं निरर्थक हो जाता है । तथापि, वर्तमान मामले में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय के बावजूद भी याची यह चाहता है कि आयोग यह स्वीकार करे कि नियुक्ति रद्द किए जाने से पूर्व विधिमान्य थी । चूंकि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश में दिल्ली सरकार के नियुक्ति आदेश को, उसके अनुच्छेद 239कक के अनुसरण में न होने के कारण, स्पष्ट रूप से असंवैधानिक ठहराया गया है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि आदेश 8 सितंबर, 2016 तक विधिमान्य था । इस तर्क का अर्थ यह है कि असंवैधानिक कार्रवाई उसे असंवैधानिक घोषित किए जाने तक विधिमान्य थी ।

16. प्रत्यर्थी सं0 7 की विद्वान काऊंसेल सुश्री तृषा नागपाल ने यह दलील दी थी कि वर्तमान कार्यवाहियों को, माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश को ध्यान में रखते हुए समाप्त कर दिया जाना चाहिए । प्रत्यर्थी सं0 6, 17 और 21 के विद्वान काऊंसेल श्री रिक्की गुप्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि किसी आदेश को, जब उसे रद्द कर दिया जाए तो कुछ अवधि के लिए विधिमान्य नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि वह प्रारंभ से ही शून्य है । कोई असंवैधानिक आदेश शून्य होता है क्योंकि वह संवैधानिक प्राधिकार की अनदेखी करता है इसलिए वह प्रभावहीन है । माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश में "अपास्त" शब्द के प्रयोग का अर्थ यह है कि आदेश को उसके किए जाने के समय से ही अभिशून्य और शून्य के रूप में रद्द कर दिया गया है । अत:, चूंकि नियुक्ति आदेश स्वयं विधिमान्य नहीं था, इसलिए कोई पद विद्यमान नहीं था और इसलिए कोई पश्चात्वर्ती जांच आवश्यक नहीं है । प्रत्यर्थी सं0 4, 8 और 11 की विद्वान काऊंसेल सुश्री रीवा चुघ और प्रत्यर्थी सं0 19 के विद्वान काऊंसेल ने अन्य विद्वान काऊंसेलों के अभिकथनों को अपनाया था ।

17. आयोग के समक्ष तारीख 16 दिसंतबर, 2016 की सुनवाई के दौरान प्रत्यर्थी सं0 2, 5 और 14 के विद्वान काऊंसेल श्री कमल मेहता ने यह दलील दी कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश का इस मामले की कार्यवाहियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव है । उन्होंने यह और कथन किया कि उच्च न्यायालय के आदेश में प्रयुक्त "अपास्त" शब्द पर वाद-विवाद पृथक् न्यायशास्त्र से संबंधित है क्योंकि विधि में नामकरण कभी भी महत्वपूर्ण नहीं होता ; इसके बजाय केवल उससे उत्पन्न होने वाला सार ही महत्वपूर्ण होता है । माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में वर्तमान निर्देश के सार को "अपास्त" शब्द का प्रयोग करके रद्द कर दिया था और इसलिए यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि उसका अर्थ 'शून्य' है, क्योंकि यह सुस्थापित सिद्धांत है कि संविधान का उल्लंघन आरंभ से ही शून्य है । विद्वान काऊंसेल ने यह और दलील दी कि संसदीय सचिवों की नियुक्ति एक प्रकार की संविदा है । चूंकि अधिकारों और कर्तव्यों का रूप, नियोजक और कर्मचारी के बीच सेवा संविदा से स्पष्ट होता है, इसलिए, प्रतिवादित नियुक्ति विधि के एक भूलपूर्वक विश्वास के अधीन की गई थी, जो शून्यकरणीय न होकर आरंभ से ही शून्य है । इस प्रकार, जिस तरह आयोग की अधिकारिता 'पद' और 'लाभ के पद' से परे नहीं जा सकती । इसलिए, माननीय उच्च न्यायालय के आदेश द्वारा सृजित यह अवसीमा कि पद विद्यमान नहीं है, अपरिहार्य प्रकृति की अनियमितता है । अत:, याची केवल तभी सफल हो सकता है जब वह यह साबित कर सकता है कि नियुक्ति संविधान के प्रतिकूल नहीं थी ।

18. प्रत्यर्थी सं0 10 और 12 के विद्वान काऊंसेल श्री रजत नवेत ने भी प्रत्यर्थियों के अन्य विद्वान काऊंसेलों द्वारा दिए गए उन तर्कों को अपनाया था, जिनमें संसदीय सचिवों की नियुक्ति को प्रारंभ से ही शून्य बताया गया था । प्रत्यर्थी सं0 19 के विद्वान काऊंसेल श्री राजीव शर्मा ने भी यह कथन किया था कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश स्वयं में ही स्पष्टीकारक है और उसके पश्चात् संसदीय सचिवों के पद की विद्यमानता प्रारंभ से ही समाप्त हो गई थी ।

19. याची के विद्वान काऊंसेल श्री मीत महलोत्रा ने यह दलील दी थी कि प्रत्यर्थी एक पूर्णत: भिन्न अवधारणा को प्रस्तुत कर रहे हैं । याची किसी भी प्रकार के माननीय उच्च न्यायालय के संसदीय सचिवों की नियुक्ति को अपास्त करने वाले निर्णय से इंकार नहीं करता है । तथापि, माननीय उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में कहीं भी 'प्रारंभ से ही शून्य' शब्दों का प्रयोग नहीं किया है । याची ने यह और दलील दी कि प्रत्यर्थी आरंभ से ही शून्य के मुद्दे को इस प्रकार प्रस्तुत कर रहे हैं, जैसे कि नियुक्ति और उसके पारिणामिक तथ्य कभी विद्यमान रहे ही नहीं थे । याची ने माननीय उच्चतम न्यायालय के, गोकाराजू रंगाराजू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 1981 एस.सी.आर. (3) 474 वाले मामले में निर्णय का हवाला दिया था, जिसमें इस प्रभाव का प्रश्न उठा था कि उच्चतम न्यायालय द्वारा इस घोषणा का कि किसी अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश की नियुक्ति अवैध थी, ऐसी घोषणा से पूर्व उस न्यायाधीश द्वारा उद्घोषित निर्णयों पर क्या प्रभाव पड़ेगा । विद्वान काऊंसेल द्वारा हवाला दिए गए पैराओं को सुगम संदर्भ के लिए नीचे प्रस्तुत किया गया है :

"4. हम अपीलार्थियों के विद्वान काऊंसेल के अभिकथनों से सहमत होने में असमर्थ हैं । यह सिद्धांत अब सुस्थापित है कि "अधिकारियों की, उनके द्वारा प्राप्त किए गए शासकीय प्राधिकार के विस्तार क्षेत्र के भीतर, लोक हित में या किसी तृतीय व्यक्ति के हित में और न कि उनके स्वयं के फायदे के लिए, उनके द्वारा वस्तुत: की गई कार्रवाइयां साधारण रूप से विधिमान्य और इस प्रकार आबद्धकर होगी मानो वे विधित: अधिकारियों द्वारा की गई कार्रवाइयां हों" (पुलिन बेहैरी बनाम किंग एम्परर) । चूंकि हमारे में से किसी एक के पास पूर्व में यह उल्लेख करने का अवसर था कि "यह सिद्धांत उत्तम भावना, उत्तम नीति और व्यवहारिक अनुभव पर आधारित है । इसका उद्देश्य सार्वजनिक और निजी अनिष्ठ का निवारण करना और सार्वजनिक या निजी हित का संरक्षण करना है । यह अंतहीन असमंजस और अनावश्यक अव्यवस्था से बचाव करता है । किसी अवैध नियुक्ति को अपास्त किया जा सकता है और कोई उचित नियुक्ति की जा सकती है, किंतु उन व्यक्तियों के, जिन्होंने वस्तुत: पदधारण किया है, कार्यों को सुगमता से पलटा नहीं जा सकता, क्योंकि जब उनके पलटने का प्रयास किया जाएगा तो उनके दूरगामी दुष्परिणाम तथा भ्रांतिपूर्ण परिणाम होंगे । अत: वस्तुत: सिद्धांत लाया गया है ।" (इम्मेदिसेट्टी रामकृष्णैया संस बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 1976 ए.पी. 193 द्वारा)

8. ...उसके पश्चात् लार्ड डेनिंग ने कनेक्टीकट सुप्रीम कोर्ट द्वारा स्टेट ऑफ कनेक्टीकट बनाम कैरॉल में दिए गए निर्णय, न्यूजीलैंड में कोर्ट ऑफ अपील द्वारा एलड्रिज वाले मामले में दिए गए निर्णय और यूनाइटेड स्टेट्स सुप्रीम कोर्ट द्वारा नोरटोन बनाम शैल्बी काउंटी के मामले में दिए गए निर्णय का हवाला दिया था । अंतिम मामले में किए गए संप्रेक्षणों को उद्धधृत किया था और वे निम्नानुसार थे :

जहां कोई पद विधि के अधीन विद्यमान है, इस बात का कोई महत्व नहीं है कि पदधारी की नियुक्ति किस प्रकार की गई है, जहां तक उसके द्वारा किए गए कार्यों का संबंध है । इस संबंध में उसके द्वारा पद को धारण किया जाना ही और उसकी शक्तियों और कृत्यों का पालन किया जाना ही पर्याप्त है ..... । ऐसे व्यक्तियों की शासकीय कार्रवाइयों को लोक नीति के आधारों पर और उन व्यक्तियों के संरक्षण के लिए, जिनके पास संव्यवहार करने के लिए शासकीय कारबार है, विधिमान्य के रूप में मान्यता प्रदान की जाती है ।

17. अत: कोई वस्तुत: न्यायाधीश वह है, जो केवल कोई घुसपैठिया या अनधिकार ग्राही नहीं है, अपितु ऐसा व्यक्ति है, जो विधिपूर्ण प्राधिकार के अधीन पदधारण करता है, यद्यपि उसकी नियुक्ति त्रुटिपूर्ण है और उसे तत्पश्चात् त्रुटिपूर्ण पाया जाता है, पद पर उसके हक में कोई भी त्रुटि हो, उसके द्वारा उद्घोषित निर्णयों और उसके द्वारा की गई कार्रवाइयों, जब वह पद से संबंधित शक्तियों और कृत्यों से लैस था, चाहे वे अविधिपूर्ण ही क्यों न हों, वहीं प्रभाव होगा, जो किसी विधित: न्यायाधीश द्वारा उद्घोषित निर्णयों और की गई कार्रवाइयों का होता है ।"

याची ने होती लाल बनाम राज बहादुर ए.आई.आर. 1959 राजस्थान 227 वाले मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का आगे और हवाला दिया था, जिसमें किसी विधान सभा सदस्य की निरर्हता का प्रश्न, उसके द्वारा ओथ कमिश्नर का पद धारण करने के कारण उत्पन्न हुआ था । इस मामले में, अवैध और अनुचित नियुक्ति के अभिवाक् का सहारा लिया गया था । विद्वान काऊंसेल द्वारा हवाला दिए गए सुसंगत पैरा को सुगम संदर्भ के लिए नीचे प्रस्तुत किया गया है :

"16. किंतु यदि ऐसा हो तो भी और श्री मुकट की नियुक्ति इस संबंध में अनियमित थी, तब भी यह उसे अनुच्छेद 102 के अधीन निरर्हता से नहीं बचा पाएगी । जैसे हम उस अनुच्छेद को पढ़ते हैं, यह ऐसे किसी व्यक्ति की निरर्हता के लिए उपबंध करता है, जो कोई लाभ का पद धारण करता है ।

निरर्हता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि कोई व्यक्ति भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद धारण कर रहा है, चाहे उसकी नियुक्ति के आदेश में कोई विधिक या अन्यथा त्रुटि हो । अनुच्छेद 102 में निहित आशय व्यक्ति भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन लाभ के पद को वस्तुत: धारण करने वाले सभी व्यक्तियों को वर्जित करना है । यदि ऐसा नहीं है तो ऐसा कोई व्यक्ति, जो सरकार के अधीन वास्तविक रूप से कोई लाभ का पद धारण कर रहा है, उसकी नियुक्ति के आदेश में कोई विधिक या अन्यथा त्रुटि होने के कारण निरर्हित नहीं होगा ।"

20. याची ने पूर्व उल्लिखित निर्णय पर निर्भर करते हुए यह दलील दी कि यदि प्रत्यर्थियों के तर्क सही समझे जाते हैं और यदि नियुक्ति प्रारंभ से ही शून्य है तो तथ्य और विधि सब समाप्त हो जाते हैं । किन्तु यह तथ्य कि प्रत्यर्थी 13 मार्च, 2015 को नियुक्ति की तारीख से 8 सितंबर, 2016 तक अपने पद पर थे, परिवर्तित या नजरअंदाज नहीं किया जा सकता और पद धारण करने की वैधता का प्रश्न किसी भी रीति में नहीं उठता । इसलिए नियुक्ति में अवैधता का तथ्य, की गई नियुक्त के तथ्य को समाप्त नहीं कर सकता और इसलिए अतात्विक है ।

21. प्रत्यर्थी सं0 8 की ओर से विद्वान काउंसेल श्री अमिताभ चतुर्वेदी ने प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए तर्कों के प्रत्युत्तर में यह कहते हुए खंडन किया है कि गोकरराजू रंगराजू बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य (ऊपर) के मामले में उच्चतम न्यायालय की मताभिव्यक्ति

केवल 'विधिमान्य रूप से सृजित पद" के संबंध में है। प्रत्यर्थी ने यह कहते हुए अपनी बहस जारी रखी कि चूंकि संसदीय सचिव का पद विधिमान्य रूप से सृजित नहीं था, इसलिए यह निर्णय इस संदर्भ में बिल्कुल लागू नहीं होता।

22. 27 मार्च, 2017 को की गई सुनवाई में प्रत्यर्थी सं0 1, 17 और 20 की ओर से विद्वान काउंसेल श्री मनीष वशिष्ठ ने यह दलील दीकि चूंकि माननीय उच्च न्यायालय के आदेश के पश्चात् यह स्पष्ट है कि कोई 'पद" विद्यमान नहीं है, इसलिए उस पद से कोई लाभ प्राप्त करने का प्रश्न नहीं उठता। विद्वान काउंसेल ने यह और दलील दी कि गोकरराजू रंगराजू बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य का निर्णय इस मामले में किसी भी प्रकार लागू नहीं होगा। उक्त निर्णय में लागू होने वाला आवश्यकता का, तथ्यत: का और लोक नीति का सिद्धांत केवल तब उत्पन्न होता है, जब न्यायिक/अर्द्ध न्यायिक निर्णय दांव पर लगा हो। तथापि, चूंकि यह मामला पूर्णत: लाभ के पद से संबंधित है और न्यायिक और अर्द्धन्यायिक कार्रवाइयों से संबंधित नहीं है और चूंकि इस संदर्भ में विधायकों द्वारा धारित पद लोकहित में धारण नहीं किया गया था, इसलिए यह निर्णय इस मामले के तथ्यों पर कैसे भी लागू नहीं होता है, जैसी कि याची द्वारा दलील दी गई है। इस प्रकार जब न्यायनिर्णायक प्राधिकारी ने एक बार व्यक्ति की नियुक्ति को प्रारंभ से शून्य घोषित कर दिया है, तो आयोग, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा जो घोषणा की गई है, उसके प्रतिकूल किसी बात पर संभवत: राय नहीं दे सकता।

विद्वान काउंसेल ने आयोग से प्रत्यर्थी सं0 6 श्री जरनैल सिंह, राजौरी गार्डेन के विरुद्ध कार्यवाहियां समाप्त करने का निवेदन किया है, क्योंकि उसने विधायक के पद से त्यागपत्र दे दिया है।

23. प्रत्यर्थी सं0 2, 5 और 14 की ओर से विद्वान काउंसेल श्री कमल मेहता ने यह कहा कि चूंकि संसदीय सचिवों के पद पर नियुक्ति में संवैधानिक त्रुटि अंतर्वलित है जिसे ठीक नहीं किया जा सकता, इसलिए यह, नियुक्ति को प्रारंभ से शून्य करार देने के लिए अधिकारातीत होगा। इसलिए इस तर्क का, कि क्या यह शून्य है, शून्य करणीय है या प्रारंभ से ही शून्य नहीं है, कोई महत्व नहीं है।

24. इस प्रकार उक्त मुद्दे पर दोनों पक्षों की ओर से बहस समाप्त कर दी गई है।

<u>भारत निर्वाचन आयोग के अनुरोधों और निष्कर्षों का विश्लेषण</u>

25. इस मामले में अंतर्वलित प्रारंभिक मुद्दा यह है कि जीएनसीटीडी अधिनियम की धारा 15(4) के अधीन प्रत्यर्थियों की अभिकथित निरर्हता से संबंधित प्रश्न, राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र की सरकार और अन्य डब्ल्यूपी(सी) 4714/2015 में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिल्ली सरकार के तारीख 13 मार्च, 2015 के आदेश को अपास्त करने के पश्चात्, चलाए जाने योग्य है, जिसमें प्रत्यर्थियों की राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली की सरकार के मंत्रालयों में संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्ति की थी।

26. इस मामले में अंतर्वलित तथ्यों और विधि की उपयुक्त समीक्षा के लिए राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली की सरकार द्वारा तारीख 13 मार्च, 2015 को जारी आदेश का संदर्भ देना उचित होगा। सदंर्भ की सुविधा के लिए उक्त आदेश नीचे दोहराया गया है।

"राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली सरकार

साधारण प्रशासन विभाग

दूसरा तल, ए विंग, दिल्ली सचिवालय

आई.पी.एस्टेट, नई दिल्ली- 110002

फा0सं017/57/2012/जीएडी/संसदीय सचिव/356 तारीख 13.3.2015

आदेश

दिल्ली के मुख्यमंत्री, दिल्ली विधान सभा के निम्नलिखित सदस्यों को, तुरंत प्रभाव से राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार के, उनके नाम के सामने यथा उपदर्शित मंत्रालयों के संसदीय सचिव के रूप में नियुक्त करते हैं :--

क्रम सं0	**विधायक का नाम**	**निम्न का संसदीय सचिव**
01	श्री प्रवीन कुमार	शिक्षा मंत्री
02	श्री शरद कुमार	राजस्व मंत्री

03	श्री आदर्श शास्त्री	सूचना और प्रौद्योगिकी मंत्री
04	श्री मदन लाल	सतर्कता मंत्री
05	श्री शिव चरन गोयल	वित्त मंत्री
06	श्री संजीव झा	परिवहन मंत्री
07	सुश्री सरिता सिंह	रोजगार मंत्री
08	श्री नरेश यादव	श्रम मंत्री
09	श्री जरनैल सिंह (तिलक नगर)	विकास मंत्री
10	श्री राजेश गुप्ता	स्वास्थ्य मंत्री
11	श्री राजेश ऋषि	स्वास्थ्य मंत्री
12	श्री अनिल कुमार बाजपेयी	स्वास्थ्य मंत्री
13	श्री सोम दत्त	उद्योग मंत्री
14	श्री अवतार सिंह कल्का	गुरुद्वारा निर्वाचन मंत्री
15	श्री विजेन्दर गर्ग विजय	लोक निर्माण विभाग मंत्री
16	श्री जरनैल सिंह (राजौरी गार्डन)	विद्युत मंत्री
17	श्री कैलाश गहलोत	विधि मंत्री
18	सुश्री अल्का लाम्बा	पर्यटन मंत्री
19	श्री मनोज कुमार	खाद्य और नागरिक आपूर्ति मंत्री
20	श्री नितिन त्यागी	महिला और बाल विकास तथा समाज कल्याण मंत्री
21	श्री सुखवीर सिंह	भाषा और उच्चतम न्यायालय/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग कल्याण मंत्री

संसदीय सचिव, सरकार से किसी प्रकार के किसी पारिश्रमिक या किसी पर्क का पात्र नहीं होगा । तथापि, वे केवल शासकीय प्रयोजनों के लिए सरकारी परिवहन का उपयोग कर सकेंगे तथा मंत्रियों के कार्यालय में उन्हें अपने कार्य को सुकर बनाने के लिए कार्यालय की जगह दी जाएगी ।

यह दिल्ली विधान सभा के माननीय अध्यक्ष की सहमति से जारी किया गया है ।

(अनिन्दो मजूमदार)

प्रधान सचिव (जीएडी)

1. सभी मंत्रालय

2. संबंधित विधायक

27. दिल्ली सरकार के पूर्वोक्त आदेश के परिशीलन मात्र से यह दर्शित होता है कि उक्त आदेश द्वारा प्रत्यर्थी, दिल्ली सरकार के मंत्रियों के संसदीय सचिव के रूप में नियुक्त किए गए थे । उस आदेश में कहीं भी इस बात का कोई भी उल्लेख नहीं है कि दिल्ली सरकार के इस आक्षेपित आदेश से संसदीय सचिवों के कोई पद सृजित किए गए थे । उक्त आदेश में केवल संसदीय सचिवों के रूप प्रत्यर्थियों की नियुक्ति के बारे में जिक्र है । इससे यह पूर्व कल्पना की जाती है कि संसदीय सचिवों के पद या तो पहले से ही विद्यमान थे या सरकार द्वारा अलग से सृजित किए गए थे, जिन पर सरकार द्वारा 13 मार्च, 2015 को ये नियुक्तियां की गई थीं । आयोग, माननीय उच्च न्यायालय के तारीख 8 सितंबर, 2016 के आदेश में ऐसी कोई बात नहीं पाता है कि न्यायालय ने न केवल संसदीय सचिवों के रूप में प्रत्यर्थियों की नियुक्ति को अपास्त किया है, बल्कि संसदीय सचिवों के

उन पदों के सृजित किए जाने को भी अपास्त कर दिया है। प्रत्यर्थियों की यह दलील कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 8 सितंबर, 2016 के आदेश के कारण संसदीय सचिवों के पद 13 मार्च, 2015 से प्रारंभ से शून्य के रूप में विद्यमान नहीं रहते और इसलिए यह तर्कसंगत नहीं है। माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 8 सितंबर, 2016 के उक्त आदेश द्वारा संसदीय सचिवों के रूप में प्रत्यर्थियों की नियुक्ति को केवल अपास्त किया है, सुस्पष्टतया और प्रचुरतया स्पष्ट है और इसमें कोई अन्य निर्वचन स्वीकार नहीं है। यदि प्रत्यर्थी अपनी इस दलील में सफल होते हैं कि माननीय उच्च न्यायालय ने संसदीय सचिवों के पदों के सृजन को भी अपास्त किया है, तो इस तथ्य को साबित करने का भार उन्हीं पर है, जिसका पालन करने में वे विफल रहे हैं। याची ने यह सही दलील दी है कि आयोग, माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश में कोई भी श◌ाब्द नहीं जोड़ सकता या उसमें फेरफार नहीं कर सकता, जो कि प्रत्यर्थियों द्वारा किया जाना चाहा गया है।

28. इसलिए एकमात्र निष्कर्ष, जो माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 8 सितंबर, 2016 के आदेश से विधिमान्य रूप से निकाला जा सकता है, वह यह है कि उच्च न्यायालय ने केवल सरकार के तारीख 13 मार्च, 2015 के आदेश द्वारा संसदीय सचिवों के रूप में प्रत्यर्थियों की नियुक्ति को और न कि संसदीय सचिवों के पद को अपास्त किया है।

29. यह मुद्दा की क्या प्रत्यर्थियों की कथित निर्रहता के प्रश्न को राष्ट्रपति के निदेश के लिए इस आधार पर कि वह संसदीय सचिवों के रूप में लाभ का पद धारण कर रहे थे, ऐसे पद पर प्रत्यर्थियों की नियुक्ति के आदेश को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा 8 सितंबर, 2016 को अपास्त किए जाने पर चलाए जाने योग्य है।

30. जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है दिल्ली उच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा मामले (ऊपर) में संसदीय सचिवों के रूप में प्रत्यर्थियों के नियुक्ति आदेश को इस आधार पर अपास्त कर दिया है कि वे अवैध रूप से संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्त किए गए थे, चूंकि विधि के अधीन नियुक्ति के लिए अपेक्षित प्रक्रिया का अनुपालन नहीं किया गया था। किसी व्यक्ति के किसी ऐसे विद्यमान पद या कार्यालय में अवैध या अनुचित नियुक्ति का प्रभावअनिर्णित विषय है। अनेक मामलों में अवैध नियुक्ति/आदेश की प्रास्थिति का विश्लेषण किया गया है।

31. राजस्थान उच्च न्यायालय ने होती लाल बनाम राज बहादूर एआईआर 1959 राज. 227 मामले में किसी अवैध नियुक्ति के परिणाम पर चर्चा की है। निर्णय के सुसंगत पैरा नीचे अनुसार है :--

"16. .... परंतु यदि ऐसा ही है और श्री मुक्त की नियुक्ति इस संबंध में अनियमित है, वह उसे अनुच्छेद 102 के अधीन निरर्हता से नहीं बचाएगा, जैसा हम उस अनुच्छेद का पठन करते हैं ये किसी व्यक्ति, जो लाभ का पद धारण करता है, की निरर्हता का उपबंध करता है।

निरर्हता भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारण करने के तथ्य से उदभूत होती है चाहे नियुक्ति करने के आदेश में कुछ त्रुटि हो, जो विधिक या अन्यथा हो। अनुच्छेद 102 के पीछे आशय भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन वस्तुत: लाभ का पद धारण करने वालो को वर्जित करना है। यदि ऐसा नहीं होता तो कोई व्यक्ति, जो सरकार के अधीन वास्तव में लाभ का पद धारण कर रहा है, निरर्हित नहीं होता यदि उसकी नियुक्ति के आदेश में कोई त्रुटि, विधिक या अन्यथा होती।

हमारी राय में अनुच्छेद 102 जिस बात पर बल देता है वह है वास्तव में लाभ का पद धारण करना तथा न कि किसी पद को धारण करने से संबंधित किसी नियुक्ति आदेश में कोई त्रुटि, हमारी राय में इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है। इसलिए, यह मानते हुए कि श्री मुक्त की नियुक्ति आदेश में कोई त्रुटि थी तो वह फिर भी हमारी राय में एक ऐसा व्यक्ति है, जिसने राजस्थान सरकार के अधीन लाभ का पद धारण किया है और इसलिए वह अनुच्छेद 102 के अधीन निरर्हित है।"

अत: राजस्थान उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कोई संसद् सदस्य संविधान के अनुच्छेद 102 के अधीन इस बात के होते हुए भी कि उक्त पद पर उसके नियुक्ति आदेश में कोई त्रुटि थी,वास्तव में लाभ का पद धारण करने के कारण निरर्हित हो जाएगा।

32. यहां पर यह इंगित किया जा सकता है कि संविधान के अनुच्छेद 102 का परिप्रेक्ष्य और भाषा वही है जो जीएनसीटीडी की धारा 15(4) में है, दोनों ही उपबंध एक ही विषय पर हैं। दिल्ली उच्च न्यायालय ने एक-दूसरे के अनुसार उपबंधों के कानूनी निर्वचन से रईस – उच्च – ज़ामा और अन्य बनाम दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र राज्य 206 (2014) डीएलटी 578 में यह अभिनिर्धारित करने के लिए व्यौहार किया है कि एक-दूसरे के अनुरूप उपबंधों का समान परिणाम होता है। इस निर्णय का सुसंगत पैरा नीचे दिया गया हैं :--

"115. .... यदि अधिनियम एक-दूसरे के अनुरूप है तो यह माना जाएगा कि भाषा और अर्थ की एकरुपता आशयित है, जिससे भाषायी निर्वचन के कारण एक ही परिणाम उत्पन्न होता है, जो पूर्ण रूप में किसी अधिनियम के निर्वचन से उत्पन्न होता है।"

चूंकि जीएनसीटीडी अधिनियम की धारा 5 संविधान के अनुच्छेद 102 के अनुरूप है, होती लाल मामला (ऊपर) का अनुपात यहां तक कि धारा 15(4) के अधीन आने वाले मामलों पर भी लागू होता है ।

33. इसी प्रकार आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने इम्मेदिसेटीरामाकृष्णा संस, अनाकपाली और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश और अन्य, एआईआर 1976 एपी 193 के मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि नियुक्ति की अवैधता के होते हुए भी वास्तव में पद धारण करने वालों के कार्य का परिणाम होता है। निर्णय का सुसंगत पैरा नीचे दिया गया है :

"6. जैसा कि इस समय हम इंगित करेंगे यह अब एक सुस्थापित सिद्धांत है कि अधिकारियों द्वारा वास्तव में निष्पादित किए गए कृत्य उनके द्वारा माने गए शासकीय प्राधिकार की परिधि के भीतर हैं, लोक हित या तृतीय व्यक्तियों के हित में और न कि उनके स्वयं के हित में वे साधारणतया उतने ही विधिमान्य और बाध्यकर हैं, जैसे वे विधिता अधिकारियों के कृत्य थे (पुलिन बेहारी बनाम किंग एम्परर (1912) 15 सीएएल एलजे 517 पृष्ठ 574) यह सिद्धांत एक अच्छी भावना, सुदृढ़ नीति और व्यावहारिक अनुभव पर आधारित है । इसका उद्देश्य लोक और प्राइवेट रिष्टि का निवारण करना है, यह अंतहीन भ्रम और व्यर्थ अव्यवस्था से बचाता है । किसी अवैध नियुक्ति को रद्द किया जा सकता है और एक उचित नियुक्ति की जा सकती है किंतु उनके कृत्य, जिन्होंने वास्तव में पद धारण किया था, को आराम से समाप्त नहीं किया जा सकता है और उनका चिरकालिक प्रभाव होता है और उनको दूर करने के प्रयास में भ्रम ही उत्पन्न होता है । इसलिए, वास्तव में का सिद्धांत है ।"

34. पूर्वोक्त वर्णित वास्तव में के सिद्धांत को निश्चायक रूप से माननीय उच्चतम न्यायालय ने गोकाराजू रंगाराजू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 1981 एससीआर (3) 474 में बनाए रखा था । उच्चतम न्यायालय ने इम्मेदिसेटी रामाकृष्णा मामले में निश्चय की पुनरावृत्ति की और अभिनिर्धारित किया कि :

"4. हम अपीलार्थियों के विद्वान काउंसिल की दलीलों से सहमत होने में असमर्थ हैं । सिद्धांत अब भली प्रकार स्थापित है कि 'अधिकारियों द्वारा उनके द्वारा धारण किए गए शासकीय प्राधिकार की परिधि के भीतर उनके द्वारा वास्तव में किए गए कृत्य लोक हित या तृतीय व्यक्तियों के हित में है और न कि उनके स्वयं के फायदे के लिए, ये साधारणतया विधिपूर्ण और बाध्यकर है, मानो वह अधिकारियों के विधिता कृत्य थे । (पुलिन बेहारी बनाम किंग एम्परर)मनू/डब्ल्यूबी/0395/1912 । जैसे कि हम में से एक के पास पूर्व में यह इंगित करने का अवसर था कि "यह सिद्धांत अच्छी भावना, सुदृढ़ नीति और व्यावहारिक अनुभव पर आधारित है । इसका लक्ष्य लोक और निजीरिष्टि और लोक और प्राइवेट हित का संरक्षण करना है । ये अंतहीन भ्रम और अनावश्यक अव्यवस्था से बचाता है । किसी अवैध नियुक्ति को अपास्त किया जा सकता है और एक उचित नियुक्ति की जा सकती है किंतु उन व्यक्तियों के कृत्य, जिन्होंने वास्तव में पद धारण किया है, को आसानी से समाप्त नहीं किया जा सकता है तथा उनके लंबे समय तक रहने वाले परिणाम और यदि उन्हें हटाने का प्रयास किया जाए तो भ्रम के पश्चात् भ्रम होता है इसलिए वास्तव में सिद्धांत है ।"

35. यहां माननीय उच्चतम न्यायालय का पंजाब राज्य बनाम गुरुदेव सिंह (1991) 4 एससीसी 1 में निर्णय को नोट करना भी सुसंगत है, जिसका याची के विद्वान काउंसिल ने अवलंब लिया था जैसा कि पूर्व पैरा 10 में निर्दिष्ट किया गया है, निर्देश की आसानी के लिए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का सुसंगत भाग, जो एक पुलिस अधिकारी को पदच्युत करने के मामले तथा उसके पदच्युति से पूर्व किए गए कार्यों के प्रभाव से संबंधित है, को नीचे पुन: दिया गया है :

"5. यदि कोई कार्य शून्य या अधिकारातीत है, न्यायालय के लिए उसे वैसा घोषित करना काफी है और वह स्वयं समाप्त हो जाता है, उसे अपास्त करने की आवश्यकता नहीं है, व्यथित पक्षकार साधारण रूप से इस बात की घोषणा की वांछा कर सकता है कि वह शून्य है और उस पर बाध्यकर नहीं है । एक घोषणा केवल विद्यमान मामलों को ही घोषित करती है और उन्हें मिटाती नहीं है, जिससे नए मामले उत्पन्न हों ।

6. <u>किंतु ऐसा होने पर भी आक्षेपित पदच्युति आदेश में कम से कम एक तथ्यत: अप्रवर्तनीय होगा जब तक कि किसी सक्षम निकाय या न्यायालय द्वारा उसे शून्य या अकृत घोषित न कर दिया जाए" (बल दिया गया है)</u>

36. इसके अतिरिक्त, उच्चतम न्यायालय ने न्यायमूर्ति एस.के. रे बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य (2003) 4 एससीसी 21 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि लोकपाल का पद समाप्त होने के पश्चात् उक्त अधिनियम में यथा उपबंधित उक्त पद से संबंधित निर्बंधन पदधारी को लागू होंगे । निर्णय का सुसंगत पैरा निम्नलिखित है :

"10. लोकपाल के पद के उत्सादन के प्रभाव को समझने के दो मार्ग हैं जिनके परिणामस्वरूप अपीलार्थी के पद की अवधि कम की गई थी । पहला यह है कि अपीलार्थी कम से कम कुछ समय के लिए पदधारण किए हुए था जो अधिनियम के उपबंधों के अधीन उद्भूत सभी निर्बंधनों के अधीन है और यह सम्मिलित करते हुए जो उसे लोकपाल होने की उसकी समाप्ति पर कोई पद धारण करने से उसे वर्जित करते हैं । दूसरा दृष्टिकोण यह हो सकता है कि पद के उत्सादन पर लोकपाल न रहने की अपीलार्थी पर पदधारण करने के संबंध में निर्बंधन उससे जुड़ा नहीं रहेगा । यदि बाद वाला मत लिया जाए तो बेतुका परिणाम निकलता

है क्योंकि लोकपाल का पदधारी कम से कम कुछ समय के लिए कार्य किया जिसने कई मामलों पर विचार किया होगा अत: उस पद की शुद्धता को बनाए रखने के लिए अधिनियम के अधीन अधिरोपित निर्बंधनों को कायम रखा जाना चाहिए । अत: इस आशय से केवल युक्तियुक्त माध्यम इस आशय के लिए उपबंध का निर्वचन करने से है कि जब ऐसा निर्बंधन परिवर्तनशील बना रहेगा तो पद के उत्सादन पर पदधारी को पद के वंचन के लिए नहीं बल्कि उसके पश्चात् जुड़े निर्बंधनों के लिए उसे युक्तियुक्त प्रतिपूर्ति की जानी चाहिए ।"

37. उत्कृष्ट उदाहरण जहां तथ्यत: सिद्धांत को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कायम किया गया और लागू किया गया, कुमारी जे. जयललीता का मामला है जिसके तमिलनाडु राज्य के मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्ति को सर्वोच्च न्यायालय ने 2001 में अविधिमान्य ठहरा दिया था । तमिलनाडु के मुख्यमंत्री के रूप में कुमारी जे. जयललीता की नियुक्ति के अविधिमान्यकरण पर एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठा कि उनके मुख्यमंत्रीत्व की अवधि के दौरान राज्य सरकार द्वारा लिए गए विनिश्चयों और अपनाई गई नीतियों आदि का क्या प्रभाव होगा । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ऐसे मुद्दे पर लिए गए विनिश्चय का प्रतिबिम्बन **बी. आर. कपूर** बनाम **तमिलनाडु राज्य और अन्य,** ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 3435 वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त मताभिव्यक्ति से होता है :

"57. हमें ज्ञात हैं कि यह निष्कर्ष कि िद्वतीय प्रत्यर्थी मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ग्रहण नहीं कर सकी और इस प्रकार कार्य नहीं कर सकती का गंभीर परिणाम होगा । इसका केवल यह अर्थ नहीं होगा कि राज्य के पास 14 मई, 2001 से विधिमान्य रूप से नियुक्त मुख्यमंत्री नहीं था जब द्वितीय प्रत्यर्थी ने शपथ ग्रहण किया किंतु यह भी कि उसके पास कोई विधिमान्य नियुक्त मंत्री परिषद् नहीं थी क्योंकि मंत्री परिषद् द्वितीय प्रत्यर्थी की सिफारिश पर नियुक्त की गई थी । इसका यह भी अर्थ होगा कि 14 मई, 2001 से तमिलनाडु सरकार के सभी कार्य प्रश्नयोग्य हो जाएंगे । इन परिणामों को समाप्त करने और राज्य और इसकी जनता के प्रशासन के हित में, जिन्होंने भी उन नियुक्तियों के आधार पर कार्य किया, के कार्य विधिक और विधिमान्य थे । हम तथ्यात्मक सिद्धांत का अवलंब लेने का प्रस्ताव करते हैं और यह घोषित करते हैं कि 14 मई, 2001 से आज तक द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा मुख्यमंत्री के रूप में, मंत्री परिषद् के सदस्यों द्वारा किए गए कार्य अन्यथा विधिसम्मत और विधिमान्य होंगे और राज्य सरकार पर मात्र इस कारण प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा जो आदेश हम पारित करने का प्रस्ताव करते हैं ।"

38. **होती लाल** के निर्णय के तथ्यात्मक सिद्धांत और **गोगाराजू, पंजाब राज्य** बनाम **गरुदेव सिंह**, (1991) 4 एस.सी.सी. 1, न्यायमूर्ति **एस. के. रे और वी. आर. कपूर** बनाम **तमिलनाडु राज्य और अन्य**, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 3435 (पूर्वोक्त) के सम्मिलित पढ़ने से यह दर्शित होता है कि हमारे विधिशास्त्र में पद के तथ्यात्मक धारण करने का सिद्धांत सुस्थापित सिद्धांत है ।

39. इस मामले में यह विवादित नहीं है कि प्रत्यर्थियों की नियुक्ति 13 मार्च, 2015 के आदेश द्वारा दिल्ली सरकार के मंत्रियों के संसदीय सचिवों के रूप में की गई थी । तब राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा (पूर्वोक्त) वाले मामले में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने तारीख 8 सितंबर, 2016 को आदेश अपास्त कर दिया था । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 13 मार्च, 2015 को उनकी नियुक्ति की तारीख से 8 सितंबर, 2016 को उनकी नियुक्ति आदेश को अपास्त करने की तारीख तक प्रत्यर्थी अवैध नियुक्ति आदेश के द्वारा संसदीय सचिव के पद के तथ्यात्मक धारक थे और इस प्रकार उनकी निरर्हता के प्रश्न पर आयोग द्वारा वर्तमान कार्यवाही संधार्य है और जारी रहेगी ।

40. इस प्रकार आयोग की यह विचारित राय है कि प्रत्यर्थी 13 मार्च, 2015 से 8 सितंबर, 2016 तक संसदीय सचिव के पद तथ्यत: धारित कर रहे थे और माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 8 सितंबर, 2016 के आदेश पर उनके द्वारा यथा निर्वचन दिया गया कि वे कोई पद धारित नहीं करते, वैधत: मान्य नहीं है । अत: मामले की गुणता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना उक्त पद धारित करने के लिए दिल्ली जी.एन.सी.टी अधिनियम, 1991 की धारा 15(4) के अधीन प्रत्यर्थियों की अभिकथित निरर्हता के प्रश्न से संबंधित निर्देश प्रत्यर्थी सं; 16 (श्री जरनैल सिंह राजौरी गार्डन के विधायक) जिन्होंने विधायक के रूप में अपना पद 17 जनवरी, 2017 को त्याग दिया था और दिल्ली विधान सभा में उस रिक्ति को भरने के लिए अप्रैल, 2017 में उप-चुनाव भी किए गए थे, के सिवाय उक्त सभी प्रत्यर्थियों की बाबत संधार्य है ।

41. आयोग इन कार्यवाहियों के सम्यक् अनुक्रम में सभी संबद्ध पक्षकारों को सुनवाई की अगली तारीख सूचित करेगा ।

(ए. के. ज्योति) (डा. नसीम जैदी)

निर्वाचन आयुक्त मुख्य निर्वाचन आयुक्त

स्थान : नई दिल्ली

तारीख : 23.06.2017

[फा. सं. एच. 11026/1/2018-वि. 2]

डा. रीटा वशिष्ट, अपर सचिव

MINISTRY OF LAW AND JUSTICE

(Legislative Department)

NOTIFICATION

New Delhi, the 20th January, 2018

S. O. 340 (E).—The following Order made by the President is published for general information:-

20th January, 2018

ORDER

Whereas a reference dated 10.11.2015 was made to the Election Commission of India under section 15 (4) of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991 (hereinafter referred to as "GNCTD Act") on the question whether Shri Praveen Kumar and 20 other Members of the Legislative Assembly of the National Capital Territory (hereinafter referred to as "NCT") of Delhi have become subject to disqualification, for being members of that Assembly, under section 15 (1) (a) of the GNCTD Act. The names of the MLAs and their posts are as under:-

S. No.	Name of the MLA	Parliamentary Secretary to
1.	Sh. Adarsh Shastri	Minister of Information Technology
2.	Ms. Alka Lamba	Minister of Tourism
3.	Sh. Anil Kumar Bajpai	Minister of Health (East)
4.	Sh. Avtar Singh	Minister of Gurudwara Elections
5.	Sh. Jarnail Singh (Rajauri Garden)*	Minister of Power
6.	Sh. Jarnail Singh (Tilak Nagar)	Minister of Development
7.	Sh. Kailash Gahlot	Minister of Law
8.	Sh. Madan Lal	Minister of Vigilance
9.	Sh. Manoj Kumar	Minister of Food and Civil Supplies
10.	Sh. Naresh Yadav	Minister of Labour
11.	Sh. Nitin Tyagi	Minister of Women & Child and Social Welfare
12.	Sh. Praveen Kumar	Minister of Education
13.	Sh. Rajesh Gupta	Minister of Health (North)
14.	Sh. Rajesh Rishi	Minister of Health (South)
15.	Sh. Sanjeev Jha	Minister of Transport
16.	Ms. Sarita Singh	Minister of Employment
17.	Sh. Sharad Kumar Chauhan	Minister of Revenue
18.	Sh. Shiv Charan Goel	Minister of Finance
19.	Sh. Som Dutt	Minister of Industries
20.	Sh. Sukhvir Singh Dalal	Minister of Languages and Welfare of SC/ST/OBC
21.	Sh. Vijender Garg Vijay	Minister of Public Works Department
*	Shri Jarnail Singh, MLA from Assembly Constituency of Rajauri Garden had resigned on 17.01.2017 and bye-elections were held to fill this vacancy in April, 2017 and therefore no question remains over his disqualification.	

Whereas in the said reference, the question of disqualification of the said MLAs arose out of a petition dated 19.06.2015, filed by Shri Prashant Patel (hereinafter referred to as "Petitioner") before the President of India whereby the Petitioner has sought disqualification of Shri Praveen Kumar and 20 other Members of Delhi Legislative Assembly (hereinafter referred to as "Respondents") under Section 15 (1) (a) of the GNCTD Act, 1991 on the grounds of holding the office of profit under the Government of NCT of Delhi as Parliamentary Secretaries to the Ministers of the Government of NCT of Delhi. The Respondents were appointed as Parliamentary Secretaries to the Ministers of the Delhi Government *vide* GNCTD Order dated 13.03.2015. The Petitioner filed the petition dated 19.06.2015 before the Hon'ble President of India on 22.06.2015.

And whereas the said petition of Shri Prashant Patel was referred to the Election Commission of India seeking its opinion as required under article 191(1) (a) of the Constitution of India and also under the provisions of section 15 (1) (a) of the GNCTD Act.

And whereas the Election Commission of India, after examining the totality of the facts and circumstances viewed in the light of the law as contained in the Constitution of India, the GNCTD Act, and the judicial pronouncements in the past, lead to this inference that the office of Parliamentary Secretary upon which the following 20 MLAs were appointed *vide* GNCTD Order dated 13.03.2015 is an office of profit held under the Government and therefore the Election Commission opined that the following MLAs are liable to be disqualified under section 15 (1) (a) of the GNCTD Act:-

S. No.	Name of the MLA	S. No.	
1.	Sh. Adarsh Shastri (AC-33 Dwarka)	2.	Ms. Alka Lamba (AC-20 Chandni Chowk)
3.	Sh. Anil Kumar Bajpai (AC-61 Gandhi Nagar)	4.	Sh. Avtar Singh (AC-51 Kalkaji)
5.	Sh. Jarnail Singh (AC-29 Tilak Nagar)	6.	Sh. Kailash Gahlot (AC-35 Najafgarh)
7.	Sh. Madan Lal (AC-42 Kasturba Nagar)	8.	Sh. Manoj Kumar (AC-56 Kondli)
9.	Sh. Naresh Yadav (AC-45 Mehrauli)	10.	Sh. Nitin Tyagi (AC-58 Laxmi Nagar)
11.	Sh. Praveen Kumar (AC-41 Jangpura)	12.	Sh. Rajesh Gupta (AC-17 Wazirpur)
13.	Sh. Rajesh Rishi (AC-30 Janakpuri)	14.	Sh. Sanjeev Jha (AC-2 Burari)
15.	Ms. Sarita Singh (AC-64 Rohtas Nagar)	16.	Sh. Sharad Kumar Chauhan (AC-1 Narela)
17.	Sh. Shiv Charan Goel (AC-25 Moti Nagar)	18.	Sh. Som Dutt (AC-19 Sadar Bazar)
19.	Sh. Sukhvir Singh Dalal (AC-8 Mundka)	20.	Sh. Vijender Garg Vijay (AC-39 Rajendra Nagar)

And whereas in respect of Shri Jarnail Singh former MLA from Assembly Constituency – 27 Rajauri Garden who was also appointed as Parliamentary Secretary *vide* GNCTD Order dated 13.03.2015, it is to be noted that he had resigned from his seat in the Legislative Assembly of NCT of Delhi on 17.01.2017 and bye-elections were held to fill his vacancy in April, 2017 and therefore no question remains over his disqualification. A copy of the opinion dated 19.01.2018 along with the annexures thereto given by the Election Commission of India is attached hereto.

Now, therefore, having considered the matter in the light of the opinion expressed by the Election Commission of India, I, Ram Nath Kovind, President of India, in exercise of the powers conferred on me under section 15(4) of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991, do hereby hold that the aforesaid 20 Members of Delhi Legislative Assembly stand disqualified for being members of the said Assembly.

President of India

ANNEXURE TO THE ORDER OF THE PRESIDENT

REFERENCE CASE NO. 5 OF 2015

[REFERENCE FROM THE PRESIDENT OF INDIA UNDER SECTION 15(4) OF THE GOVERNMENT OF NATIONAL CAPITAL TERRITORY OF DELHI ACT, 1991]

In re: Reference Case No. 5 of 2015 - Reference received from the Hon'ble President of India under Section 15(4) of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991 seeking opinion of the Election Commission of India on the question of alleged disqualification of Shri Praveen Kumar and 20 Others, Members of the Delhi Legislative Assembly, under Section 15(1)(a) of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991.

OPINION

BRIEF FACTS

1. This is the reference, dated 10.11.2015, received from the Hon'ble President of India seeking opinion of the Election Commission of India under Section 15(4) of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991 (hereinafter *"GNCTD Act"*) on the question whether Shri Praveen Kumar and 20 other Members of Legislative Assembly of the National Capital Territory (hereinafter *"NCT")* of Delhi have become subject to disqualification, for being members of that Assembly, under Section 15(1)(a) of the GNCTD Act. The names of the MLAs and their posts are as under:

S. No.	Name of the MLA	Parliamentary Secretary to
1.	Sh. Adarsh Shastri	Minister of Information and Technology
2.	Ms. Alka Lamba	Minister of Tourism
3.	Sh. Anil Kumar Bajpai	Minister of Health (East)
4.	Sh. Avtar Singh	Minister of Gurudwara Elections
5.	Sh. Jarnail Singh (Rajauri Garden)*	Minister of Power
6.	Sh. Jarnail Singh (Tilak Nagar)	Minister of Development
7.	Sh. Kailash Gahlot	Minister of Law
8.	Sh. Madan Lal	Minister of Vigilance
9.	Sh. Manoj Kumar	Minister of Food and Civil Supplies
10.	Sh. Naresh Yadav	Minister of Labour
11.	Sh. Nitin Tyagi	Minister of Women & Child and Social Welfare
12.	Sh. Praveen Kumar	Minister of Education
13.	Sh. Rajesh Gupta	Minister of Health (North)
14.	Sh. Rajesh Rishi	Minister of Health (South)
15.	Sh. Sanjeev Jha	Minister of Transport
16.	Ms. Sarita Singh	Minister of Employment
17.	Sh. Sharad Kumar Chauhan	Minister of Revenue
18.	Sh. Shiv Charan Goel	Minister of Finance
19.	Sh. Som Dutt	Minister of Industries
20.	Sh. Sukhvir Singh Dalal	Minister of Languages and Welfare of SC/ST/OBC
21.	Sh. Vijender Garg Vijay	Minister of Public Works Department
*	*Sh. Jarnail Singh, MLA from Assembly Constituency of Rajauri Garden had resigned on 17.01.2017 and bye-elections were held to fill this vacancy in April 2017 and therefore no question remains over his disqualification.*	

2. In the said reference, the question of disqualification of the said MLAs arose out of a petition, dated 19.06.2015, filed by Shri Prashant Patel (hereinafter the "*Petitioner*") before the President of India, whereby the Petitioner has sought disqualification of Shri Praveen Kumar and 20 other Members of Delhi Legislative Assembly (hereinafter the "*Respondents*") under Section 15(1)(a) of the GNCTD Act on the grounds of holding the office of profit under the Government of NCT of Delhi as Parliamentary Secretaries to the Ministers of the Government of NCT of Delhi.

3. The Respondents were appointed as Parliamentary Secretaries to the Ministers of the Delhi Government *vide* GNCTD Order dated 13.03.2015. The Petitioner filed the petition dated 19.06.2015 before the Hon'ble President of India on 22.06.2015. Subsequent thereto the GNCTD introduced "the Delhi Members of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) (Amendment) Bill, 2015" on 23.06.2015. The bill was passed by the Legislative

Assembly of Delhi on 24.06.2015. However, the Hon'ble President of India refused to give assent to this Bill on 07.06.2016. The Statement of Objects and Reasons of the Delhi Members of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) (Amendment) Bill, 2015 is as under:

*"**STATEMENT OF OBJECTS AND REASONS***

Clause (a) of sub-section(1) of Section 15 of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991, provides that a person shall be disqualified for being chosen as, and for being, a member of the Legislative Assembly if he holds any office of profit under the Government of India or the Government of any State or the Government of any Union Territory other than an office declared by law made by Parliament or by the Legislature of any State or by the Legislative Assembly of Delhi or any other Union Territory, not to disqualify its holder. The provisions of Section 15 of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991 are, more or less, on the lines of the provisions contained in Article 102 and 191 of the Constitution relating to the disqualification for membership of either House of Parliament or either House of Legislature of State, respectively.

The Legislative Assembly of Delhi in 1997, enacted a law known as the Delhi Members of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) Act, 1997 (Delhi Act 6 of 1997) in order to exempt certain offices from being disqualified for being chosen as, or for being, a member of the Legislative Assembly of National Capital Territory of Delhi.

In addition to the Office of the Parliamentary Secretary to the Chief Minister mentioned at serial number 7 in the Schedule appended to the said Act, the office of Parliamentary Secretary to the Minister is also to be included. It is considered necessary to amend the Delhi Member of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) Act, 1997 to declare that the office of the Parliamentary Secretary to the Chief Minister and Minister of the Government of National Capital Territory of Delhi shall not be disqualified and shall be deemed never to have been disqualified for being chosen as, or for being, a member of the Legislative Assembly of National Capital Territory of Delhi. Accordingly, it is proposed to amend the Schedule to the said Act to give effect to these intentions.

The Bill seeks to achieve the aforesaid objectives".

4. The proceedings in the present case were commenced on 24.06.2016 whereby the Commission considered the intervention applications filed by certain third parties for impleadment as parties in this case. All concerned parties were heard on 14.07.2016 and 21.07.2016 and an Order disposing these Applications was passed on 26.07.2016. The Commission *vide* Order dated 26.07.2016 held that the parties to the Reference have been determined by the Presidential Reference and therefore the Applications for Impleadment are not maintainable.

5. Thereafter hearings were conducted on 10.08.2016, 19.08.2016 and 29.08.2016 whereby the Respondents challenged the reply dated 28.12.2015 filed by the Petitioner in response to the notice of the Commission dated 04.12.2015 for having raised extraneous questions of disqualification to which they referred to as the 'second petition'. The Commission decided upon this preliminary issue *vide* Order dated 16.09.2016 by which the Commission held that the questions raised by the Petitioner in their Reply were mere reiteration of the questions raised in his original Petition dated 19.06.2015. However, in view of the objections raised by the Respondents, the Commission ordered certain paragraphs to be struck off from the reply filed by the Petitioner and directed certain documents filed by the Petitioner to be not taken on record and fixed the date for final hearing on the matter.

6. While the proceedings under the present reference were being carried before the Commission, a writ petition bearing Writ Petition (Civil) No. 4714 of 2015 titled as *Rashtriya Mukti Morcha v. Government of NCT & Others* was filed before the Hon'ble High Court of Delhi challenging the said appointment order dated 13.03.2015. The Hon'ble Delhi High Court *vide* Order dated 08.09.2016 set aside the said appointment order dated 13.03.2015 on the ground that it was passed without communicating the decision of the Government to the Lieutenant Governor for his views/concurrence. The Order of the High Court is reproduced hereunder for convenience of reference:-

"1. This petition by way of Public Interest Litigation has been filed challenging the order of the Government of Delhi dated 13.03.2015 appointing the Members of Delhi Legislative Assembly named therein as Parliamentary Secretaries to the Ministers, Government of NCT of Delhi.

2. One of the grounds of challenge is that the said order was passed without communicating the decision to the Lieutenant Governor for his views/concurrence as required under Article 239AA of the Constitution of India.

3. Having considered the very same issue in W.P.(C) No.5888/2015 and batch titled Government of NCT of Delhi v. Union of India & Ors., by judgment dated 04.08.2016 this Court held that-

"It is mandatory under the constitutional scheme to communicate the decision of the Council of Ministers to the Lt. Governor even in relation to the matters in respect of which power to make laws has been conferred on the Legislative Assembly of NCT of Delhi under clause (3)(a) of Article 239AA of the Constitution and an order thereon can be issued only where the Lt. Governor does not take a different view and no reference to the Central Government is required in terms of the proviso to clause (4) of Article 239AA of the Constitution read with Chapter V of the Transaction of Business of the Government of NCT of Delhi Rules, 1993."

4. The specific plea of the petitioner that the impugned order dated 13.03.2015 was passed without communicating the decision to the Lieutenant Governor for his views/concurrence has not been disputed by the learned counsels appearing for the respondents.

5. Therefore, we find force in the submission of the learned counsel for the petitioner that the issue is squarely covered by the decision in and batch titled Government of NCT of Delhi v. Union of India & Ors. Accordingly, without going into the other contentions raised in the writ petition, the impugned order dated 13.03.2015 is hereby set aside.

The writ petition is accordingly allowed. No costs.

CHIEF JUSTICE
SANGITA DHINGRA SEHGAL, J.

SEPTEMBER 08, 2016/VLD"

7. The Commission had sought detailed information in respect of the Respondent MLAs from the GNCTD and the same was received *vide* letter number F.No.F.17/57/2012/GAD/Pr.Secy./4034 dated 20.09.2016 along with supporting documents running into 2500 pages. In the hearing conducted on 23.09.2016 the parties requested for a copy of the said reply filed by GNCTD. A copy of the same was delivered to all the Respondents and the Petitioner individually *vide* ECI letter dated 29.09.2016 and the parties were asked to submit their reply to the same on or before 07.10.2016 and 14.10.2016. The Respondents submitted their reply on 17.10.2016 and the petitioner submitted his rejoinder on 24.10.2016.

8. In their submissions and in the hearings conducted before the Commission on 15.11.2016, 22.11.2016, 07.12.2016, 16.12.2016 and 27.03.2017 the Respondents raised Preliminary Objection as to the maintainability of the present Reference case on the ground that after passing of the order dated 08.09.2016 by the Hon'ble Delhi High Court whereby the High Court has set aside the appointment order dated 13.03.2015 the question of alleged disqualification does not arise.

9. During the proceedings conducted before the Commission and in their written submissions the Respondents contended that the post of Parliamentary Secretaries became non-existent after Hon'ble Delhi High Court's order and the reference case has became infructuous and otiose and that the Hon'ble Delhi High Court by setting aside the appointment order has declared it as illegal, unconstitutional and *void ab initio,* meaning thereby that the sole ground for alleged disqualification does not survive. According to the respondents, the necessary corollary of the High Court's order is that the "office" of parliamentary secretaries was never existent and, thus, no question of any profit and consequential disqualification arises.

10. During the proceedings conducted before the Commission and in their written submissions the petitioner has submitted that the respondent's contention about the non- existence of the 'office' of Parliamentary Secretaries after the High Court's order is incorrect. It is contended by the petitioner that the Delhi High Court has only 'set aside' the appointment order and has not held it to be *"void ab initio"*. The Petitioner also referred to the judgment of Hon'ble Supreme Court in *State of Punjab v. Gurudev Singh* [(1991) 4 SCC 1], which relates to dismissal of a police official of the State of Punjab, wherein the apex Court held that:

"5. If an Act is void or ultra-vires, it is enough for the Court to declare it so and it collapses automatically. It need not be set aside. The aggrieved party can simply seek a declaration that it is void and not binding upon him. A declaration merely declares the existing state of affairs and does not 'quash' so as to produce a new state of affairs.

6. <u>But nonetheless the impugned dismissal order has at least a de facto operation unless and until it is declared to be void or nullity by a competent body or Court</u>."(Emphasis supplied)

11. The Petitioner has submitted that in absence of any other expression to the contrary, the Order dated 08.09.2016 passed by the Hon'ble Delhi High Court shall only have prospective effective from the date of its pronouncement, that is 08.09.2016. He also referred to the judgment of the Rajasthan High Court in *Hoti Lal v. Raj Bahadur* [AIR 1959 Raj 227] wherein it was stated that even if the appointment was irregular, that would not save a person from the disqualification under Article 102. The petitioner has further submitted that the Respondent MLAs would have incurred disqualification, even if they held the office for a minute. Since, in the instant case, the Respondents have enjoyed the perks from the date of their appointment, i.e. 13.03.2015 till the time the appointment order was set aside by the Hon'ble Delhi High Court on 08.09.2016, this would attract disqualification since as long as there is office of profit, the holder of such office shall incur disqualification.

12. The Commission *vide* order dated 23.06.2017 observed that a bare perusal of Appointment Order of the Government of Delhi shows that by the said order the respondents were appointed as Parliamentary Secretaries to the Ministers of the Government of Delhi. There is no mention in that order anywhere at all that by this impugned order the Government of Delhi created any posts of Parliamentary Secretaries as well. The order only speaks about the appointment of the respondents as Parliamentary Secretaries. This pre-supposes that the posts of Parliamentary Secretaries were either already in existence or created separately by the Government, to which these appointments were made by the Government on 13.03.2015. The Commission did not find anything in the order dated 08.09.2016 of the Hon'ble Delhi High Court to conclude that the Court set aside not only the appointment of the respondents as Parliamentary Secretaries but also the creation of the posts of Parliamentary Secretaries. The contention of the Respondents that by virtue of the Hon'ble Delhi High Court's order dated 08.09.2016, the posts of Parliamentary Secretaries ceased to exist *ab initio* from 13.03.2015 is thus not acceptable. It is manifestly and abundantly clear that by the order dated 08.09.2016 the Hon'ble Delhi High Court only set aside the appointment of the respondents as Parliamentary Secretaries and it admits of no other interpretation. If the respondents were to succeed in this contention that the Hon'ble High Court set aside the creation of posts of Parliamentary Secretaries as well, the burden of proving that fact lay on the Respondents, which they have failed to discharge. The petitioner is right in his contention that the Commission cannot add to or vary any words in the order of the Hon'ble Delhi High Court, as is sought to be done by the respondents.

13. The Commission *vide* Order dated 23.06.2017 held that the only inference that can be validly drawn from the order dated 08.09.2016 passed by the Hon'ble Delhi High Court is that it was only the appointment of respondents as Parliamentary Secretaries *vide* GNCTD Order dated 13.03.2015 that was set aside and not the post of Parliamentary Secretaries. In the present case, it is evident that the respondents were *de facto* holders of the office of Parliamentary Secretaries, albeit by way of an appointment order, which was found to be suffering from procedural and legal lapses and was hence set aside by the Hon'ble Delhi High Court and therefore the question of their disqualification is maintainable.

14. The above noted order of the Commission has been challenged by the Respondents before the Hon'ble Delhi High Court through Writ Petition (Civil) Nos. 6632, 6633, and 6635 – 6638 of 2017. However, since no Stay Order has been passed in the same till date, this Commission decided to proceed with the conduct of enquiry in this Reference Case and to frame its Opinion.

PRELIMINARY ISSUES RAISED BY PARTIES AND THE ADJUDICATION THEREOF

15. The Commission *vide* letter dated 28.09.2017 issued notice to the parties calling upon them to file their detailed written reply to the documents filed by the GNCTD and the notice further noted that if the Respondents fail to file their written arguments then the Commission would assume that they have nothing further to say in this matter and the Commission would decide the matter on the basis of Evidence and Documents available on its Records, without any further reference to the Respondents.

16. The Respondents submitted their response on 16.10.2017 and the Petitioner submitted his rejoinder to their response on 23.10.2017. The Responsents have submitted in their response that the said letter dated 28.09.2017 has been issued by the Commission in ignorance of the replies and applications previously filed by the Respondents. They further submitted that nevertheless, these materials shall be considered by the Commission only if the High Court rejects the petition filed by the Respondents.

17. In their written submissions the Respondents have submitted that since the High Court had already held their appointment at the post of Parliamentary Secretary to be illegal and void, and since the petition of the Respondents challenging the Order passed by the Commission is pending before the High Court, the stage for filing written arguments along with entire documentary evidence has not yet reached and the same may not be required.

18. The Respondents have further submitted that since the Commission's Order dated 23.06.2017 is *sub judice*, the Respondents urge the Commission to not convene any Hearing in the matter as the same may be rendered as futile if the High Court decided the petition in favour of the Respondents.

19. The Respondents have further submitted that vide Order dated 23.06.2017, the Commission has decided the issue of maintainability however there still remains other preliminary issues that are yet to be decided and the merits of the matter cannot be heard without first deciding the same. The Respondents have specifically drawn attention of the Commission to their reply wherein they have raised the objection that the reference dated 10.11.2015 is no reference in the eyes of law.

20. The Respondents have further submitted that they have the right and thus they demand to cross-examine the Petitioner/Complainant at an appropriate stage.

21. The Respondents have further submitted that the Respondents have come to know through media reports that Election Commissioner - Shri O.P. Rawat has recused himself from hearing this matter and in light of this fact it is not clear as to how the quorum would be met to hear the matter. Since important constitutional rights of the Respondents are at stake, this matter must necessarily be heard by a full quorum.

22. The submissions of the Respondents reveal that they do not have anything further to add to their written submission already made before the Commission.

23. The Respondents have failed to raise any new and specific preliminary issue that ought to be decided before rendering the final opinion in this matter and in the absence of any stay order on the operation of the Commission's Order dated 23.06.2017, there is no legal impediment in passing the present order.

24. As to the demand of the Respondents for cross-examination of the Petitioner/Complainant, it is observed that in Reference Cases the complainant is like a whistleblower and to allow cross-examination of him would create a travesty of the process of law. Moreover, there is no necessity to cross-examine the complainant as neither is he in possession of any information in his personal or official capacity which he has relied upon in his complaint nor is he a witness in these proceedings. Therefore there is no need to cross-examine the complainant and this demand will lead to unnecessary delay.

25. The Election Commissioner - Shri Om Prakash Rawat had recused himself from hearing this matter due to some unsubstantiated allegations of association during earlier postings to some political leader put against him. However, at the instance of the Chief Election Commissioner he had agreed to examine this matter and with the joining of Shri Sunil Arora on the post of Election Commissioner with effect from 01.09.2017, a full quoram had become available to render this opinion as it is based on the examination of all the submissions and documents available on record. It is also a fact that after leveling unsubstantiated allegations against one of the Election Commissioner, which resulted in his recusal, the Respondents took a specific plea that the Commission cannot proceed in the matter in the absence of full quorum. The aforesaid act of the Respondents makes it evident that their intention and motive was to ensure that the present case does not proceed any further. However, it is pertinent to note that as per Section 10 of the Election Commission (Conditions of Service of Election Commissioners and Transaction of Business) Act, 1991 the Commission has complete autonomy to regulate its procedure for transaction of its business and such decision can be taken unanimously or by majority. Also, as per Section 146B of the Representation of the People Act, 1951 the Commission has complete autonomy in deciding its procedures. Thus, it is not necessary that if an Election Commissioner has recused himself, even if partly, from the enquiry and hearing in any case then an opinion in such particular reference case cannot be formed by the remaining members of the Commission. Such a position of law does not exist and it can be very dangerous as any concerned party in any Case can come up with a baseless allegation of bias *et al* against one or the other Election Commissioner and then such a Case cannot be decided till the retirement of such Election Commissioner. Such a position can not only cripple the working of the Election Commission but can also render many provisions of law as non-workable.

26. Since the Respondents had not made any substantive submissions on the merits of the case, the Commission again served upon the parties a second notice as a matter of last opportunity *vide* Letter dated 02.11.2017 requesting the parties to file their written submissions with respect to the information supplied by the GNCTD with respect to the facts pertaining to the Office of Profit held by the Respondents and the Respondents have furnished a reply dated 20.11.2017 where they have repeated the submissions made in their reply dated 16.10.2017 and the Petitioner filed his written submissions on 15.12.2017.

27. In such circumstances where the Respondents have clearly stated that they have already made the submissions that they wanted to make and have not made any further submissions on the details provided by the GNCTD despite multiple opportunities and the lapse of considerable period of time, it appears that they have nothing further to

add. Therefore this Commission has decided to conclude the proceedings in this matter and to render its Opinion in the present reference.

SUBMISSIONS MADE BY THE PARTIES ON MERITS

28. The Petitioner has submitted that the submission of the Respondents that the post of Parliamentary Secretary cannot be termed as an 'Office of Profit' merely for the reason that it has no monetary or financial gain is devoid of any merit or substance. The term 'Office of Profit' is a technical term which has not been defined in the Constitution or in any Law and certain tests and factors have been identified by various Court judgments to determine as to what constitutes an 'Office of profit' which can be summarized as under:

(i). Whether the said MP or MLA holds an office?

(ii). Whether it is an office which yields profit?

(iii). Whether the office is under the Government?

(iv). Whether the holder performs any executive functions?

(v). Whether the Government by enacting a law has declared that the holder of the office is exempted from disqualification?

(vi). Whether the Government has made the appointment?

(vii). Whether the Government has the right to remove or dismiss the holder?

(viii). Whether the Government pays remuneration?

(ix). What the Functions of the holder are?

(x). Does the Government exercise any control over the performance of the Functions?

(xi). Whether there is any possibility of conflict of duty and personal interest?

29. The Petitioner has submitted that the Respondents fail all the above tests except the test of pecuniary gain which indeed is in important test but is not the only test and since the office of Parliamentary Secretary was an office under the Government of NCT of Delhi and was capable of yielding profit it must be declared as an 'Office of Profit' and in this regard he has placed reliance upon the following observation of the Hon'ble Supreme Court made in *M. Ramappa v. Sangappa* [AIR 1958 SC 937; 1959 SCR 1167]:

> *"An 'Office of profit' is an office which is capable of yielding a profit or pecuniary gain. On the other hand, if a profit does actually accrue from an office, it is an office of profit, no matter how it accrues".*

30. The Petitioner has placed reliance on M. N. Kaul & S. H. Shakdhar's famous treatise first published by the Lok Sabha Secretariat in 2001 and titled as *"Practice and Procedure of Parliament: With Special Reference to Lok Sabha"* which is often cited and relied upon in matters relating to Indian Legislatures. In particular, the Petitioner has placed reliance on the following excerpts:

> *"To examine whether an office is an office of profit or not, it is not the emoluments alone that the MLA receives or is likely to receive if he holds that office that are to be seen to determine this question. Other aspects of the matter such as position, power or patronage enjoyed by the holder of that office are also relevant factors to be taken into account even though there might not be any monetary advantage to the holder. [...] Profit is generally interpreted to mean monetary gain. But in some cases benefits other than monetary gain may also come within its meaning. [...] The word 'profit' does not necessarily mean any remuneration in cash. But it certainly means some kind of patronage or gain which is tangible or which can be perceived". [2009 Edition, Page 78-79] [Emphasis supplied by the Petitioner]*

31. The Petitioner has further submitted that on 26.02.2015, the Deputy Chief Minister sent a note to Secretary to the Chief Minister communicating as under: "It has been decided that following Hon'ble MLAs (21) be appointed as Parliamentary Secretaries to the respective Ministers". However, the said note is completely silent as to who took the decision, when and how the decision was taken, the background in which such a decision was necessitated, how the MLAs were selected for appointment, whether the Ministers with whom these MLAs were appointed as Parliamentary Secretaries were consulted etc.

32. The Petitioner has further submitted that on 13.03.2015, the order of appointment of Parliamentary Secretaries was notified and it was stated therein that they would not be entitled to any additional emoluments, however, they would be entitled to the following two facilities:

(i) Govt. Transport (for official work)

(ii) Office space (in Minister's office)

33. The Petitioner has further submitted that there is no mention either in the order of appointment dated 13.03.2015 or in any document thereafter as to what would be the nature of duties of the Parliamentary Secretaries. The appointment order dated 13.03.2015 merely states that the Parliamentary Secretaries would perform functions as assigned by the Ministers. As a result, many Parliamentary Secretaries attended meetings in the rooms of Ministers, some of which were Review Meetings or Meetings of Advisory or Consultative nature. In a few meetings, policy framing or Executive Decisions were taken and in some cases the Committee headed by Parliamentary Secretaries "Decided" and not Recommended on the subject under consideration. In few cases, the Minister delineated his constitutional obligation as instead of the absentee Minister, the Parliamentary Secretary presided over the meeting where important decisions were taken. Thus, in many cases, the Parliamentary Secretaries performed or were permitted to perform the essential or constitutional functions of a Minister, which is a move that attracts disqualification.

34. The Petitioner has further submitted that even if one Parliamentary Secretary has received any benefit which would render his office as an 'Office of Profit' then this fact would tantamount to the office of Parliamentary Secretary being held as an 'Office of Profit' as such and therefore all the Parliamentary Secretaries would be liable to be disqualified as all of their offices were offices of profit with potential of reaping benefits. The Petitioner has in this regard placed reliance on the judgment of the Supreme Court in *Jaya Bachchan vs. Union of India* [(2006) 5 SCC 266] where it was held that if pecuniary gain is 'receivable' in connection with the office then it becomes an office of profit.

35. The Petitioner has further submitted that Delhi Government has accepted that rooms/office spaces were allotted to Parliamentary Secretaries/MLAs by various departments of Government such as Jal Board, Development, Transport, Health Department etc. They were furnished by Public Works Department with furniture etc. Utility bills such as electricity and water charges were also paid by Government. The office rooms were given to the Parliamentary Secretaries so liberally and recklessly that one Parliamentary Secretary ended up getting not one but four furnished offices (viz. one office in Assembly building, 2 rooms in CPO building and 1 room in Aruna Asaf Ali Hospital). It is beyond comprehension as to why this Parliamentary Secretary should need four rooms/offices at different places and why Delhi Government was spending public money in furnishing them.

36. The Petitioner has further submitted that that initially *vide* Order dated 13.03.2015, the Parliamentary Secretaries were given rooms in the Minister's Office. However, *vide* Order dated 22.09.2015 the Respondents were given exclusive, designated offices in the Delhi Legislative Assembly for which the Public Works Department spent a sum of Rs. 11,75,828 from the coffers of the Public Exchequer. Moreover, the GNCTD in Para 10 of its Reply, has also revealed that the Minister of Transport, had gotten constructed office rooms, gotten installed KTS, intercom, computers etc. for his 4 Parliamentary Secretaries and had further incurred a sum of Rs. 3,73,871 expenditure on the same. Therefore, not only did the PWD spend a substantial amount of money on the said offices; but the provision of exclusive offices in the Delhi Legislative Assembly, also amounted to a considerable raise in the entitlements to the 21 Parliamentary Secretaries.

37. The Petitioner has further submitted that the Delhi Government vide its Letter (F. No. 18/7/2016/Parly.Secy/GAD/Admn.428-29) dated 11.02.2016 informed to the Lt. Governor that *'the seating arrangement of Parliamentary Secretaries in Delhi Vidhan Sabha Complex and some of the facilities (other than facilities being provided to MLA) might be provided by Delhi Vidhan Sabha Secretariat'*. Accordingly rooms and cabins were got constructed in the Delhi Assembly Complex for these 21 MLA. On 23rd September, 2015 the Legislative Assembly Secretariat issued an office order (No. 16(50)/2014-15/LAS/CT/5437-5443) containing the names of 21 Parliamentary Secretaries and the Room No. allotted to each.

38. The Petitioner has further submitted that the Assembly Secretariat issued an order allotting rooms to the Parliamentary Secretaries. The Assembly Secretariat admitted in reply dated 27.01.2016 to RTI application filed by Mr. Vivek Garg that rooms have been allotted. In a letter dated 23.02.2016, the Assembly Secretariat replied to the Secretary to Lt. Governor of Delhi that *"some rooms along with some furniture items have been earmarked for the Parliamentary Secretaries to the Ministers in the Assembly complex"*. However when the Election Commission of India issued notice to the GNCTD then the Assembly Secretariat took a different stand.

39. The Petitioner has further submitted that the kind of facilities and perks extended to Parliamentary Secretaries can only be provided by enacting a law to this effect and not otherwise. Different category of members such as Ministers, Leader of Opposition, Speaker, Deputy Speaker, Chief Whip etc. have been provided facilities, perks etc. by way of legislation only. However, the Parliamentary Secretaries were provided with facilities and perks without any backing of law.

40. The Petitioner has further submitted that the appointment Order dated 13.03.2015 confers and entitles the Respondent MLAs - (a) to an office space in the concerned Minister's office and also, (b) to a Government transport/ chauffer driven car but it does not confer any duties/responsibilities upon the said MLAs. Therefore, the Respondent MLAs were given a car and an office space, without even assigning any duties/ responsibilities to them. This fact has also been admitted by the GNCTD in its reply dated 20.09.2016 (Para 7), where it has admitted that there was not even an order by any of the concerned Ministers specifying the nature of duties/ tasks to be performed by the Parliamentary Secretaries to the Minister. The GNCTD has further admitted that the duties of Parliamentary Secretaries were articulated for the first time in the Counter Affidavit dated 06.10.2015 filed by the GNCTD before the Hon'ble Delhi High Court in CWP No. 4714/2015 as well as in the application filed by GAD before ECI on 13.06.2015, thus the Respondent MLAs were conferred with facilities like Office space and Govt. vehicle/ chauffer driven car, the expense for which was to be borne by the public exchequer, without even knowing the duties/responsibilities to be performed by these Parliamentary Secretaries. Thus, the said material benefits amount to 'profit' as envisaged under the doctrine of Office of Profit. Moreover, the entitlement to the said facilities/perks to the Respondents was a benefit capable of bringing about a conflict between the duty and interest of the Respondent Legislators – the precise vice to which, disqualification under Article 102/191 and Section 15 of the GNCTD Act, 1991 is attracted.

41. The Petitioner has further submitted that the real test to examine whether an office is an 'Office of Profit' or not is to check whether there is any possibility of conflict between duty and personal interest. In this regard he has placed reliance on the observation made by the Hon'ble Supreme Court in *Ashok Kumar Bhattacharya vs. Ajay Viswas* [(1985) 1 SCC 151] as under:

> *"16. The true principle behind this provision in Article 102 (1) (a) is that there should not be any conflict between the duties and the interest of an elected member. Government controls various activities in various spheres and in various measures. But to judge whether employees of any authority or local authorities under the control of Government become Government employees or not or holders of office of profit under the Government, measure and nature of control exercised by the Government over the employee must be judged in the light of the facts and circumstances in each case so as to avoid any possible conflict between his personal interests and duties and of the Government. [...]*
>
> *20. As we have mentioned before, the object of enacting provisions like Article 102(1)(a) and Article 191(1)(a) is that a person who is elected to a Legislature or Parliament should be free to carry on his duties fearlessly without being subjected to any kind of governmental pressure. The term "office of profit under the Government" used in clause (a) is an expression of wider import than a post held under the Government which is dealt with in Part XIV of the Constitution. The measure of control by the Government over a Local Authority should be judged in order to eliminate the possibility of a conflict between duty and interest and to maintain the purity of the elected bodies. After reviewing various cases, and the provisions of the various sections of the U.P. Basic Education Act, 1972 especially in view of Section 13 of the Act, this Court held in the last mentioned case that the measure of control was such that U.P. Education Board was an authority which was not truly independent of the Government and every employee of the Board was in fact holding an office of profit under the State Government. The statement and object of the U.P. Basic Education Act, 1972 and Sections 4, 6, 7, 13 and 19 all of which have been set out in extenso in that decision make that conclusion irresistible." [Emphasis supplied]*

42. The Petitioner has further submitted that the idea behind the doctrine laid down by the Hon'ble Supreme Court is to save the elected representatives (MLAs & MPs) from the influence of the executive as their prime responsibility is to discharge their legislative functions. In this regard he has placed reliance upon the Opinion dated 02.03.1953 given by the Election Commission of India in the matter of *Brijraj Singh Tiwari & Others (Vindhya Pradesh Legislative Assembly Members)* where the Commission had held as under:

> *"If the Executive Government have untrammelled powers of offering to legislatures any appointments, positions, or offices, however they may be described, which carry emoluments of some kind or other with them, there would be a clear risk that an individual member might*

feel himself beholden to the Executive Government and thus lose his independence of thought and action in his capacity as a member of the Legislature and a true representative of his constituents."

43. Placing reliance on the above quoted observation of the Commission the Petitioner has further submitted that the Respondent MLAs by the virtue of being appointed as Parliamentary Secretaries to Ministers have exposed themselves to the influence of the executive and hence, their primary and independent role as a, legislators and representatives of the constituents, is directly affected by such appointment.

44. The Petitioner has further submitted that the Respondents were appointed to the office of Parliamentary Secretaries and thereby they were accorded a pedestal above the rest of the MLAs in the Delhi Legislative Assembly as the entitlements of the Respondent MLAs were over and above the entitlements of an ordinary MLA. The facilities such as Office, car, telephone etc. allowed the Respondents to entertain guests at the cost of Public exchequer. He has further submitted that these appointments were an indirect device to provide the Respondent MLAs with facilities akin to those available to a Minister.

45. The Petitioner has further placed reliance on the judgment of the Hon'ble Supreme Court in *Bihari Lal Dobray vs. Roshan Lal Dobray* [(1984) 1 SCC 551] where the Hon'ble Court had held that the office of the Chairman of the Board is an 'Office of Profit' on the basis of the facts mentioned in the below paragraph:

"20. We are of the view that the present case is governed by the principles laid down by the judgment of this Court in Raman Lal Keshav Lal Soni case [(1983) 2 SCC 33 : 1983 SCC (L&S) 231 : (1983) 1 LLJ 284]. The functions of the employees of the Board are in connection with the affairs of the State. The expenditure of the Board is largely met out of the moneys contributed by the State Government to its funds. The teachers and other employees are to be appointed in accordance with the rules by officers who are themselves appointed by the Government. The disciplinary proceedings in respect of the employees are subject to the final decision of the State Government or other Government officers, as the case may be."[Emphasis supplied]

46. The Petitioner has further submitted that the Hon'ble Supreme Court has held in the case of *Jaya Bachchan Vs. Union of India* [(2006) 5 SCC 266] that while determining the nature of profit, what needs to be considered is the matter of substance rather than the form. In the said case Hon'ble Supreme Court held that material gains like rent free accommodation, chauffer driven car at state expense were clearly in nature of remuneration and a source of pecuniary gain and hence, constitute 'Office of Profit'. Moreover, in the case of *Jaya Bachchan Vs. Union of India (supra)* the above facilities were held to attract disqualification under office of profit, even though the duties of the concerned office were defined in the said matter. However, as already mentioned hereinabove, the duties of the Respondent MLAs were not even known at the time of their appointment, but in spite of the said fact, they were provided the abovementioned facilities. He has further submitted that from a bare perusal of the appointment Order dated 13.03.2015 submitted by the GNCTD, it is now an undisputed fact that after being appointed as Parliamentary Secretaries, the Respondent 21 MLAs were also entitled to chauffer driven cars. Moreover, the GNCTD has also stated that one of the Respondents was also reimbursed a sum of Rs. 15479/- on account of transportation expenditure. Hence, the Office space and chauffer driven car/ transport were clearly receivable material gains to which the Respondent 21 MLAs were entitled to after appointment to the said Office. Thus, such baseless provision of the facilities to the Parliamentary Secretaries, without there being any duties, amounts to 'profit' under the doctrine of 'Office of Profit'.

47. The Petitioner has further submitted that the maximum allowance permissible to be granted to a member of the Delhi Legislative Assembly is 'Compensatory Allowance' and the allowances made available to the Parliamentary Secretaries do not fall under the category of 'compensatory allowance' as the Delhi Members Of Legislative Assembly (Removal Of Disqualification Act, 1997 defines 'Compensatory Allowance' as under:

"Compensatory Allowance" means any sum of money payable to the holder of an office by way of daily allowance (such allowance not exceeding the amount of daily allowance to which a member of the Legislative Assembly is entitled under the Members of Legislative Assembly of the National Capital Territory of Delhi (Salaries, Allowances, Pension etc.) Act, 1994 (Delhi Act No. 6 1995)], any conveyance allowance, house rent allowance or travelling allowance for the purpose of enabling him to recoup any expenditure incurred by him in performing the functions of that office". [Emphasis supplied]

48. The Petitioner has further submitted that the 'Delhi Members of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) (Amendment) Bill, 2015' was introduced on 23.06.2015 after the Petitioner's Complaint dated

19.06.2015 merely to save the Respondent MLAs from disqualification on account of holding office of profit because the GNCTD had realized that the appointment of these MLAs as Parliamentary Secretaries amounted to disqualification for holding Office of Profit as envisaged under Section 15 of the GNCTD Act. The said fact is also evident from a bare perusal of the 'Statement of Objects and Reasons' of the said Bill, wherein the GNCTD recognizes that the Office of Parliamentary Secretaries to Ministers attracts disqualification on account of Office of Profit and sought to remove the disqualification retrospectively. The relevant part of the said clause reads as under:

> *"Clause (a) of sub section(1) of Section 15 of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991 provides that a person shall be disqualified for being chosen as, and for being, a member of the Legislative Assembly if he holds any office of the Profit under the Government of India or the Government of any state or the Government of any Union Territory other than an office declared by law made by parliament or by the legislature of any state or by the Legislative Assembly of Delhi or any other Union Territory, not to disqualify its holder."*
>
> *"It is considered necessary to amend The Delhi Members of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) Act, 1997 to declare that the Office of Parliamentary Secretary to the Chief Minister and Minister of the Government of National Capital Territory of Delhi shall not be disqualified and shall be deemed never to have disqualified for being chosen as, or for being, a member of the Legislative Assembly of the National Capital Territory of Delhi." [Emphasis supplied]*

49. The Petitioner has further submitted that in any parliamentary system, the post of Parliamentary Secretary for all practical purposes, is treated as equivalent to that of a Minster. In India also, the Rules of Procedure and conduct of Business in Lok Sabha, Rajya Sabha and State Legislatures define the term 'Minister" to include a Parliamentary Secretary as well. For example:

The Lok Sabha Rules define the Term 'Minister' thus:

> "*Minister" means a member of Council of Ministers and includes a member of Cabinet, a Minister of State, a Deputy Minister or a Parliamentary Secretary.*

The Rajya Sabha Rules define the term 'Minister' thus:

> *"Minister" means a member of Council of Ministers, a Minister of State, a Deputy Minister or a Parliamentary Secretary.*

Himachal Pradesh Legislative Assembly:

> *"Minister" means a member of Council of Ministers, a Chief Parliamentary Secretary or a Parliamentary Secretary.*

Punjab Legislative Assembly:

> *"Minister" means a member of Council of Ministers, a Minister of State, a Deputy Minister, a Chief Parliamentary Secretary or a Parliamentary Secretary.*

West Bengal Legislative Assembly:

> *"Minister" means a member of Council of Ministers, a Minister of State, a Deputy Minister, or a Parliamentary Secretary.*

50. The Petitioner has further submitted that it is worth noting that from the documents furnished by the GNCTD, it is evident that the said Parliamentary Secretaries were attending meetings, which were not advisory in nature and in fact, the said Parliamentary Secretaries had participated in the decision making process, without the sanction of law. Hence, it is evident that the said Parliamentary Secretaries were at a position of influencing and exercising power and patronage, which itself amounts an office of profit, as envisaged under the law. Moreover, in a nutshell, the Parliamentary Secretaries were akin to a Cabinet Ministers and were availing facilities and exercising influence over the administration, without there being any sanction of law.

51. The Petitioner has further submitted that the Constitution of India expressly provides in clause (4) of Article 239AA that the Council of Ministers in the National Capital Territory of Delhi shall consist of 'not more than ten percent of the total number of members in the Legislative Assembly'. As the strength of the Legislative Assembly is of 70 members, the number of members who can be appointed in the Council of Ministers cannot, therefore, exceed seven. Hence, the order appointing 21 members of Delhi Legislative Assembly as

Parliamentary Secretaries to the Ministers, Govt. of NCT of Delhi issued by Principal Secretary (GAD) with the approval of Chief Minister (*vide* F.No. 17/57/2012/GAD/Parl.Secy/356 dated 13.03.2015) resulted in four fold increase in the strength of Ministers. With the appointment of as many as 21 Parliamentary Secretaries, in addition to 7 Ministers already in place, the strength of Council of Ministers went up to 28 in gross violation of the constitutional embargo of having not more than ten percent of the members as Ministers.

52. The Respondents have submitted that since there is no monetary or financial gain whatsoever that is accruing to them, hence the post of Parliamentary Secretary cannot be treated as an 'Office of Profit'. Moreover, in view of the Order dated 08.09.2016 passed by the Hon'ble Delhi High Court whereby the Hon'ble Court was pleased to set aside the appointment order dated 13.03.2015 as illegal and unconstitutional, there remained no office of Parliamentary Secretary as the office ought to be treated as having never existed and therefore the Respondents never held any office of profit.

53. The Respondents have further submitted that the reply of the GNCTD vindicates the stand of the Respondents as it has confirmed the following:

i. No duties whatsoever were assigned to the Parliamentary Secretaries by GAD.

ii. None of the Departments has mentioned of any standing order issued to delineate the duties of 21 Parliamentary Secretaries.

iii. No document relating to appointment provides any description/justification/term of reference/expected outcomes with regard to nature of duties/tasks.

iv. As per letter dated 20.07.2015 of Principle Secretary to Chief Minister, all MLAs were to be provided with office space in their respective assembly constituency. The same was provided to all the 70 MLAs irrespective of their holding of any other office such as that of Chief Minister, Minister, Leader of Opposition, Chief Whip etc.

v. No Parliamentary Secretary was allotted any room/office in the Delhi Legislative Assembly which is clear from the reading of the Order dated 24.09.2015 wherein the Order dated 23.09.2015 vide which it was decided to allot the office was put in abeyance.

vi. No supporting staff of any nature was provided to the Parliamentary Secretaries.

vii. No residence was allotted to any of the MLAs who were appointed as Parliamentary Secretaries.

viii. No entitlement for any telephone connection was provided to any of the Parliamentary Secretaries.

ix. No pecuniary benefit/salary was ever given or claimed by any Parliamentary Secretary.

x. The post of Parliamentary Secretary does not exist as the same was held by the High Court to be unconstitutional vide Order dated 08.09.2016.

54. The Respondents have further submitted that out of the documents submitted by the GNCTD nothing has come on record which could even remotely suggest that any office of profit was held by the Respondents.

55. The Respondents have further submitted that the documents filed by GNCTD establish that the Parliamentary Secretaries neither had any say nor did they participate actively in any of the decision making processes of the Government.

56. The Respondents have further submitted that the amount of Rs. 3,73,871/- spent by Public Works Department to construct cabins with necessary furniture which has been raised as an example and proof of pecuniary gain by the Petitioner was spent on all 70 MLAs and not the 21 Parliamentary Secretaries alone. Moreover, the expenditure of Rs. 11,75,828 is not on the Parliamentary Secretaries but for the executive chairs, tables, visitor chairs etc. for the entire Assembly building.

57. The Respondents have further submitted that the RTI Reply filed by Mr. Vivek Garg cannot be relied upon by the Petitioner more so when his application for impleadment has already been decided and disposed off by the Commission.

58. The Respondents have further submitted that there is no conflict of interest that is visible and the entire argument of conflict of interest is bereft of any merit.

ISSUES UNDER CONSIDERATION

59. In order to answer the present reference case the following issues need to be analysed and answered:

I. Whether the Respondent MLAs held the office of Parliamentary Secretary?

II. Whether the office of Parliamentary Secretary is an office under the Government?

III. Whether it is an office which yields profit or has the potential of yielding profit?

IV. Whether the office of Parliamentary Secretary has executive nature of functions?

V. Whether the office of Parliamentary Secretary can be said to be an un-exempted office of profit?

ANALYSIS OF THE LEGAL POSITION

60. In the instant reference case there is no doubt on the fact that the office of Parliamentary Secretary was an 'office' as required to fall within the purview of the 'Office of Profit' doctrine irrespective of the fact that these Respondents were appointed as Parliamentary Secretaries without the creation of such a post by any law or order.

61. The Hon'ble Supreme Court has defined the concept of holding an office of profit *'under the Government'* in the following manner:

In the case of *Maulana Abdul Shakur v. Rikhab Chand* [1958 SCR 387: AIR 1958 SC 52] the Hon'ble Supreme Court held as under:

> *"12. The power of the Government to appoint a person to an office of profit or to continue him in that office or revoke his appointment at their discretion and payment from out of Government revenues are important factors in determining whether that person is holding an office of profit under the Government though payment from a source other than Government revenue is not always a decisive factor".*

In the case of *Guru Gobinda Basu v. Sankari Prasad Ghosal* [(1964) 4 SCR 311: AIR 1964 SC 254] the Hon'ble Supreme Court held as under:

> *"14. [...] we have no hesitation in saying that where the several elements, the power to appoint, the power to dismiss, the power to control and give directions as to the manner in which the duties of the office are to be performed, and the power to determine the question of remuneration are all present in a given case, then the officer in question holds the office under the authority so empowered".*

In the case of *Biharilal Dobray v. Roshan Lal Dobray* [(1984) 1 SCC 551] the Hon'ble Supreme Court held as under:

> *"5. The object of enacting Article 191(1)(a) is plain. A person who is elected to a Legislature should be free to carry on his duties fearlessly without being subjected to any kind of governmental pressure. If such a person is holding an office which brings him remuneration and the Government has a voice in his continuance in that office, there is every likelihood of such person succumbing to the wishes of Government. Article 191(1)(a) is intended to eliminate the possibility of a conflict between duty and interest and to maintain the purity of the Legislatures. The term "office of profit under the Government" used in the above clause though indeterminate is an expression of wider import than a post held under the Government which is dealt with in Part XIV of the Constitution. For holding an office of profit under the Government a person need not be in the service of the Government and there need not be any relationship of master and servant between them. An office of profit involves two elements, namely, that there should be an office and that it should carry some remuneration. In order to determine whether a person holds an office of profit under the Government several tests are ordinarily applied such as whether the Government makes the appointment, whether the Government has the right to remove or dismiss the holder of the office, whether the Government pays the remuneration, whether the functions performed by the holder are carried on by him for the Government and whether the Government has control over the duties and functions of the holder. Whether an office in order to be characterised as an office of profit under the Government should satisfy all these tests or whether any one or more of them may be decisive of its true nature has been the subject-matter of several cases decided by this Court but no decision appears to lay down conclusively the characteristics of an office of profit under the Government although the Court has no doubt determined in each case whether the particular office involved in it was such an office or not having regard to its features". [Emphasis Supplied]*

In the case of *Pradyut Bordoloi v. Swapan Roy* [(2001) 2 SCC 19] the Hon'ble Supreme Court held as under:

> *"6. The phrase "office of profit" is not defined in the Constitution. By a series of decisions (see Abdul Shakur v. Rikhab Chand [AIR 1958 SC 52 : 1958 SCR 387] ; M. Ramappa v. Sangappa [AIR 1958 SC 937 : 1959 SCR 1167] ; Guru Gobinda Basu v. Sankari Prasad Ghosal [AIR 1964 SC 254 : (1964) 4 SCR 311] and Shivamurthy Swami Inamdar v. Agadi Sanganna Andanappa [(1971) 3 SCC 870] this court has laid down the tests for finding out whether the office in question is an office of profit under a Government. These tests are (1) whether the Government makes the appointment; (2) whether the Government has the right to remove or dismiss the holder; (3) whether the Government pays the remuneration; (4) what are the functions of the holder? Does he perform them for the Government; and (5) does the Government exercise any control over the performance of those functions?*
>
> *7. In Guru Gobinda Basu v. Sankari Prasad Ghosal [AIR 1964 SC 254: (1964) 4 SCR 311] the Constitution Bench emphasised the distinction between the holder of an office of profit under the Government and the holder of a post or service under the Government and held that for holding an office of profit under the Government, one need not be in the service of Government and there need be no relationship of master and servant between them. Several factors entering into the determination of question are: (i) the appointing authority, (ii) the authority vested with power to terminate the appointment, (iii) the authority which determines the remuneration, (iv) the source from which the remuneration is paid, and (v) the authority vested with power to control the manner in which the duties of the office are discharged and to give directions in that behalf. But all these factors need not coexist. Mere absence of one of the factors may not negate the overall test. The decisive test for determining whether a person holds any office of profit under the Government, the Constitution Bench holds, is the test of appointment; stress on other tests will depend on facts of each case. The source from which the remuneration is paid is not by itself decisive or material.*
>
> *[…]*
>
> *14. Posed with the perplexed problem — whether a person holds an office under the Government, the first and foremost question to be asked is: Whether the Government has power to appoint and remove the person on and from the office? If the answer is in the negative, no further inquiry is called for, the basic determinative test having failed. If the answer be a positive one, further probe has to go on finding answers to questions framed in Shivamurthy case [(1971) 3 SCC 870] and searching for how many of the factors pointed out in Guru Gobinda Basu case [AIR 1964 SC 254 : (1964) 4 SCR 311] do exist? The totality of the facts and circumstances reviewed in the light of the provisions of relevant Act, if any, would lead to an inference being drawn if the office held is under the Government. The inquisitive overview-eye would finally query: On account of holding of such office would the Government be in a position to so influence him as to interfere with his independence in functioning as a Member of Legislative Assembly and/or would his holding of the two offices — one under the Government and the other being a Member of Legislative Assembly, involve a conflict of interests inter se? This is how the issue has to be approached and resolved". [Emphasis Supplied]*

62. Reliance may be placed on the above noted paragraphs to analyse whether the office of Parliamentary Secretary is an office under the Government or not. It is an undisputed and clear fact that the Parliamentary Secretaries were appointed by the GNCTD and could be removed by the GNCTD by revoking the order of appointment or otherwise and every expense related to this office was paid out of Government revenues. The work to be done by a Parliamentary Secretary was to be allocated by the concerned minister and the work would either be done by way of delegated authority or would return to the Minister in supervisory authority and in both cases there is direct and continuous control of the Government on the functionary occupying this office. Therefore, there can be no dispute on the fact that the office of Parliamentary Secretary was an office under the Government.

63. In this context it is not out of place to state the historical background of the 'Office of Profit' doctrine as traced and observed by the Hon'ble Supreme Court of India in *Consumer Education & Research Society v. Union of India* [(2009) 9 SCC 648].

The expression 'office of profit' is not defined in the Constitution and the view that certain offices or positions held by a member of the legislature may be either incompatible with his/her duty as an elected representative of the people, or affect his/her independence, and thus weaken the loyalty to his/her constituency, and therefore

should disqualify the holder thereof, had its origin in the parliamentary history of the United Kingdom (See "The Introduction to the Bhargava Committee Report on Office of Profit", dated 22.10.1955). The Court traced the history of 'Office of Profit' as going back to about four centuries in the United Kingdom and categorised it under four phases. The first was the "privilege" phase (prior to 1640). The second was the "corruption" phase (from 1640). The third was the "ministerial responsibility" phase (after 1705).

In the first phase, the English Parliament claimed priority over the services of its Members and it was considered derogatory to its privilege if any of its Members accepted some other office which would require a great deal of their time and attention. This led to the evolution of the idea that the holding of certain offices would be incompatible with the responsibilities of a Member of Parliament.

During the second phase, there was a protracted conflict between the Crown and the House of Commons. Loyalty to the King and the loyalty to the House of Commons representing the will of the people became growingly irreconcilable and it was thought that if any Member accepted an "office of profit" under the Crown, there was every chance of his loyalty to Parliament being compromised.

In the third phase, the King was reduced to the position of a constitutional head and the Cabinet functioning in the name of the Crown became the centre of the executive Government. The Privy Councillors, who during the second phase were invariably considered to be the henchmen of the King and were as such looked upon with suspicion by the House of Commons, yielded place to the Ministers, who for some time were also disqualified from holding a seat in the House. Later, it came to be recognised that the application of the disqualification rule to incumbent Ministers was too extreme and with the intent of ensuring effective coordination between the executive and the legislature, it was accepted that the Members of the executive should be represented in Parliament. This recognition led to the passing of several enactments by the British Parliament. The Re-election of Ministers Act enacted by the British Parliament in 1919 and 1926 required any Member who was appointed to a "political office" to seek re-election.

Section 26(1)(a) of the Government of India Act, 1935 provided that a person shall be disqualified for being chosen as, and for being, a Member of either Chamber if he held any office of profit under the Crown of India, other than an office declared by the Act of the Federal Legislature not to disqualify its holder. When the Constitution of India came into force on 26.01.1950 declaring that a person holding an office of profit would be disqualified, the Explanation to Article 102 clarified that a person who is a Minister (either for the Union or for any State) shall not be deemed to hold an office of profit. However, there existed Ministers of State as also Deputy Ministers in the Union Government who were not specifically exempted from disqualification under Article 102 because the expression "Minister" was construed as referring only to a Cabinet Minister.

In order to address this situation, the Parliament (Prevention of Disqualification) Act, 1950 was enacted. Section 2 of the said Act provided:

> *"2. Prevention of disqualification for membership of Parliament.—A person shall not be disqualified for being chosen as, and for being, a member of Parliament by reason only of the fact that he holds any of the following offices of profit under the Government of India or the Government of any State, namely, an office of Minister of State or a Deputy Minister or a Parliamentary Secretary or a Parliamentary Under-Secretary."*

This was followed by the Parliament (Prevention of Disqualification) Act, 1951 declaring that certain offices (specified in Section 2 thereof) under the Government shall not disqualify, and shall be deemed never to have disqualified the holders thereof for being chosen as, or for being, Members of Parliament. The said Act was given retrospective effect from 26.01.1950.

In 1954, a committee was constituted under the chairmanship of Pandit Thakur Das Bhargava to study the various matters connected with the disqualification of MPs and to make recommendations in order to enable the Government to consider the manner in which a comprehensive legislation should be brought. The Committee submitted its report in 1955.

In 1959, the Parliament (Prevention of Disqualification) Act, 1959 was enacted, thereby declaring that certain offices of profit under the Government shall not disqualify the holders thereof for being chosen as, or for being, Members of Parliament.

64. It is evident from a perusal of the above history that the genesis of the theory of 'Office of Profit' lies in the conflict between the House of Commons and the Crown in Britain and at the core of this theory is the objective to avoid any possible conflict of interest.

65. It is also noteworthy to mention herein the observation of the Hon'ble High Court of Orissa in the case of *Banomali Behera v. Markanda Mahapatra* [AIR 1961 Ori 205] where it held as under:

> *"16. The expression 'office of profit' has not been defined anywhere though it is also found mentioned in several provisions of our Constitution, like Articles 58(2), 59(2), 64, 66(4)(a) and 191(1)(a) of the Constitution. The principle underlying the disqualification contemplated under the aforesaid provisions of the Constitution and under Sec. 10(9)(c) of the Act is that there shall be no conflict between the duties of a Member of the Grama Panchayat or a Member of the State Assembly Or Parliament, as such, and his private interest, and that indebtedness of such a person to Government or to any local authority is incompatible with his independence as a representative of the people. It is primarily to achieve that object, these disqualifications have been placed in the Statute". [Emphasis Supplied]*

66. The former Secretary General of the Lok Sabha, Shri P.D.T. Achary also noted this history of the 'Office of Profit' doctrine in an article titled 'It's about propriety, not constitutionality' published in *The Hindu* on 21.06.2016 and the relevant extract of his article is as under:

> *"'Office of Profit' is not a term which can be easily understood or explained. This concept originated in the House of Commons in England. The history of British House of Commons is the history of conflicts with the crown. The king, in his efforts to undermine the House of Commons, used to offer positions of executive nature with pecuniary benefits to its members and buy their loyalty. This practice kept the members out of the House most of the time and thus there arose a conflict between their duty and their personal interest. The continued absence of a large number of members because of their preoccupation with executive functions weakened the House of Commons in course of time and therefore it passed a law prohibiting its members from accepting any office from the Crown which gave them any pecuniary benefits. It was provided that any such office which a member may accept will disqualify him.*
>
> *In essence, the law of office of profit was introduced to end the conflict between the duty of a member of the legislature towards the House and public and his personal interest". [Emphasis supplied]*

67. The Hon'ble Supreme Court of India has held in the case of *Satrucharla Chandrasekhar Raju v. Vyricherla Pradeep* Kumar Dev [(1992) 4 SCC 404] that the object of enacting Articles 102(1)(a) and 191(1)(a) is that there should not be any conflict between the duties and interests of an elected member and to see that such an elected member can carry on freely and fearlessly his duties without being subjected to any kind of governmental pressure and that these Articles are intended to eliminate the possibility of such a conflict between duty and interest so that the purity of legislature is unaffected. The relevant paragraph of the order is as under:

> *"18. Articles 102(1)(a) and 191(1)(a) are incorporated in order to eliminate or reduce the risk of conflict between the duty and interest amongst the members of the Legislature and to ensure that the Legislature does not contain persons who have received benefits from the Executive and who consequently being under an obligation might be amenable to its influence. Therefore this object must be borne in mind in interpreting these Articles. [Emphasis Supplied]*

The Court placed reliance on the below mentioned paragraph from the judgment in *Biharilal Dobray v. Roshan Lal Dobray* [(1984) 1 SCC 551]:

> *"5. The object of enacting Article 191(1)(a) is plain. A person who is elected to a Legislature should be free to carry on his duties fearlessly without being subjected to any kind of governmental pressure. If such a person is holding an office which brings him remuneration and the Government has a voice in his continuance in that office, there is every likelihood of such person succumbing to the wishes of Government. Article 191(1)(a) is intended to eliminate the possibility of a conflict between duty and interest and to maintain the purity of the Legislatures." [Emphasis Supplied]*

The Court also placed reliance on the below mentioned paragraph from the judgment in *Ashok Kumar Bhattacharyya v. Ajoy Biswas* [(1985) 1 SCC 151]:

> *'16. The true principle behind this provision in Article 102(1)(a) is that there should not be any conflict between the duties and the interest of an elected member'." [Emphasis supplied]*

68. The Hon'ble Supreme Court of India has held in the case of *M.V. Rajashekaran v. Vatal Nagaraj* [(2002) 2 SCC 704] as under:

> *"2. [...]The very object of providing the disqualification under Article 191 of the Constitution is that the person elected to the Legislative Assembly or the Legislative Council should be free to carry on his duty fearlessly without being subjected to any kind of governmental pressure. The*

Court, therefore is required to find out as to whether there exists any nexus between the duties discharged by the candidate and the Government, and that a conflict is bound to arise between impartial discharge of such duties in course of his employment with the duties which he is required to discharge as a Member of Legislature on being elected. While examining the aforesaid question the Court has to look at the substance and not the form and, further it is not necessary that all factors and tests laid down in various cases must be conjointly present so as to constitute the holding of an office of profit under the Government". [Emphasis supplied]

69. Thus it is abundantly clear and well settled that the objective of prescribing a disqualification for holding 'Office of Profit' is aimed at negating the possibility of any member of a legislature continuing to serve as a representative of the people when she has jeopardised her independence by accepting the favour of the Government in the form of an office of profit.

70. Coming to the question over the office of Parliamentary Secretary, it is worth noting that the Constitution of India makes no reference to the post of a Parliamentary Secretary.

Article 163(1) of the Constitution provides as under:

"There shall be a Council of Ministers with the; Chief Minister at the head to aid and advise the Governor in the exercise of his functions, except in so far as he is by or under this Constitution required 'to exercise his functions or any of them in his discretion".

Article 164 (1) provides that:

"The Chief Minister shall be appointed by the Governor and the other Ministers shall be appointed by the Governor on the advice of the Chief Minister, and the Ministers shall hold office during the pleasure of the Governor".

Article 164 (2) provides that the Council of Ministers shall be collectively responsible to the Legislative Assembly of the State. Article 164 (5) provides that the salaries and allowances of Ministers shall be such as the Legislature of the State may from time to tune by law determine and, until the Legislature of the State so determines, shall be as specified in the Second Schedule.

The Constitution does not make any reference to Parliamentary Secretaries or even to Deputy Ministers. Under Article 208 of the Constitution it is provided by Clause (1) as under:

"A House of the Legislature of a State may make rules for regulating, subject to the provisions of this Constitution, its procedure and the conduct of its business".

71. The petitioner has correctly pointed to the fact that the Respondents were administered with the oaths of office which is very similar to the oath of office administered to Ministers. Section 43(1) of The GNCTD Act, 1991 states as under:

"Before a Minister enters upon his office, the Lieutenant Governor shall administer to him the oaths of office and of secrecy according to the forms set out for the purpose in the Schedule".

It is noteworthy to mention that there was no law or order by which the post of Parliamentary Secretary was created and hence there was nothing in law that necessitated the administration of the oath of office on these Parliamentary Secretaries. It is also pertinent to note that the Oaths are prescribed under the GNCTD Act, 1991 only for candidate for election to the Legislative Assembly, the members of the Legislative Assembly and members of the Council of Ministers. The Respondent MLAs had already taken their respective oaths as Members of the Legislative Assembly and the fact that the GNCTD considered it as a necessity and the Chief Minister administered the oath on these Parliamentary Secretaries is proof of the fact that in the eyes of the GNCTD and for all practical purposes these Parliamentary Secretaries were treated as Ministers and the Oath Ceremony was conducted to give the aura of office to these Parliamentary Secretaries.

72. It is pertinent to note the observations made by the Hon'ble Gujarat High Court in the case of *Laljibhai Jodhabhai Bar vs. Vinodchandra Jethalal Patel* [AIR (1963) Guj 297] where the Hon'ble Court was pleased to hold that the position of a Parliamentary Secretary is very nearly akin to that of a Deputy Minister. The relevant extract of the observations made by the Hon'ble Gujarat High Court is as under:

"12. [...] When we turn to the various provisions contained in these rules, we find that there are provisions relating to the duties, powers and privileges of a Minister. In view of the definition given in Rule 2 (m) these powers, duties and functions of a Minister are liable to be exercised by a Parliamentary Secretary unless the context otherwise requires. Rule 45

provides that with the permission of the Speaker, a Minister may make a statement on a matter of public importance. On such statement no discussion shall be allowed but members may be permitted to ask questions for the purpose of eliciting further information in regard to the statement. Rule 61 provides that the Chief Minister or any other Minister, whether he has previously taken part in the discussion or not, shall on behalf of the Government have a general right of explaining the position of the Government at the end of the discussion, and the Speaker may inquire how much time will be required for the speech so that he may fix the hour by which the discussion shall conclude. There are several other rules like rules relating to the reply to questions asked, relating to reply to supplementary questions and relating to withdrawal of questions, where a reference has been made to a Minister. Unless the context would otherwise require, the expression Minister would, having regard to the definition clause, include a Parliamentary Secretary. Rule 85 provides as under:

> *85 (1) A member who has resigned the office of Minister may with the consent of the Speaker, make a personal statement in explanation of his resignation.*
> *(2) Such a statement shall be made after questions and before the list of business for the day is entered upon.*
> *(3) On such statement no debate shall be allowed :*
> *Provided that a Minister, shall be entitled after the member has made his statement, to make a statement pertinent thereto.*

This rule would equally apply to a Parliamentary Secretary by virtue of the provisions contained in Rule 2 (m). "There are various other rules applicable to Ministers which may equally apply to a Parliamentary Secretary. <u>These rules throw some light on the nature of the functions and duties of a Parliamentary Secretary</u>, The Parliamentary Secretary is equated with a Minister for the purpose of the Rules except where the context otherwise requires". [Emphasis Supplied]

The Court went on to observe that it is relevant to refer to some authoritative text books which state the position of Parliamentary Secretary in England as this office, like many others, seems to be borrowed from England and note as under:

"20. In the book "Government and Parliament" by the Rt. Honourable Lord Morrison of Lambeth, Second Edition, at page 59 it is stated as under:- "Each departmental Minister usually has a Parliamentary Secretary to assist him, but in some-of the larger Departments there may be two, or even three at the' Scottish office. Mostly they are Members of the House of Commons, or if not then of the House of Lords. They must not, of course, be confused with the Permanent Secretary who is the senior civil servant in the Department. Now-a days they are selected by the Prime Minister in consultation with the Minister concerned."

At page 99 it has been observed by the learned author that Whips, <u>Parliamentary Secretaries and Parliamentary Private' Secretaries, and the leader of the House are part of the machinery of Government</u>.

At page 115 it is observed' that all departmental Ministers have a Parliamentary Secretary or Secretaries' who are members of the 'Government, that Parliamentary Secretaries' are available to assist their' Ministers in the Office and on the Front Bench, 'that among their, important duties is to "be accessible to' Members who 'seek information' or wish to make representations or complaints so that their Ministers may be made aware of parliamentary apprehensions and opinions," and that <u>many of these matters can be dealt; with by the Parliamentary Secretary on his own responsibility.</u>

[...]

23. <u>A reference to these books clearly shows that in Great Britain, Parliamentary Secretaries-are regarded as forming part of the Government.</u> On the materials that have been placed before us, we are of the view that <u>Parliamentary Secretaries in this State of Gujarat also form part of the Government</u> and they cannot be regarded as being in the service of the Government within the meaning of Section 123(7) of the Representation' Of the People Act, 1951." [Emphasis Supplied]

73. The Hon'ble Supreme Court of India has ventured into summarising the concept of 'Office of Profit' in the case of *Jaya Bachchan vs. Union of India* [(2006) 5 SCC 266] and the oft quoted paragraph of this landmark case is as under:

> *"6. An office of profit is an office which is capable of yielding a profit or pecuniary gain. Holding an office under the Central or State Government, to which some pay, salary, emolument, remuneration or non-compensatory allowance is attached, is "holding an office of profit". The question whether a person holds an office of profit is required to be interpreted in a realistic manner. Nature of the payment must be considered as a matter of substance rather than of form. Nomenclature is not important. In fact, mere use of the word "honorarium" cannot take the payment out of the purview of profit, if there is pecuniary gain for the recipient. Payment of honorarium, in addition to daily allowances in the nature of compensatory allowances, rent free accommodation and chauffeur driven car at State expense, are clearly in the nature of remuneration and a source of pecuniary gain and hence constitute profit. For deciding the question as to whether one is holding an office of profit or not, what is relevant is whether the office is capable of yielding a profit or pecuniary gain and not whether the person actually obtained a monetary gain. If the "pecuniary gain" is "receivable" in connection with the office then it becomes an office of profit, irrespective of whether such pecuniary gain is actually received or not. If the office carries with it, or entitles the holder to, any pecuniary gain other than reimbursement of out of pocket/actual expenses, then the office will be an office of profit for the purpose of Article 102(1)(a). This position of law stands settled for over half a century commencing from the decisions of Ravanna Subanna v. G.S. Kaggeerappa [AIR 1954 SC 653] , Shivamurthy Swami Inamdar v. Agadi Sanganna Andanappa [(1971) 3 SCC 870] , Satrucharla Chandrasekhar Raju v. Vyricherla Pradeep Kumar Dev [(1992) 4 SCC 404] and Shibu Soren v. Dayanand Sahay [(2001) 7 SCC 425]". [Emphasis Supplied]*

74. A perusal of the above noted paragraph from the judgment of *Jaya Bachchan vs. Union of India (supra)* reveals that the Hon'ble Supreme Court has laid down an important position of law on this point that it is not the actual *'receipt'* of profit but the *'potential'* of profit that is the deciding factor on the question as to whether an office is an 'Office of Profit' or not. However, while it is a landmark judgment on this point, it is clear that the Hon'ble Supreme Court did not venture into the definition of 'Office of Profit' which includes other factors which are to be tested apart from the profit element. Therefore, *Jaya Bachchan vs. Union of India (supra)* can be relied upon to state that it is the potential of the office rather than the actual receipt by the incumbent of the office which is to be examined while examining the question of 'Office of Profit' and this examination must include all the relevant criteria as laid down by the Hon'ble Courts from time to time.

75. It is pertinent to note in this context that the Nineteenth Report of the Joint Parliamentary Committee on Offices of Profit (Sixteenth Lok Sabha) which was presented to the Lok Sabha on 28.03.2017 and laid before the Rajya Sabha on 28.03.2017 has noted as under:

> *"4. The expression "holds any office of profit under the Government" occurring in Article 102 (1)(a) and 191(1)(a) has nowhere been defined precisely. However, in order to determine whether an office held by a person is an office of profit under the Government, the Joint Committee on Office of Profit, in their Tenth Report (7th Lok Sabha), presented to Lok Sabha on 7 May, 1984, (Annexure-II) laid down the following guiding principles:-*
>
> > *"The broad criteria for the determination of the question whether an office held by a person is an office of profit have been laid down in judicial pronouncements. If the Government exercises control over the appointment to an dismissal from the office and over the performance and functions of the office and in case the remuneration or pecuniary gain, either tangible or intangible in nature, flows from such office irrespective of whether the holder for the time being actually receives such remuneration or gain or not, the office should be held to be an office of profit under the Government Otherwise, the object of imposition of the disqualification as envisaged in the Constitution will become frustrated. This first basic principle should be the guiding factor in offering positions to a member of the Legislature."*
>
> *5. Keeping the above position in view, the Joint Committee on Offices of Profit, have been following the undernoted criteria to test the Committees, Commissions, etc. for deciding the question as to which of the offices should disqualify and which should not disqualify a person for being chosen as, and for being a Member of Parliament:-*

> *(i) Whether the holder draws any remuneration, like sitting fee, honorarium, salary, etc. i.e. any remuneration other than the 'compensatory allowance' as defined in Section 2(a) of the Parliament (Prevention of Disqualification) Act, 1959; (The Principle thus is that if a member draws not more than what is required to cover the actual out of Pocket expenses and does not give him pecuniary benefit, it will not act as a disqualification)*
>
> *(ii) Whether the body in which an office is held, exercises executive, legislative or judicial powers or confers powers of disbursement of funds, allotment of lands, issue of licenses, etc., or gives powers of appointment, grant of scholarships, etc; and*
>
> *(iii) Whether the body in which an office is held enables the holder to wield influence or power by way of patronage.*
>
> *If reply to any of the above criteria is in affirmative then the office in question will entail disqualification". [Emphasis Supplied]*

76. The tests adopted by the Joint Parliamentary Committee on Offices of Profit appear as a very apt adaptation of the tests provided under various judicial verdicts given by the Supreme Court of India and various High Courts and thus it is not out of place to place reliance on the same in deciding upon this reference.

77. In this context it may be noted that the Hon'ble Supreme Court was faced with the question about violation of Article 164(1A) by the appointment of Parliamentary Secretaries in the case of *Bimolangshu Roy v. State of Assam,* Transferred Case (Civil) No. 169 of 2006 [(2017) SCC Online SC 813, judgment dated 26.07.2017]. However, the Hon'ble Supreme Court framed the preliminary issue on the competence of the Assembly of the State of Assam to enact a law which created the office of Parliamentary Secretaries and answered the same in the negative by holding that the scheme of Article 194 does not expressly authorize the State Legislature to create offices such as the office of Parliamentary Secretary as an elaborate and explicit Constitutional arrangement exists with respect to the Legislature and various offices connected with it and even matters incidental to them and therefore it would be wholly irrational way of construing the scope of Article 194(3) and Entry 39 of List II to read the authority to create new offices of the legislature by way of a legislation made by the Legislative Assembly.

78. Thus, it is now a settled position of law that the State Legislative Assemblies do not have the competence to create posts of officers of the state legislature. Moreover, it is a settled position of law that the scope of executive power extends to the limits of the legislative competence of the concerned legislature. Therefore, the appointment of the Respondents on the post of Parliamentary Secretaries could not have been as an officer of the State Legislative Assembly when such a post did not exist at all and when the legislature itself had no power to create such a post. Moreover, there is no material to suggest that the post of Parliamentary Secretary was intended to be a post of officer of the state legislature. Therefore, by such elimination warranted by the above noted judgment of Hon'ble Supreme Court in *Bimolangshu Roy v. State of Assam (supra)* the only conclusion that can be made is that the appointment of the Respondents to the office of Parliamentary Secretaries was in the domain of the executive and the office of Parliamentary Secretary was therefore an executive office.

79. The Hon'ble Bombay High Court in the case of *Aires Rodrigues v. State of Goa* [2009 Supp Bom CR 16] examined the question over the appointment of Parliamentary Secretaries. While there were no clear official earmarking of duties and functions of these Parliamentary Secretaries in the state of Goa, the Hon'ble Court took cognizance of the historical origin of the concept, the nature of the office and the practice and law in other jurisdictions like Canada and held that the Parliamentary Secretaries were akin to Cabinet Ministers and quashed their appointment order for being arbitrary, unjustifiable, unconstitutional and serving of no public interest. The relevant extract of the judgment is as under:

> *"16. History shows that the post of 'Parliamentary Secretaries' is not a new phenomenon. 'Parliamentary Secretaries' were appointed by different political parties in power probably with the idea of accommodating some of their elected members. The record speaks that even in earlier times, 'Parliamentary Secretaries' were appointed by the party in power. Some of the State Governments enacted laws in relation to appointment of 'Parliamentary Secretaries' and even their terms and conditions of appointment and dues and perks payable to them were legislated upon. The State of Karnataka has enacted The Karnataka Parliamentary Secretaries Allowances Act, 1963 while Government of Assam also enacted The Assam Parliamentary Secretaries (Appointment, Salaries, Allowances and Miscellaneous Provisions) Act, 2004 and even reference can be made to the following Legislations:—*

1. The Arunachal Pradesh Parliamentary Secretaries (Appointment, Salaries, Allowances and Miscellaneous Provisions) Ordinance, 2007.
2. The Parliamentary Secretary (Payment of Special Allowance And Prevention of Disqualification) Act, 1971. (Pondicherry).
3. The West Bengal Legislature (Removal of Disqualifications) Act, 1952.
[...]

18. All these laws were enacted by the competent Legislatures to provide methodology for appointment and grant of salary allowances and perks to the 'Parliamentary Secretaries'. For example, the law in relation to State of Assam requires the Chief Minister to apply his mind with regard to the circumstances and the need of situations and then may appoint 'Parliamentary Secretaries' for such function as are deemed fit and proper. Their functions and duties were expected to be specified in a proper manner. The object behind such legislation obviously was to have better governance as well as to ensure public good. Any of these laws enacted by respective States are bound to be in conformity to the Constitutional law and must give meaning to the Constitutional mandate. They cannot and ought not to be in violation to the Constitutional mandate.

20. The report [study report on 'Parliamentary Secretaries' prepared by the Ministry of Parliamentary Affairs, Union of India] specifically notices that the 'Parliamentary Secretaries' were to perform such functions as may be assigned by the Minister and oath of secrecy administered to them indicated that they would have access to official papers. As per this report, the practice of appointing 'Parliamentary Secretary' was primarily followed till the year 1967. From 1967 to 1984, no 'Parliamentary Secretaries' were appointed. However, after 1984, this practice had been reviving though sparingly.

21. On 4th November, 1985, the Ministry of Parliamentary Affairs and Tourism, Government of India issued an office memorandum in relation to the 'Parliamentary Secretaries' which reads thus-

"NO. F.4(25)/84-WS
GOVERNMENT OF INDIA

MINISTRY OF PARLIAMENTARY AFFAIRS & TOURISM

(DEPTT. OF PARLIAMENTARY AFFAIRS)

87, Parliament House,

New Delhi.

4th November, 1985

OFFICE MEMORANDUM

Subject: Functions of Parliamentary Secretaries

The undersigned is directed to say that the question of norms of Parliamentary Secretaries has been under consideration of the Government for some time past. It has now been decided with the approval of the Prime Minister that the function of a Parliamentary Secretary will be as under:—

(i) He will assist the Minister in his official work;
(ii) He will represent the Department/Ministry in the House to which he belongs; and
(iii) He will perform such functions as may be assigned to him by the Minister.
Note: Since an Oath of Secrecy is administered to a Parliamentary Secretary, he will have access to official papers.
(D.R. Tiwari)
Deputy Secretary to the Govt. of India
To
1. All Ministries/Departments of the Government of India.
2. Cabinet Secretariat (Five copies) with reference their D.O. No. 55/1/2/84/Cab.
3. Prime Minister's Offices, Ministry of Home Affairs (M&G Section-5 copies)"
[...]

61. It needs to be examined as to what is the purpose of appointing 'Parliamentary Secretaries' as it appears that there is no regular cadre carrying this nomenclature originating from any statute or deriving authority from the Constitution of India. In other words, they are not part of the regular State services nor Executive authorities forming part of the bodies involved in Governance of the State. Number of Cabinet Ministers/State Ministers as contemplated under section 164(1A) are appointed immediately after election. At the same time, the 'Parliamentary Secretaries' are appointed. Normally and as even conceded now in the reply affidavit, their functions and duties are to assist the Minister with whom they are working. They are given all privileges and perks of a Minister. Their staff is equivalent to that of a Minister. It cannot be said that they do not have access to the Government records and Government files. Their main role, as it appears from the record before us is to participate in Government functioning, may be with some limitations but they are no way outsiders to the Government functioning, its records and interaction with the public. The distinction between these two is primarily marked with their nomenclature. One is called a regular Minister while other is called 'Parliamentary Secretary'. Which is and what is the main line of distinction between these two public officers is a question left to anybody's imagination and in any case, the record reflects nothing. Viewed from the normal conduct of the Government, these appointments are primarily made with the purpose of accommodating an elected member who could not be included in the regular Cabinet for one reason or the other and primarily for the limitation contained in Article 164(1A) of the Constitution. They are given the status, functions and privileges of a Minister though without the title of the Minister. The situation created as a result of this exercise of power does appear to be paradoxical as, in fact, 'Parliamentary Secretary' carry all that a Minister does except the name. 'Minister personally' is de jure Minister while the Parliamentary Secretary is Minister de facto who exercises all such authority, power, perks, status and privileges of Minister.

80. [...] The motive to appoint Respondent Nos. 2 to 4 as Parliamentary Secretaries in the rank and status of Cabinet Ministers was merely an attempt to create political balance by accommodating the elected members. Lack of any reasoning further supported by the fact that it was not even considered appropriate to spell out the duty and function of the persons appointed to such high public office in the State beforehand and granting them rank and status of Cabinet Ministers, is sufficiently suggestive of unjustifiable motive on the part of the authorities concerned and it entirely defeats the very purpose even if it is assumed that such a power of appointment and administering oath indeed vested in the Chief Minister.

[...]

83. As far as Respondent Nos. 2 and 4 are concerned, they have been appointed to a public office with the nomenclature of Parliamentary Secretaries with cabinet rank and they are to perform duties and functions in the respective ministries. They would represent the government in the Assembly and would, while assisting the Chief Minister, have the authority to pass appropriate orders. They, obviously, participate in the decision making process and take decisions. Thus, equivalence of status and rank is clubbed with the functions, duties, responsibilities and privileges of that post and, therefore, in the spirit and substance they have been appointed as Cabinet Ministers/Ministers, may be under the expression of "Parliamentary Secretaries". We have already noticed that the Parliamentary Secretary is not a regular post created in furtherance of exercise of any statutory power and State of Goa has not framed any law in that behalf. The appointment of Parliamentary Secretaries alleged to have been made by the Chief Minister would fall within the constitution of the council of Ministers. If these appointments of Parliamentary Secretaries are to relate to the appointments in the State Legislature, then there should exist a codified law in relation to requirements, conditions of service, qualifications for appointment to the post or the Governor of the State, after consultation with the Speaker of the Assembly in the manner specified under Article 187(3) of the Constitution of India can make such appointments. Admittedly, that is not the case here. Thus, these appointments are not in the service cadre of the Legislative Assembly and in fact that is not even the case of the State". [Emphasis Supplied]

80. The Hon'ble Punjab and Haryana High Court has also examined the issue of appointment of Parliamentary Secretaries in the case of *Jagmohan Singh Bhatti v. Union of India,* CWP No. 15186 of 2015 (O&M) [2017 SCC OnLine P&H 2150] and while setting aside the said appointment, the Hon'ble High Court observed as under:

"74. The Chief Parliamentary Secretaries/Parliamentary Secretaries are indeed appointed from amongst the elected members of the Legislative Assembly of the State; they are Junior Ministers who change with the Government of the day. They assist their chief in the parliamentary or political side of his work, as well as in the administration of his department.

78. Chief Parliamentary Secretaries being akin to and similar to Ministers in the House of the Legislative Assembly, their appointment as such amounts to clear infraction and negation of the Constitution (Ninety-first Amendment) Act, 2003. Such appointments are, therefore, contrary to the Constitutional intent of limiting the number of Ministers in a House of Legislative Assembly so as to not to exceed more than fifteen per cent. The appointments of respondents No. 7 to 10 are in fact a roundabout way of bypassing the Constitutional mandate as contained in Article 164 (1A) of the Constitution and, therefore, have to be invalidated". [Emphasis Supplied]

81. The Hon'ble Calcutta High Court has also examined the issue of appointment of Parliamentary Secretaries in the West Bengal Legislative Assembly in the case of *Vishak Bhattacharya v. State of West Bengal* [AIR 2015 Cal 187] and the relevant extract of the observations made by the Hon'ble Court are as follows:

"43. Similarly Articles 186 and 187 cannot be relied upon as the Speaker and Deputy Speaker so also Chairman and Deputy Chairman referred to in these Articles cannot be equated with that of Parliamentary Secretaries. None of the persons referred to under Articles 186 and 187 are required to discharge the duties and functions of Parliamentary Secretaries as referred to at para 37 which are akin to functions of Council of Ministers.

44. There cannot be any dispute that the Legislature of a State by law is empowered to define powers, privileges and amenities of a House of such Legislature or its Members. We are not deciding any issue with regard to the status of the party respondents as members of the Legislative Assembly. We are examining their status as Parliamentary Secretaries. They cannot fit in the description of House of the Legislature of a State, its Members and the Committees of the House.

49. In the enactment under challenge, the posts of Parliamentary Secretaries are created and they remain so at the pleasure or discretion of the Chief Minister. Past history indicates concept of Parliamentary Secretary is not unknown practice. We have to examine the enactment which creates post of Parliamentary Secretary wherein provisions regarding methodology for appointment, demarcating functions, duties and perks of Parliamentary Secretaries, vis-à-vis., the purpose and the object with which Article 164 was amended by inserting Article 164(1A). The functions of the Parliamentary Secretary defined in the Statute do not go beyond the purview of the duties and functions of the Council of Ministers. Their functions are not like that of an Advocate General, Speaker and Deputy Speaker which are created by virtue of other provisions of Constitution. The functions attached to the post of Parliamentary Secretary is that of the functions of the Ministers. In other words, they share the responsibility of the Minister of a State. Their deliberation or involvement in the duties and functions of the Department to which they are attached to, have an impact on the decision making process so far as that Department is concerned. In other words, they without being called as Ministers, do discharge functions of Ministers. They are not Secretaries, who come through the public service referred to under Article 309. The Parliamentary Secretary is also a political executive like other political executives in the State.

[...]

62. One has to see whether the appointment of Parliamentary Secretary tantamount to appointment of Minister. Is it an exercise to circumvent and defeat the limitation or restriction under the Constitutional mandate? Definitely, nomenclature of the post is of irrelevance. For what purpose they are appointed and the impact of their functions on the infrastructure of the mechanism of the Cabinet has to be seen.

63. The difference between the Minister and Parliamentary Secretary has to be understood with reference to the provisions of Article 164(1A). The source of appointment, purpose of appointment, duties and functions and the perks and privileges confirmed on such Parliamentary Secretary is on par with a Minister of State. Minister of State is nothing but an elected member of an Assembly, who is part of Council of Ministers, who would assist and advice the Governor in discharge of the functions of the State. Whether they are persons

forming part of the Cabinet or State Ministers within the Cabinet, their number is definitely and undisputedly governed by the provisions of Article 164(1A). Their appointments are duly notified and oath is administered through the Governor. It appears, there is no regular cadre carrying the nomenclature of Parliamentary Secretary deriving authority from the Constitution of India i.e., to say, they are neither part of regular State services nor political executive authorities forming part of the system governing the governance of the State. Their role is to participate factually in the functioning of Government, may be with some restrictions but definitely they are outsiders to the functioning of the Government. They have access to public record and interaction with the public. Practically except for the nomenclature, they almost function like a Minister of a State. It appears, these appointments are primarily made for the purpose of accommodating an Elected Member of Assembly, who could not be included in the regular Cabinet for one reason or the other primarily on account of restriction contained in Article 164(1A) of the Constitution. In fact 'Parliamentary Secretaries' carry all that a Minister does except the name.

64. In the present case, the Statute in question is nothing but an enactment to overcome the limitation or restriction imposed under Articles 164(1A) of the Constitution of India. Hence, it is repugnant to the Constitution and deserves to be struck down". [Emphasis Supplied]

82. The perusal of the above noted observations made by various High Courts makes it abundantly clear that the office of Parliamentary Secretary is akin to that of Minister in light of the functions discharged by them and their access to Government files and influence over the governance and decision making. It is also pertinent to note that in the states of Punjab, Assam, Gujarat, Maharashtra, Meghalaya and West Bengal the office of Parliamentary Secretary is covered under their respective legislations for removal of disqualification.

ANALYSIS OF FACTS IN LIGHT OF THE LEGAL POSITION

ISSUE 1: WHETHER THE RESPONDENT MLAS HELD THE OFFICE OF PARLIAMENTARY SECRETARY?

83. This issue stands answered *vide* Order dated 23.06.2017 **(ANNEXURE 3, PAGES 121 TO 143)** passed by this Commission in the instant Reference Case where this Commission has held that the Respondents had *de facto* held the office of Parliamentary Secretaries from 13.03.2015 to 08.09.2016.

ISSUE 2: WHETHER THE OFFICE OF PARLIAMENTARY SECRETARY IS AN OFFICE UNDER THE GOVERNMENT?

84. The anomaly of facts in the present reference case is such that the Respondents were appointed as Parliamentary Secretaries *vide* the appointment order dated 13.03.2015, however there existed no law or order for creating such a post and defining the nature of work and responsibilities entrusted upon the incumbents of the post. Thus a question may arise whether there was an office at all and whether such an office was an office under the Government.

85. It is a fact that the appointments were made *vide* GNCTD Order dated 13.05.2015 and it is only an office to which an appointment can be made and therefore, by virtue of the fact that the Respondents were appointed as Parliamentary Secretaries, it can be concluded that the office of Parliamentary Secretary came into existence by the appointment order dated 13.03.2015 and thus there is no question over the existence of office. Moreover, the fact that the Respondents were administered the Oath of Office makes it even more clear that no question can be raised over the existence of office for the purpose of this reference.

86. As to the question whether the office of Parliamentary Secretary was an office under the Government it is important to understand the nature of this office. The expression "office" has not been defined in the Constitution. In the case of *Mahadeo* v. *Shantibhai* [(1969) 2 SCR 422] the question for consideration was whether appointment of a person on the panel of lawyers by Railway Administration can be held to be an office and is that office one for profit. The Court, in that case referred to observation of Lord Wright of the House of Lords in the case of *McMillan* v. *Guest* [1942 AC 561 : (1942) 1 All ER 606] where Lord Wright has opined:

"The word 'office' is of indefinite content. Its various meanings cover four columns of the New English Dictionary, but I take as the most relevant for purposes of this case the following; a position or place to which certain duties are attached, especially one of a more or less public character." [Emphasis supplied]

87. In view of the definition given by Lord Wright, as quoted above, it can be assumed that the office of Parliamentary Secretary, being an office, would also have certain duties attached to it. Since the appointment order as well as the Rules of Conduct of Business of the Delhi Legislative Assembly appear to have been deliberately left silent on the issue there is nothing on record to ascertain with certainty as to what these duties

were or would have been. This situation compels us to look at the history of the office of Parliamentary Secretary and the verdicts given by the Hon'ble High Courts in relation to the appointment of Parliamentary Secretaries in other states and ascertain the nature of the office on the basis of the available facts and understanding of the circumstances.

88. In light of the discussion in Paragraphs 62 above and the tests enumerated by the Hon'ble Supreme Court in *Maulana Abdul Shakur v. Rikhab Chand (supra), Guru Gobinda Basu v. Sankari Prasad Ghosal (supra), Biharilal Dobray v. Roshan Lal Dobray (supra), Pradyut Bordoloi v. Swapan Roy (supra)* it is important to note that the Respondents were appointed as Parliamentary Secretaries by an order of the GNCTD and thus they were to continue to serve in this office at the pleasure of the Chief Minister who had the power to revoke their appointment without any notice.

89. Since there is no description of the duties and responsibilities of the Parliamentary Secretaries and the only direction that existed in their relation was that they shall be attached with individual Ministers. This implies that the Parliamentary Secretaries were to work under the direct and continuous supervision of the Minister concerned and were expected to take responsibilities as directed and delegated by the Minister concerned and therefore there was a great extent of control of the Government as to the manner in which the duties of the office were to be performed.

90. It is also an undisputed fact that the decision of the payments to be made to the Parliamentary Secretaries was taken by the appointing authority, i.e. GNCTD and the payment of expenditures made or to be made in relation to these offices were made and were to be made out of the budgetary resources of the Government.

91. Moreover, as is abundantly clear from the discussion in Paragraph No. 61, the question of occupying an office 'under the Government' also pertains to the question of conflict of interest as the fundamental principle behind the doctrine of 'Office of Profit' is that a legislator must be free to carry on his duties fearlessly without being subjected to any kind of governmental pressure.

92. Therefore, it becomes a question of wider import if there exists any possibility of conflict between the duty of the legislator towards the House and the people and her interests in relation to the office she occupies. Since the Parliamentary Secretary was to perform functions as delegated and directed by the concerned Minister, there is no question on the fact that the Parliamentary Secretaries would be doing the work of the Government and therefore they would be working for the Government. The supervision and control of the executive by the legislature is a basic feature of parliamentary form of democracy and a member of the assembly who works for the Government cannot be expected to be free from the vice of conflict of interest. There is no denying of the fact that there was an overarching influence that was exercisable by the Government on these Parliamentary Secretaries and thus the Government was in a situation to influence her and interfere in her independent functioning as a Member of the Legislative Assembly of Delhi.

93. Therefore, it is abundantly clear that the office of Parliamentary Secretary was an office under the Government and the occupants of such office suffered from the vice of conflict of interest.

ISSUE 3: WHETHER THE OFFICE OF PARLIAMENTARY SECRETARY IS AN OFFICE WHICH YIELDS PROFIT OR HAS THE POTENTIAL OF YIELDING PROFIT?

94. At the very outset of this section it is necessary to understand the peculiarity of this reference case which is born out of its timeline. The respondents were appointed as Parliamentary Secretaries to the Ministers of the Delhi Government *vide* GNCTD Order dated 13.03.2015. Thereafter, the Petitioner filed his petition before the Hon'ble President of India on 19.06.2015. Thus, the Respondent MLAs as well as the GNCTD became cautious and many facilities that were to be provided to these MLAs were kept in abeyance and neither was any order passed for allocation of work to the Parliamentary Secretaries nor any amendment was brought in the Rules of Conduct of Business of the Delhi Assembly. The fact that the GNCTD and the Respondents became cautious and made all effort to wipe their footsteps gets abundantly clear from the fact that the GNCTD introduced "the Delhi Members of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) (Amendment) Bill, 2015" on 23.06.2015 and passed it on 24.06.2015, that is within 5 days of the complaint filed by the Petitioner. Furthermore, the Order dated 23.09.2015 for allocation of offices to the Parliamentary Secretaries in the Legislative Assembly Secretariat was withdrawn/kept in abeyance on the very next day, i.e. 24.09.2015, which further shows that the GNCTD has treaded very cautiously to ensure that the true nature of the office does not get revealed.

95. The Petitioner has pointed out certain facts from the voluminous reply received from GNCTD in this respect and these facts state the nature of profits received by the Parliamentary Secretaries and the Respondents have only given evasive replies on the same.

96. The appointment order dated 13.03.2015 has clearly stipulated two entitlements of Parliamentary Secretaries, i.e. use of Office Space in Minister's office and transportation for official purposes. The GNCTD has submitted that these benefits have been provided only to the Parliamentary Secretaries and not to the MLAs. Moreover the GNCTD has also submitted that there was no provision for segregation of expenditure made on Parliamentary Secretaries and the Ministers.

97. The GNCTD has stated *vide* reply dated 20.09.2016 as under:

> *"a. The Department of Law has stated that the office of Parliamentary Secretary has neither been defined nor there is any provision under GNCTD Act, 1991 and the Transaction of Business Rules of GNCTD.*
>
> *c. In the Staff Car Rules, NB below Rule 44 states as follows: "The expression "Minister" used in these Rules includes Ministers of all ranks, Deputy Ministers and Parliamentary Secretaries. If any of the provisions of these Rules in so far as they relate to Ministers and Deputy Ministers, are repugnant to any of the corresponding provisions of the Ministers (Allowances, Medical Treatment and Other Privileges) Rules, 1957, the latter provisions will alone be applicable" as quoted from Swamy's Compilation of Staff Car Rules as of March, 2015".*

Moreover, the Respondents were appointed as Parliamentary Secretaries *vide* appointment order dated 13.03.2015 and even in this appointment order there is no definition of their roles, responsibilities, or duties etc. and all it states is that they shall be attached with individual Ministers, have no salary and shall be entitled to working space in the office of the Minister concerned and official car. The Petitioner has in this context pointed out the fact that the appointment order has made the provision for official car without prescribing any single duty for these Parliamentary Secretaries and while official car is a benefit *per se*, the provision of it without assignment of any work is in the nature of undue benefit and it further establishes the intent to accord benefits to the Parliamentary Secretaries. The Hon'ble Supreme Court of India in the case of *Jaya Bachchan v. Union of India (supra)* had considered the provision of the facility of 'chauffer driven car at state expense' as a key ingredient making an office one of profit in order to attract the requisite disqualification and therefore it is correct to note that the Office space and chauffer driven car/ transport were receivable material gains to which the Respondent MLAs were entitled to after appointment to the office of Parliamentary Secretary.

98. The GNCTD has also stated that *vide* Order No. 16(50)/2014-15/LAS/CT/5437-5443 dated 23.09.2015 that the Legislative Assembly Secretariat *vide* Letter No. 16(87/2016/LAS/CT/7285) dated 12.09.2016 has provided copy of the note dated 24.09.2015 signed by Shri Ajay Rawal, Secretary to Hon'ble Speaker wherein it has been stated that the Hon'ble Speaker has directed that the order dated 23.09.2015 regarding allotment of rooms to Parliamentary Secretaries to Ministers be kept in abeyance till further orders.

99. The GNCTD has also provided the following details in this respect:

a) "Requisition from Secretary to Minister (Transport, Development, GAD, Employment & Labour) dt. 26.03.2015 stating that 'it has been desired by the Hon'ble Minister to make office space (cabins) for the following Parliamentary Secretaries to the Minister (Transport, Development, GAD, Employment & Labour) in the Hall of 'A' Wing, 7th Level to facilitate their work'

1. Sh. Sanjeev Jha, Parliamentary Secretary (Transport)

2. Ms. Sarita Singh, Parliamentary Secretary (Employment)

3. Sh. Naresh Yadav, Parliamentary Secretary (Labour)

4. Sh. Jarnail Singh, Parliamentary Secretary (Development)

b) Requisition dated 13.04.2015 which states that consequent upon order of OSD to Minister (Transport & GAD) in the office of the Minister of Transport, GAD, Development, Labour & Employment, kindly arrange to provide one officer's table along with chair, KTS, intercom, computer system with internet and visiting chairs in the cabin in hall premises at 7th Level, A – Wing, immediately.

c) Requisition dt. 20.04.2015 which states that in continuation of earlier request dt. 26.03.2015, kindly make two more cabins for the O/o Minister (GAD, Development, Employment & Labour etc.) in the Hall of A-Wing, 7th Level at the earliest.

d) Requisition dt. 28.04.2015 which states that one sofa set alongwith centre table, officer table, officer chair, visiting chairs, computer with internet facility, intercom and vertical blind may kindly be provided in the third cabin in the hall premises at 7th Level, A – Wing, for the official use in the office of the Minister of Transport, GAD, Development, Labour & Employment. This may kindly be treated as 'Most Urgent'.

e) Requisition dt. 29.04.2015 which states that four normal size office tables with chairs may kindly be provided in the cabins in the hall premises at 7th Level, A – Wing, for the official use in the office of the Minister of Transport, GAD, Development, Labour & Employment at the earliest.

f) All the above requisitions were forwarded by GAD to the AE(Civil), PWD looking after the civil works in Delhi Secretariat building for further needful.

g) Further, information as received from PWD also shows that 4 requisitions (dt. 26.03.2015, 13.04.2015, 29.04.2015 and 28.04.2015) as stated in sub-para (a) to (e) above were received in respect of creation of office space of 40 sqm at 7th Floor, Delhi Sectt. Building. The PWD has informed vide their letter dated 12.09.2016 that office cabins were created on 20.05.2015 and were fit for occupation on 20.05.2015. It has also been stated by PWD that actual date of handing over these cabins/officespace was 25.05.2015 and a total amount of Rs. 3,73,871/- was incurred by PWD which comprises Rs. 2,22,500/- on Civil & Electrical Work and Rs. 1,51,371/- on furniture on these office cabins under Budgetary Major Head MH 4059". [Emphasis Supplied]

100. The GNCTD has further submitted that the Public Works Department has informed in its reply dated 14.09.2016 that a requisition letter No. 16 (26)/2015-16/LAS/CT/865 dated 15.05.2015 was received from Dy. Secretary CT, Delhi Legislative Assembly Secretariat for providing 21 Executive Table, 21 Executive Chair, 136 visitors chairs for the 21 Parliamentary Secretaries for which Rs. 11,75,828 was spent by PWD. In this regard PWD has further informed that Delhi Legislative Assembly Secretariat vide its letter dated 16.06.2015 had conveyed approval of Rs.13,26,300/- for this purpose.

101. It is also pertinent to recall at this juncture that the order of appointment of the Respondents had clearly noted that the Parliamentary Secretaries shall be entitled to use office space in the offices of the Ministers with whom they are attached. However, despite this position stipulated in the appointment order, separate Office Spaces, apart from the constituency office, were also provided to the Respondent MLAs and at many instances more than one office space was provided to the Parliamentary Secretaries and liberal grants were made for their renovations. This clearly falls under the definition of 'profit'.

102. Details about offices allotted to the Parliamentary Secretaries in addition to their constituency offices (as per the information furnished by GNCTD) is as under:

S. No.	NAME OF MLA	OFFICE ALLOTTED	ORDER DETAILS
1.	Sh. Adarsh Shastri	NA	NA
2.	Ms. Alka Lamba	2 Office Rooms in Old CPO Building, Kashmiri Gate, Delhi.	Office Provided by Sindhi Academy under Department of Art, Culture & Language. Renovation work done by PWD. Letter No. 2 (39) 5A/16/8470 dated 13.09.2016 of Secretary, Sindhi Academy.
3.	Sh. Anil Kumar Bajpai	NA	NA
4.	Sh. Avtar Singh	Office space at O/o Executive Engineer, South East (Building), PWD Hauz Khas, New Delhi	PWD, vide letter dated 17/06/2016
		Office Space at Ground Floor, Labour Welfare Centre, Giri Nagar, Kalkaji , New Delhi	Labour Department, vide letter dated 14.09.2016

5.	Sh. Jarnail Singh (Tilak Nagar)	Hall of 'A' Wing, 7th Level, Delhi Secretariat.	Requisition from Secretary to Minister (Transport, Development, GAD, Employment & Labour) dt. 26.03.2015
		Training cum Production Centre, Ashok Nagar	Social Welfare Deptt.
6.	Sh. Kailash Gahlot	NA	NA
7.	Sh. Madan Lal	NA	NA
8.	Sh. Manoj Kumar	NA	NA
9.	Sh. Naresh Yadav	Hall of 'A' Wing, 7th Level, Delhi Secretariat.	Requisition from Secretary to Minister (Transport, Development, GAD, Employment & Labour) dt. 26.03.2015
10.	Sh. Nitin Tyagi	NA	NA
11.	Sh. Praveen Kumar	NA	NA
12.	Sh. Rajesh Gupta	NA	NA
13.	Sh. Rajesh Rishi	C2, Jal Board Office, Janakpuri, C2 Fire Station Janakpuri, under the Dabri flyover.	Delhi Jal Board, vide letter No. 5684 dated 15/01/2016. &14/09/2015.
		Room No. 1& 2 at JE (Water/Sewer) store at Fish Market, Uttam Nagar, Near Metro Station , Delhi	Delhi Jal Board, vide office letter No. 466 dated 10.05.2016
14.	Sh. Sanjeev Jha	Hall of 'A' Wing, 7th Level, Delhi Secretariat.	Requisition from Secretary to Minister (Transport, Development, GAD, Employment & Labour) dt. 26.03.2015
15.	Ms. Sarita Singh	Hall of 'A' Wing, 7th Level, Delhi Secretariat.	Requisition from Secretary to Minister (Transport, Development, GAD, Employment & Labour) dt. 26.03.2015
16.	Sh. Sharad Kumar Chauhan	NA	NA
17.	Sh. Shiv Charan Goel	NA	NA
18.	Sh. Som Dutt	NA	NA
19.	Sh. Sukhvir Singh Dalal	NA	NA
20.	Sh. Vijender Garg Vijay	Office space at PWD Office Road Sub Division at Inder Puri.	PWD, vide letter dated 21.07.2015

103. From the analysis presented above it is clear that the office of Parliamentary Secretary had adduced benefits which cannot be taken out of the purview of 'profit' and therefore it can be concluded that the office of Parliamentary Secretary yielded profit and had the potential of yielding profits to the incumbents of that office.

ISSUE 4: WHETHER THE OFFICE OF PARLIAMENTARY SECRETARY HAS EXECUTIVE NATURE OF FUNCTIONS?

104. This issue gets partly answered by the conclusion drawn above in paragraph numbers 77 - 78 that the office of Parliamentary Secretaries was an executive office and the analysis of the possibility of conflict of interest presented above under Issue 2 in paragraph number 92.

105. The office of Parliamentary Secretary has rightly been termed by many Hon'ble High Courts (see paragraphs 79 – 81 above) as being akin to the office of a junior minister in light of the history of the office and the fact that

they have access to official files and they have rank and status of ministers and they perform functions of the ministers.

106. The reply received from the GNCTD has noted that the Parliamentary Secretaries performed duties as assigned by the Minister concerned and attended meetings in the offices of the Ministers with whom they were attached. It cannot be said that these meetings were attended in only advisory capacity when the meetings were chaired by these Parliamentary Secretaries and important executive decisions were taken in them. From perusal of the reply received from the GNCTD, it appears that the Petitioner has correctly pointed out that the Parliamentary Secretaries have attended and chaired meetings where policy framing or executive decisions were taken and in many cases the Committee meetings chaired by Parliamentary Secretaries 'decided' and not just recommended on the subject under consideration. The Parliamentary Secretaries have conducted inspections and gave oral instruction during such inspections which have been mentioned in the inspection reports. Moreover, the files of meetings were often marked to the Parliamentary Secretaries to the Ministers for information and necessary action.

107. A summary of meetings chaired/attended and Inspections and Jan Sunwai conducted by the Parliamentary Secretaries (as per the information furnished by the GNCTD) is as under:

S. NO.	NAME OF MLA	DETAILS ABOUT MEETINGS ATTENDED
1.	Sh. Adarsh Shastri	Attended a Conference Session on Empowering Digital India in capacity as Parliamentary Secretary to Minister of Information Technology and was paid Rs. 15,479/- as reimbursement.
		Attended review meeting held at the level of Hon'ble Chief Minister and Dy. Chief Minister regarding free Wi-Fi project.
		The Council of Ministers *vide* Cabinet Decision No. 2208 dated 15.09.2015 approved to engage consultants from NICSI through its empanelled agencies and a committee was constituted for the evaluation of these proposals and the Dy. CM approved the participation of Sh. Adarsh Shastri as a Special Invitee.
2.	Ms. Alka Lamba	NA
3.	Sh. Anil Kumar Bajpai	Chaired the meeting with DGEHS Officers and Delhi Govt. Retired Pensioners/Officers/Employees Association on 28.05.2015 where executive decisions were taken and the Parliamentary Secretary was given the explanations for the issues raised by the representatives.
4.	Sh. Avtar Singh	NA
5.	Sh. Jarnail Singh (Rajauri Garden)*	Chaired meeting with the representatives of Delhi Vidyut Karmachari Union on 24.09.2015 wherein he expressed concern over non-regularisation of contractual employees and the minutes noting the same were sent by the OSD to the Minister to the Director (HR), I.P.G.C.L. to look into the matter and intimate the action taken to the Parliamentary Secretary.
		Chaired meeting with the DESU Substation Staff on 06.08.2015. The meeting was with reg. the grievances of Operation/Shift Staff working in various substations of Delhi Transco Ltd.
6.	Sh. Jarnail Singh (Tilak Nagar)	Chaired one review meeting of APMCs on 27.05.2016 during the leave period of Hon'ble Minister.
		Appointed as Chairman of Committee constituted in respect of development of Mandi at Tigri Khampur.
		Chaired the meeting held on 09.09.2015 in the office of Minister of Transport and Development where many important executive decisions were taken relating to expediting the development of new modern mandi at Tikri Khampur, restarting Mangolpuri Mandi by constructing platforms to accommodate existing licensees and to formulate criteria for allotment of new licenses etc.
		A meeting was held in the office of Minister of Transport and Development on 04.11.2015 wherein it was decided to form a Project Committee headed by the Parliamentary Secretary to the Minister of Transport and Development to submit a proposal

		regarding the development of Mandi at Tikri Khampur with estimated project cost of Rs. 200-250 crores.
		Chaired the review meeting, in absence of the Minister, held in the office of Minister of Transport and Development on 16.12.2015 where many important executive decisions were taken.
		A meeting was held in the office of Minister of Transport and Development on 18.03.2016 wherein important executive decisions were taken. In this meeting it was also decided that the Parliamentary Secretary will submit a proposal to the Hon'ble Minister on feasibility of controlling egg trade in Gazipur Mandi. It was also decided in the said meeting that report of the joint inspection of Gazipur Fruit & Vegetable Mandi by VC, DAMB along with Parliamentary Secretary should be furnished including suggestion to remove unauthorized occupants.
		A meeting notice was issued for meeting of APMCs to be convened by the Parliamentary Secretary to Minister of Transport and Development on 27.05.2016.
		A meeting was held in the office of Minister of Transport and Development on 08.06.2016 wherein again many important executive decisions were taken e.g. allotment of space at Mandis, flood preparation, promotion of officers, etc.
		In the review meeting held on 08.06.2016 it was directed that a committee consisting of Sh. Jarnail Singh, Parliamentary Secretary (Development) and other members will visit all the Gaushalas being run by Animal Husbandry Department and submit report regarding their maintenance and other issues.
		Sh. Jarnail Singh, Parliamentary Secretary (Development) attended the meetings of Agriculture Marketing Board as Special Invitee.
		Sh. Jarnail Singh, Parliamentary Secretary (Development)chaired the Jan Sunwai held on 10.06.2015 at APMC, Narela. Another Jan Sunwai was held by Hon'ble Minister (Development) at Azadpur on 11.03.2015 which was also attended by Sh. Jarnail Singh, Parliamentary Secretary (Development). He has also taken a meeting on 19.12.2015 to discuss the issue with stakeholders of fish and poultry.
7.	Sh. Kailash Gahlot	NA
8.	Sh. Madan Lal	NA
9.	Sh. Manoj Kumar	Attended meetings described by the Ministry to be advisory in nature. No details provided.
10.	Sh. Naresh Yadav	Member to a Committee constituted for suggesting establishment of 'Prathibha Academy' and Chairman of the Committee set up to work out the framework, modalities, timeline, layout etc. for the same.
		Member in committee constituted by the Hon'ble Minister (Labour) to suggest various welfare measures for domestic workers.
11.	Sh. Nitin Tyagi	Invited as Special Invitee in a meeting of Ministry of Women and Child Development on 11.02.2016.
12.	Sh. Praveen Kumar	Attended review meetings held at the level of Dy.CM for continued monitoring of plan schemes of Education Department.
13.	Sh. Rajesh Gupta	The Minister of Home, Health & FW, Power, PWD & Industries took a meeting on 29.12.2015 where it was decided to constitute an empowered committee for framing a revised policy on street lights in Delhi with him and 2 other Parliamentary Secretaries as members however the subject of street lights was later transferred to Public Works Department and hence no meeting took place of this empowered committee.

		Attended weekly review meeting held on 04.03.2015 and 11.03.2015 under the Chairmanship of Minister of Health to review the functioning of the Health Department where important executive decisions were taken on subjects such as the action plan for reducing Infant Mortality Rate, Electronic Health Card for all, Computerisation of PHCs, etc.
14.	Sh. Rajesh Rishi	NA
15.	Sh. Sanjeev Jha	Chaired the meeting held on 05.06.2015 in the Conference Room of the Minister of Transport where many decisions were taken regarding the implementation of Employee Pension Scheme of DTC.
		Chaired the committee of officers of DTC constituted by the Transport/DTC Department held on 10.12.2015 and 11.12.2015 to decide hire charges for different bus models to be paid to the contract carriage bus operators engaged during the odd-even scheme, i.e. 01.01.2016 to 15.01.2016.
		In the matter relating to alleged irregularities in issuance of 10,000 Letters of Intent (LoIs) for auto-rickshaws, an inspection of Auto Rikshaw Unit, Burari was made by him accompanied by OSD to Minister of Transport and office rooms were locked and sealed on their orders.
16.	Ms. Sarita Singh	NA
17.	Sh. Sharad Kumar Chauhan	NA
18.	Sh. Shiv Charan Goel	Parliamentary Secretary to the Finance Minister attended some of the Prize Distribution Ceremony under 'Bill Banao Inam Pao' Scheme organized by the office of Commissioner (Trade & Taxes).
19.	Sh. Som Dutt	The Minister of Home, Health & FW, Power, PWD & Industries took a meeting on 29.12.2015 where it was decided to constitute an empowered committee for framing a revised policy on street lights in Delhi with him and 2 other Parliamentary Secretaries as members however the subject of street lights was later transferred to Public Works Department and hence no meeting took place of this empowered committee.
		Meeting conducted with TPDDL and MCD, for restoring lights in Delhi with an estimate of Rs. 5.34 Crores initial budget.
		Visit to Bawana Industrial Area, Wazirpur Industrial Area, Rajasthani Udyog Nagar with SMA and SSI Industrial Area on 02.05.2015 on behalf of Delhi State Industrial and Infrastructure Development Corporation.
		Visit of Mayapuri Industrial Area with area MLA on 28.05.2015. Visit of Narela Industrial Area with Area MLA on 10.06.2015. Visit of Flatted Factory Complex at Jhilmil Industrial Area on 17.06.2015 on behalf of Delhi State Industrial and Infrastructure Development Corporation (DSIIDC).
		Visit to Naraina Industrial Area on 01.07.2015. Visit to Badli Industrial Area on 08.07.2015. Visit to Parparganj Industrial Area on 15.07.2015. Visit of Tilak Nagar Industrial Area on 22.07.2015. Visit of Mangolpuri Ph-I Industrial Area on 29.07.2015 on behalf of Delhi State Industrial and Infrastructure Development Corporation (DSIIDC).
		Site inspection of DLF Moti Nagar Industrial Area on 12.10.2015

		& Kirti Nagar Industrial Area on 14.10.2015 on behalf of Delhi State Industrial and Infrastructure Development Corporation (DSIIDC).
		Attended a meeting in Delhi State Industrial and Infrastructure Development Corporation (DSIIDC) in reference to Anand Parbat Industrial Area, dated 15.03.2016. *During these inspections attended in capacity of P.S. certain oral instruction were given by him and the same have been mentioned in the inspection reports.*
20.	Sh. Sukhvir Singh Dalal	The Minister of Home, Health & FW, Power, PWD & Industries took a meeting on 29.12.2015 where it was decided to constitute an empowered committee for framing a revised policy on street lights in Delhi with him and 2 other Parliamentary Secretaries as members however the subject of street lights was later transferred to Public Works Department and hence no meeting took place of this empowered committee.
21.	Sh. Vijender Garg Vijay	The Minister of Public Works Department took a presentation on Mechanised Parking (Automatic Multi Level Car Parking System) and observed that PWD should get some sample work done for construction of Automatic Multi Level Car Parking System and the minutes of this meeting were marked for Mr. Vijendra Garg, Parliamentary Secretary for information and necessary action.
Sh. Jarnail Singh, MLA from Assembly Constituency of Rajauri Garden had resigned on 17.01.2017 and bye-elections were held to fill this vacancy in April 2017 and therefore no question remains over his disqualification.		

108. The facts and circumstances discussed thus far make it abundantly clear that the office of parliamentary secretary not only has executive nature of functions but was part of the executive *per se.*

ISSUE 5: WHETHER THE OFFICE OF "PARLIAMENTARY SECRETARY' CAN BE SAID TO BE AN UN-EXEMPTED 'OFFICE OF PROFIT'?

109. The answer of this issue lies in the holistic understanding of the analysis presented for the above four issues.

110. The question of 'Office of Profit' is required to be enquired upon by keeping in view the entire facts and circumstances of a case and a technical interpretation cannot be given to the phrase 'Office of Profit'. It is necessary in this context to keep in view that the idea behind the post-election bar on holding an office of profit and the ensuing disqualification as well as the pre-election lack of qualification for holding office of profit is that the holder of an office of profit under the Government which stands to be scrutinized in the House is assumed to have compromised and jeopardized her ability to perform her duty towards the people as well as the House. It is therefore necessary to keep this objective in mind while interpreting and examining the question of 'Office of Profit'.

111. The Legislative Assembly of Delhi in 1997, enacted a law known as the Delhi Members of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) Act, 1997 (Delhi Act 6 of 1997) in order to exempt certain offices from being disqualified for being chosen as, or for being, a member of the Legislative Assembly of National Capital Territory of Delhi. The disqualification attracted on the Office of the Parliamentary Secretary to the Chief Minister of Delhi for holding office of profit was removed by way of including the same in the Schedule appended to the Delhi Members of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) Act, 1997. It may not be wrong to note that the Legislature in its wisdom considered this office to be an office of profit and thus put it under the exempted category.

The Schedule of this Act originally contained only two offices namely:

i. The office of Chairman of Delhi Khadi and Village Industries Board; and

ii. The office of Chairman of Delhi Commission for Woman.

The Schedule of this Act was amended in 2002 to add:

iii. The office of Leader of Opposition in the Legislative Assembly of the NCT of Delhi;

The Schedule of this Act was amended in 2003 to add:

iv. The office of Chief Whip in the Legislative Assembly of the NCT of Delhi;

The Schedule of this Act was amended in 2006 to add:

v. The office of the Chairman and Vice-Chairman of the Trans Yamuna Area Development Board, Delhi;

vi. The office of the Chairman and Vice-Chairman of the Delhi Rural Development Board, Delhi;

vii. The office of the Parliamentary Secretary to the Chief Minister of GNCTD;

viii. The offices of the Chairman of 9 District Development Committees constituted by the GNCTD;

ix. The office of the Chairperson of Schedules Castes/ Schedules Tribes Welfare Board, Delhi;

x. The offices of the Chairperson, Vice-Chairperson and member of the Fire Prevention Advisory Committee;

xi. The offices of the Chairman, Vice-Chairman and member of the Hospital Advisory Committee, Delhi;

xii. The offices of the Chairperson, Vice-Chairperson and member of the Governing Body of a Delhi Government sponsored college;

xiii. The office of the Chairman and member of a co-operative institution or organization registered under the Delhi Co-operative Societies Act, 2003 and

xiv. The office of the Chairman, Director or member of a statutory or non-statutory body or committee or corporation or society constituted by the GNCTD.

112. Thus, as on date, a total of 14 offices are exempted, however the office of Parliamentary Secretary to a Minister other than the Chief Minister was not added to the Schedule of the Act. The post of Parliamentary Secretary for other Cabinet Ministers was attempted to be put under the exempted category by the GNCTD which introduced the Delhi Members of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) (Amendment) Bill, 2015 on 23.06.2015 for this purpose, i.e. within 5 days of the present Petition being moved before the Hon'ble President of India, and this Bill was passed on the very next day, i.e. 24.06.2015. The defence that the Bill was moved under the principle of *ex abundanti cautela* (abundant caution) is not legally tenable as the very nature of the office is executive and it was necessary to exempt this office in order to save the MLAs from being disqualified for holding office of profit. Moreover, the principle of abundant caution finds no mention in the Statement of Object and Reason of the 2015 Bill. Thus, it can be concluded that the Legislative Assembly of Delhi, in its wisdom, considered the office of Parliamentary Secretary as an office of profit. Since, the President of India has refused to give assent to this Bill, the disqualification attracted on the Respondent MLAs for holding office of profit is not removed and stands.

113. It is also pertinent to note at this juncture that with the appointment of 21 MLAs as Parliamentary Secretaries to Ministers the Delhi Assembly had 28 MLAs or in other words about forty percent of the Assembly working for the Government which is in flagrant violation of clause (4) of Article 239AA of the Constitution of India which permits a maximum of ten percent MLAs to be appointed as Ministers. The Delhi High Court has set aside the appointment order on the ground that the said order was not sent to the Lt. Governor of Delhi and was thus in violation of the mandate of Article 239AA. It is also pertinent to note at this juncture that the GNCTD has thus attempted to bypass Constitutional provisions of paramount importance in passing the order by which the Respondents were appointed as Parliamentary Secretaries to Ministers which was an office that was never created by any law or order of the GNCTD and the roles and responsibilities of the office holders was never spelt out in any manner. The totality of these circumstances clearly brings out the larger scheme of things wherein these respondents were appointed as Parliamentary Secretaries *de hors* the Rules and Regulations and even the Constitutional provisions in order to satiate the demand for executive office and to oblige them with office. In such circumstances there is no doubt over the fact that such a large scale appointment of Parliamentary Secretaries had not only jeopardised the functioning of these individual MLAs but also the entire Legislative Assembly of Delhi and it is essential to keep this fact and situation in mind while deciding upon the present reference.

CONCLUSION

114. The respondents were appointed as Parliamentary Secretaries to the Ministers of the Delhi Government *vide* GNCTD Order dated 13.03.2015. The Petitioner filed the petition dated 19.06.2015 before the Hon'ble President of India on 22.06.2015. Subsequent thereto the GNCTD introduced "the Delhi Members of Legislative Assembly (Removal of Disqualification) (Amendment) Bill, 2015" on 23.06.2015. The bill was passed by the

Legislative Assembly of Delhi on 24.06.2015. However, this Bill was not accorded the assent by the Hon'ble President of India. It is also evident from a bare perusal of the 'Statement of Objects and Reasons' of the said Bill that the GNCTD recognized that the Office of Parliamentary Secretaries to Ministers attracts disqualification on account of holding Office of Profit and sought to remove the disqualification retrospectively.

115. It is a golden rule of the principles of statutory interpretation that a provision has to be given such a meaning as to give maximum effect to the intention of the legislature and to make the provision workable. This is amply borne out of a catena of pronouncements of Hon'ble Courts, some of which are cited below.

116. Hon'ble Justice Rohinton Nariman's observations and summation of the 'principle of purposive interpretation' as given in the case of *Shailesh Dhairyawan v. Mohan Balkrishna Lulla* [(2016) 3 SCC 619] is as under:

> *"31. [...] The principle of "purposive interpretation" or "purposive construction" is based on the understanding that the court is supposed to attach that meaning to the provisions which serve the "purpose" behind such a provision. The basic approach is to ascertain what is it designed to accomplish? To put it otherwise, by interpretative process the court is supposed to realise the goal that the legal text is designed to realise. As Aharon Barak puts it:*
>
> > *"Purposive interpretation is based on three components: language, purpose, and discretion. Language shapes the range of semantic possibilities within which the interpreter acts as a linguist. Once the interpreter defines the range, he or she chooses the legal meaning of the text from among the (express or implied) semantic possibilities. The semantic component thus sets the limits of interpretation by restricting the interpreter to a legal meaning that the text can bear in its (public or private) language." [Aharon Barak, Purposive Interpretation in Law (Princeton University Press, 2005).]*
>
> *32. Of the aforesaid three components, namely, language, purpose and discretion "of the court", insofar as purposive component is concerned, this is the ratio juris, the purpose at the core of the text. This purpose is the values, goals, interests, policies and aims that the text is designed to actualise. It is the function that the text is designed to fulfil.*
>
> *33. We may also emphasise that the statutory interpretation of a provision is never static but is always dynamic. Though the literal rule of interpretation, till some time ago, was treated as the "golden rule", it is now the doctrine of purposive interpretation which is predominant, particularly in those cases where literal interpretation may not serve the purpose or may lead to absurdity. If it brings about an end which is at variance with the purpose of statute, that cannot be countenanced. Not only legal process thinkers such as Hart and Sacks rejected intentionalism as a grand strategy for statutory interpretation, and in its place they offered purposivism, this principle is now widely applied by the courts not only in this country but in many other legal systems as well". [Emphasis supplied].*

117. The Hon'ble Calcutta High Court has aptly noted in the case of *Vishak Bhattacharya v. State of West Bengal [supra]* as under:

> *"50. [...] On several occasions, the Courts exercising object oriented approach while interpreting the provisions of Constitution, did refer to assembly debate as a means of guidance in order to arrive at proper interpretation. The Constitution is not just a document in sacred or solemn form. It has to be considered as a living frame work for the Government of the people and its successful working entirely depends upon the democratic spirit underlying it which has to be respected in letter and spirit". [Emphasis Supplied]*

118. In the case of *Surjit Singh Kalra v. Union of India* [(1991) 2 SCC 87] Justice K. Jagannatha Shetty, as he then was, observed and held as under:

> *"19. True it is not permissible to read words in a statute which are not there, but "where the alternative lies between either supplying by implication words which appear to have been accidentally omitted, or adopting a construction which deprives certain existing words of all meaning, it is permissible to supply the words" (Craies Statute Law, 7th edn., p. 109). Similar are the observations in Hameedia Hardware Stores v. B. Mohan Lal Sowcar [(1988) 2 SCC 513, 524-25] where it was observed that the court construing a provision should not easily read into it words which have not been expressly enacted but having regard to the context in which a*

provision appears and the object of the statute in which the said provision is enacted the court should construe it in a harmonious way to make it meaningful. An attempt must always be made so to reconcile the relevant provisions as to advance the remedy intended by the statute. (See: Sirajul Haq Khan v. Sunni Central Board of Waqf [1959 SCR 1287, 1299 : AIR 1959 SC 198])". [Emphasis supplied]

119. The Hon'ble Supreme Court has held in the case of *Vijay Kumar Mishra v. High Court of Judicature at Patna* [(2016) 9 SCC 313] as under:

"25. It is a settled principle of rule of interpretation that one must have regard to subject and the object for which the Act is enacted. To interpret a statute in a reasonable manner, the Court must place itself in a chair of reasonable legislator/author. So done, the rules of purposive construction have to be resorted to so that the object of the Act is fulfilled. Similarly, it is also a recognised rule of interpretation of statutes that expressions used therein should ordinarily be understood in the sense in which they best harmonise with the object of the statute and which effectuate the object of the Legislature. (See Interpretation of Statutes, 12th Edn., pp. 119 and 127 by G.P. Singh)". [Emphasis supplied]

120. It is worth noting that the Articles 102 and 191 of the Constitution of India are not penal provisions. Rather, they are in the nature of remedial statute and aim at ensuring an effective Legislature which holds the executive accountable to the collective conscience of the representatives of the people on a regular basis. Therefore, by keeping this objective in mind, a wide interpretation ought to be given to give effect to the purpose envisioned in enacting these provisions. It is relevant to note at this juncture the observation made by the Hon'ble Supreme Court in the case of *Regional Provident Fund Commissioner v. Hooghly Mills Co. Ltd.* [(2012) 2 SCC 489] as under:

"25. The normal canon of interpretation is that a remedial statute receives liberal construction whereas a penal statute calls for strict construction. In the cases of remedial statutes, if there is any doubt, the same is resolved in favour of the class of persons for whose benefit the statute is enacted, but in cases of penal statutes if there is any doubt the same is normally resolved in favour of the alleged offender".

121. It is also highly relevant to note the observation of the Hon'ble Supreme Court in the case of *K. Prabhakaran v. P. Jayarajan* [(2005) 1 SCC 754] which is as under:

"59. In Shibu Soren v. Dayanand Sahay [(2001) 7 SCC 425] a three-Judge Bench of this Court was seized of the question of examining a disqualification on account of the person at that time holding an office of profit. The Court held that such a provision is required to be interpreted in a realistic manner having regard to the facts and circumstances of each case and the relevant statutory provisions. While "a strict and narrow construction" may not be adopted which may have the effect of "shutting off many prominent and other eligible persons to contest the elections" but at the same time

> *"In dealing with a statutory provision which imposes a disqualification on a citizen it would be unreasonable to take merely a broad and general view and ignore the essential points". (SCC p. 447, para 36)*

What is at stake is the right to contest an election and hold office. "A practical view, not pedantic basket of tests" must, therefore, guide courts to arrive at an appropriate conclusion. The disqualification provision must have a substantial and reasonable nexus with the object sought to be achieved and the provision should be interpreted with the flavour of reality bearing in mind the object for enactment". [Emphasis supplied]

122. The objective behind incorporating a disqualification for holding an office of profit under the Government is not to prevent the representatives of the people from earning profit by their private ventures but to prevent a conflict of interest in their functioning as members of the legislature and therefore undue importance on the evidence of profit and actual potential of pecuniary benefits is capable of rendering these Constitutional provisions toothless and pale. The object sought to be achieved by these provisions is a Legislature whose members are free from the vice of conflict of interest and the disqualification provision and the requirements for their implementation ought to be read and interpreted in a manner so as to fulfil this objective. In cases where the office is clearly of executive nature and commands authority over executive functionaries and is of high social respect and dignity – there is a clear case of conflict of interest and if such an office is not held to be an office of profit then such an

interpretation is creating an absurdity in law which is not only rendering the Constitutional provisions meaningless but is also negating the vision of constitutionalism deeply engrained in the body of our laws.

123. Due to the peculiarity of the circumstances and in view of the observation made in paragraph 112, 113 and 120 above, it is necessary that the facts on record are read in light with the nature of the office and the ensuing responsibilities that were and would in the natural course be entrusted upon the incumbents of this office and it is in light of such understanding only that a correct opinion can be arrived at in this reference.

124. The question as to whether the office of the Parliamentary Secretary was an office of profit or not is not a question that is concerned simply and only with the potentiality of profit of the office as any office that has the effect of affecting the independence of the MLA and jeopardising his ability to perform his duties towards the People or the House or both shall be called as an office of profit. The office here is in the nature of an executive office and by occupying the same these MLAs had become part of the executive. The appointment of the Respondent MLAs as Parliamentary Secretaries by the GNCTD bypasses and frustrates the objective sought to be achieved by Section 15(1)(a) of the GNCTD Act, 1991 and is also against the principle of legislative oversight of the Government which is the basic tenet of Parliamentary form of Democracy.

125. At this stage it is relevant to look back at the *criteria adopted by the* Joint Parliamentary Committee on Offices of Profit (Sixteenth Lok Sabha) to test whether an office is an office of profit or not as noted in paragraph number 76 which are as under:

> *"(i) Whether the holder draws any remuneration, like sitting fee, honorarium, salary, etc. i.e. any remuneration other than the 'compensatory allowance' as defined in Section 2(a) of the Parliament (Prevention of Disqualification) Act, 1959; (The Principle thus is that if a member draws not more than what is required to cover the actual out of Pocket expenses and does not give him pecuniary benefit, it will not act as a disqualification)*
>
> *(ii) Whether the body in which an office is held, exercises executive, legislative or judicial powers or confers powers of disbursement of funds, allotment of lands, issue of licenses, etc., or gives powers of appointment, grant of scholarships, etc; and*
>
> *(iii) Whether the body in which an office is held enables the holder to wield influence or power by way of patronage.*
>
> *If reply to any of the above criteria is in affirmative then the office in question will entail disqualification". [Emphasis supplied]*

126. The first test of pecuniary gain and the second test of executive nature of office as noted and relied upon by the Joint Parliamentary Committee have been analyzed above under issue III and IV respectively. It is pertinent to note that the above noted criteria of the test relied upon by the Joint Parliamentary Committee operate singularly and even if only one of them is satisfied it is enough to hold such an office as an office of profit.

127. The third test in the criteria noted above is of great significance in the present case. The office of Parliamentary Secretary allowed the incumbents to participate in high level meetings of the Government and to even Chair those meetings. The Parliamentary Secretaries were allotted office space in the Legislative Assembly Secretariat and in many cases even elsewhere and were allotted official transportation. These Parliamentary Secretaries were to assist the concerned Minister in the discharge of his functions and the actual delegation of work or authority was left to the discretion of the Minister. These Parliamentary Secretaries had full time access to the Ministers and ministerial files and notings and this access enabled them to wield influence and power by way of patronage.

128. As to the contention of the Respondents that the office of Parliamentary Secretary has now ceased to exist as their appointment order was quashed by the Hon'ble Delhi Court *vide* Order dated 08.09.2016 and they are no more sitting Parliamentary Secretaries and therefore there is no question of holding them as disqualified appears to be founded on a flawed understanding of the law and deserves to be answered and the same stands clarified and answered by our Order dated 23.06.2017**.**

129. In this context, it is worthy to take note of the practice followed and law pertaining to filing of nomination papers. At the stage of the filing of nomination papers, as per Section 36(2)(a) of the Representation of the People Act, 1951, the relevant date is the date of scrutiny of the nomination papers and if a person is holding an office of profit on that date then his nomination paper is liable to be rejected. Even if a person has already submitted resignation letter but the same has not been accepted, he stands in the office and is not qualified to contest the election and therefore his nomination paper is liable to be rejected. Even in a case where the acceptance of the resignation is to be notified and the notification states that the resignation is accepted from a

date that is one day after the date of scrutiny, the nomination paper is liable to be rejected. Similarly, the sitting Member of the Legislative Assembly becomes liable to be disqualified on the date on which he enters into an office of profit and the disqualification so incurred can only be removed by an act of the Legislature and neither resignation nor removal from office by an order of the court can remove the disqualification that is attracted upon occupying an office of profit.

130. It is also pertinent to note at this juncture that whether or not the individual Parliamentary Secretaries had actually derived the benefits or participated in executive functions of the Government is of no relevance as once it is established that the office of Parliamentary Secretary suffered from the infirmities which would necessitate disqualification for holding office of profit, the *potential doctrine* established by the Hon'ble Supreme Court in *Jaya Bachchan Case (supra)* would render all appointees to such office as disqualified.

131. The totality of the facts and circumstances viewed in the light of the law as contained in the Constitution of India, the GNCTD Act, 1991 and the Judicial precedents cited above, lead to this inference that the office of Parliamentary Secretary upon which the following 20 MLAs were appointed *vide* GNCTD Order dated 13.03.2015 is an office of profit held under the Government and therefore this Commission hereby opines that the following MLAs are liable to be disqualified under Section 15(1)(a) of the GNCTD Act:

1.	Sh. Adarsh Shastri (AC – 33 Dwarka)	2.	Ms. Alka Lamba (AC – 20 Chandni Chowk)
3.	Sh. Anil Kumar Bajpai (AC – 61 Gandhi Nagar)	4.	Sh. Avtar Singh (AC – 51 Kalkaji)
5.	Sh. Jarnail Singh (AC – 29 Tilak Nagar)	6.	Sh. Kailash Gahlot (AC – 35 Najafgarh)
7.	Sh. Madan Lal (AC – 42 Kasturba Nagar)	8.	Sh. Manoj Kumar (AC – 56 Kondli)
9.	Sh. Naresh Yadav (AC – 45 Mehrauli)	10.	Sh. Nitin Tyagi (AC – 58 Laxmi Nagar)
11.	Sh. Praveen Kumar (AC – 41 Jangpura)	12.	Sh. Rajesh Gupta (AC – 17 Wazirpur)
13.	Sh. Rajesh Rishi (AC – 30 Janakpuri)	14.	Sh. Sanjeev Jha (AC – 2 Burari)
15.	Ms. Sarita Singh (AC – 64 Rohtas Nagar)	16.	Sh. Sharad Kumar Chauhan (AC – 1 Narela)
17.	Sh. Shiv Charan Goel (AC – 25 Moti Nagar)	18.	Sh. Som Dutt (AC – 19 Sadar Bazar)
19.	Sh. Sukhvir Singh Dalal (AC – 8 Mundka)	20.	Sh. Vijender Garg Vijay (AC – 39 Rajendra Nagar)

132. In respect of Sh. Jarnail Singh, former MLA from Assembly Constituency – 27 Rajauri Garden who was also appointed as Parliamentary Secretary *vide* GNCTD Order dated 13.03.2015, it is to be noted that he had Resigned from his seat in the Legislative Assembly of NCT of Delhi on 17.01.2017 and bye-elections were held to fill this vacancy in April 2017 and therefore no question remains over his disqualification. Thus, the reference need not be answered in his context.

-sd-	-sd-	-sd-
O.P. Rawat	**A.K. Joti**	**Sunil Arora**
(Election Commissioner)	**(Chief Election Commissioner)**	**(Election Commissioner)**

Place: New Delhi

Date: 19.01.2018

ANNEXURE-1

Election Commission of lndia

NIRVACHAN SADAN

ASHOKA ROAD, NEWDELHI- 110 001

Reference Case No. 5 of 2015

Reference from the President of India under Section 15(4) of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991.

In re: Petition of Shri Prashant Patel, Advocate, alleging disqualification of Shri Praveen Kumar, Member of the Delhi Legislative Assembly, and 20 other Members of the Delhi Legislative Assembly

Prashant Patel …… Petitioner

Shri Praveen Kumar and 20 Others …… Respondents

ORDER

Perused the following applications seeking impleadment as parties in the present proceedings:-

a) Application dated 9th June, 2016 from Shri Ajay Makan, President, Delhi Pradesh Congress Committee.
b) Application dated 16th June, 2016 from Government of NCT of Delhi.
c) Application dated 28th June, 2016 from Shri Vivek Garg.
d) Application dated 14th July, 2016 from Shri Satish Upadhyay, BharatIya Janata Party
e) Application dated 15'h July, 2016 from Shd S.N. Shukla.

2. Perused also the replies from the following parties/persons to the above applications, received by the Commission in response to its notices/letters :

(i) Letter/Application dated 20th June, 20!6, from Shri Prashant Patel, Petitioner.

(ii) Letter/Application dated 6th July, 2016, from all the respondents MLAs.

(iii) Letter/Application dated 18th July, 2016, from Shri Prashant Patel, Petitioner

3. At the outset, Shri Bishwajit Bhattacharyya, learned senior counsel for respondent No.5, raised a preliminary objection to the maintainability of the present proceedings, particularly on the basis of the complaint dated 28 December, 2015 filed by the petitioner direct before the Commission. He stated that the petitioner first made a two pages complaint dated 19th June, 2014/15 to the President in terms of section 15(3) of the Government of NCT of Delhi Act, 1991 (hereinafter referred to as '1991-Act') alleging that the 2l Members of the Delhi Legislative Assembly (respondents herein) have become disqualified for continuing as Members of the Assembly as they were holding office of profit under the Government of Delhi. Thereafter, on 28th December, 2015, the petitioner allegedly made a second complaint direct to the Commission. According to the learned senior counsel, the Commission should not have taken cognizance of the complaint dated 28th December, 2015 of the petitioner, as the Commission has no jurisdiction to entertain any complaint about the disqualification of a member of the Legislative Sssembly directly. He contended that this second complaint dated 28th December, 2015 should have been made by the petitioner to the President and not directly to the Commission. He emphatically submitted that such entertainment of the second complaint dated 28th December, 2015 by the Commission without jurisdiction strikes at the very root of the initiation and the maintainability of the present proceedings before the Commission. He prayed that the present proceedings should be closed and the President apprised of such outcome.

4. In reply to the above preliminary objection of the learned senior counsel, the petitioner did not make any counter submission. He, however, stated that he had filed a copy of his reply (the so-called second complaint) dated 28th December, 2015, in the President's Secretariat as well and also showed the acknowledgement receipt obtained by him in this behalf from that Secretariat.

5. However, the Commission has duly considered the above preliminary objection of the learned senior counsel for respondent No.5. It is evident from the above objection that the learned senior counsel while raising the above preliminary objection has not taken note of the Commission's notice dated 4th December, 2015, to the petitioner asking him to furnish, by 28th December, 2015, his reply, duly signed by him, alongwith all relevant documents on which he proposed to rely and supported by a duly sworn affidavit. It was in response to this formal notice of the Election Commission that the petitioner filed his reply dated 28th December, 2015, duly signed, along with all relevant documents

on which he proposed to rely and supported by a duly sworn affidavit. Pertinent to point out here that when a similar formal notice dated 16th March, 2016 of the Election Commission was issued to respondents; all the 21 respondents filed their replies to that notice direct before the Commission and not before the President of India. These replies of the respondents have been duly taken on record by the Commission in the present proceedings.

6. It is also not out of place to mention here that once a question has been referred by the President to the Commission for its opinion under Article 103(2) of the Constitution or Section 14(4) of the Government of Union Territories Act, 1963 or Section 15(4) of the 1991-Act, all further correspondence by the Commission by way of its notices, etc., with the petitioner(s) and respondent(s) is done directly with the concerned parties, and so also their pleadings in the form of written statements, rejoinders, affidavits, etc., are filed by the parties directly before the Commission and they are not required to route those documents through the President's Secretariat. This is the normal practice and procedure of the Commission in such reference cases. The same course of action is followed when the Commission receives any similar reference from the Governors of the States under Article 192(2) of the Constitution in relation to the questions of disqualifications of sitting members of the State Legislatures. The Commission has been following this procedure in exercise of its powers under Section 146B of the Representation of the People Act, 1951, which empowers the Commission to regulate its own procedure in the matter of such proceedings.

7. Therefore, the objection raised by the learned senior counsel for respondent No.5 that the petitioner's reply dated 28th December, 2015, the so-called second complaint, cannot be entertained by the Commission has no legal basis and is thus not sustainable being devoid of merit.

8. Heard also the learned counsels for the applicants seeking impleadment as parties to the petition or intervention in the proceedings. Whereas the learned counsels for some of the respondents opposed these applications relying on the replies filed by them in relation to these applications, the learnd counsels for the other respondents stated that the applicants have given voluminous materials with those applications which need detailed examination and prayed for sufficient time for submission of their replies thereto. The Commission clarified to the learned counsels that the Commission was, at this point of time, considering only the question of taking cognizance of the applicants' prayer for impleadment/ intervention and was not examining the validity of the documentary evidence adduced by them along with their applications.

9. The learned counsels for the applicants, Bharatiya Janata Party and Indian National Congress, submitted that the present proceedings raised important questions of law and facts and their interest, being national parties, lay in assisting the Commission to come to right decision by producing all relevant case law and information. It was also submitted on behalf of the Indian National Congress that they are not seeking to play any adversarial role in the matter. The learned senior counsel for the Government of NCT of Delhi submitted that the applicant-Government was a necessary and proper party as the question of disqualification of 21 members of the Legislative Assembly has been raised in the present proceedings and that any adverse decision against the said members will have serious impact on the Government's functioning. Another learned counsel alleged that some of the parties might not produce or might try to suppress some relevant or vital information and that he will assist the Commission in producing such materials.

10. The Commission has examined the relevant provisions of law and also carefully considered the submissions made by the learned senior counsels/counsels on the above applications. It is not in dispute that the present enquiry proceedings have been initiated by the Election Commission on the basis of the reference received from the President of India under section 15(4) of the Government of the National Capital Territory of Delhi Act, 1991 seeking the opinion of the Commission on the question of alleged disqualification of 21 sitting members of the Delhi Legislative Assembly, respondents herein. This question has been raised by the petitioner in his representation dated 19th June, 2014/15, to the President of India and the President has referred that question to the Commission for its opinion under section 15(4) of the said 1991-Act. Thus, the parties to the present proceedings have been determined by the said Presidential reference dated 10th November,2015, to the Commission, namely, Shri Prashant Patel, Advocate, as petitioner, and the 21 MLAs of the Delhi Legislative Assembly named in the said representation dated 19th June, 2014/15 of Shri Prashant Patel, as respondents. Therefore, the above applications of the aforesaid applicants, including the Government of NCT of Delhi, for their impleadment as parties to the present proceedings is not maintainable before the Commission.

11. Insofar as their prayer to appear as interveners before the Commission is concerned, as already mentioned above, Commission has the power to regulate its own procedure in such proceedings under section 146B of the Representation of the People Act, 1951. Therefore, whereas the Commission cannot allow the applicants to be joined as parties to the present proceedings, the Commission may seek their assistance as offered by them, if, and when, it so requires and considers desirable and expedient.

12. One of the respondents orally prayed for permission of the Commission to inspect its relevant file(s) relating to the present proceedings. The petitioner as well as the 21 respondents are hereby permitted to inspect the said file(s), if they so desire, on any working day with prior appointment with the Secretary, RCC Division of the Commission. 13. The matter will now be further heard on 10th August, 2016 (Wednesday) at 3.00 p.m.

-sd-	-sd-	-sd-
(O. P. RAWAT)	(Dr. NASIM ZAIDI)	(A. K. JOTI)
ELECTION COMMISSIONER	CHIEF ELECTION COMMISSIONER	ELECTION COMMISSIONER

New Delhi the 26TH July, 2016

F.No.113/5/2015/RCC

ANNEXURE-2

Election Commission of lndia

NIRVACHAN SADAN

ASHOKA ROAD, NEWDELHI- 110 001

Reference Case No. 5 of 2015

(Under Section 15(4) of the Government of NCT of

Delhi Act, 1991 from the President of India)

In re: Petition from Shri Prashant Patel, Advocate, East of Kailash, New Delhi alleging disqualification of 21 MLAs of Delhi Legislative Assembly for being Members of the Assembly.

ORDER

This is a reference dated 10TH November, 2015, from the President of India under Section 15 (4) of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991 (hereinafter referred to as '1991-Act) seeking the opinion of the Election Commission on the question of disqualification of Shri Praveen Kumar and 20 other Members of Legislative Assembly of the National Capital Territory of Delhi for holding an office of profit under the Government of Delhi as Parliamentary Secretaries, enclosing therewith a letter dated 19th June, 2015 (wrongly mentioned as 19th June, 2014) by Shri Prashant Patel, Advocate.

2. The perusal of the letter dated 19th June, 2015 as forwarded by the President's Secretariat showed that the said letter was not signed by the petitioner, nor was it supported by any affidavit to substantiate the contention of the petitioner that the office of Parliamentary Secretary to the Minister of the Government of Delhi is an office of profit. Therefore, as is the normal practice and procedure adopted by the Commission in such reference cases, a notice was issued to the petitioner on 4th December, 2015 to furnish, by 28th December, 2015, a petition duly signed by the petitioner along with all relevant documents on which he proposed to rely and supported by a duly sworn affidavit. The petitioner responded to the Commission's notice dated 4th December, 2015, on 28th December, 2015, stating that he was filing ‘a fresh petition, duly signed, along with all relevant documents on which I propose to rely and supported by a duly sworn affidavit'. It is pertinent to point out here that though the petitioner stated in his above reply dated 28th December, 2015 that he was submitting a duly sworn affidavit along with his reply, but it was discovered later that no such affidavit

was found annexed to that reply and a mere e-stamp paper of Rs. 10 was found annexed to the reply. The aforesaid reply was also accompanied by 15 other documents listed 'as Annexures to the petition'

3. On receipt of the above reply of the petitioner, a notice was sent on 16th March, 2016 to all the 21 MLAs named in the petition dated 19th June, 2015, The notice was also accompanied by the petitioner's letter dated 19th June, 2015 and also his reply dated 28th December, 2015 and all other documents annexed to that reply of 28th December, 2015. The respondents were directed by that notice to file their reply on or before 11th April, 2016. The respondents filed their written statements on 9th May, 2016, after seeking extension of time for the purpose from the Commission vide their applications dated 8th April, 2016. All the said 21 MLAs (Respondents, herein), submitted in their almost identical written statements that they were not holding any office of profit under the Government of Delhi by reason of their appointment as parliamentary Secretaries. In those written statements, they also raised the issue that the Commission could not entertain the reply dated 28th December, 2015 of the petitioner, which the petitioner had described as 'fresh petition, contending that the said petition was not routed through the president of India and the president had no occasion to apply his mind to the said petition which raised some new grounds which were not included in the original petition dated 19th June, 2015 of the petitioner. The petitioner contested the contentions of the respondents by filing his rejoinder on 8th June, 2016.

4. Meanwhile, certain applications were filed by some third parties seeking intervention in the matter. When these applications were taken up for consideration on 21st July 2016, Shri Bishwajit Bhattacharya, learned senior counsel for respondent no. 5, raised preliminary objection to the maintainability of the reply dated 28th December 2015 of the petitioner, which was described by him as 'second petition' of the petitioner. The commission, by its order dated 26th July,2016, rejected the above preliminary objection of the above mentioned respondent on the ground that the impugned petition filed on 28th December 2015 was in fact reply of the petitioner to the notice dated 4th December 2015 of the commission and was not required to be routed through the President'

5. When the matter was further heard by the Commission on 10th August 2016, all the remaining respondents also raised the same preliminary objection and stated that they should have also been heard on that issue as they have certain additional facts and legal submissions to make and that Shri Bhattacharya advanced arguments only on behalf of respondent No. 5 and he could not be deemed to represent all respondents having not been so authorised by them. Having considered those objections, the Commission decided to give an opportunity to all other respondents as well to make their submissions on the above preliminary objection with regard to the entertainment of the so-called second petition dated 28th December 2015 of the petitioner and adjourned the hearing to 19th August, 2016,

6. Accordingly, detailed submissions were advanced by the learned senior counsels/learned counsels of all the remaining 20 respondents on 19th August, 2016 and 29th August, 2016. The learned senior counsel for the petitioner also made elaborate arguments contending that the so called second petition dated 28th December 2015 was also maintainable and should be taken cognizance of by the Commission for the purpose of giving its opinion on the question of disqualification of 21 MLAs referred by the President to the commission for its opinion under section 15 (4) of the 1991-Act.

7. Shri Manish Vashisht and Shri Sameer Vashisht, learned senior counsels for respondent Nos. 1, 16, 17 and 20, raising the preliminary objection to the maintainability of the alleged second petition dated 28th December, 2015 filed by the petitioner directly before the Commission, stated that the petitioner first made a two pages complaint dated 19th June, 2014/15 to the president in terms of section 15(3) of the 1991-Act alleging that the respondents herein have become disqualified for continuing as Members of the Assembly as they were holding office of profit under the Government of Delhi as Parliamentary Secretaries. Thereafter, on 28th December, 2015, the petitioner allegedly made a second complaint direct to the commission. According to the learned counsels, the commission should not have taken cognizance of the complaint dated 28th December, 2015 of the petitioner, as the matter was not referred by the Hon'ble President. The contention was that the second complaint dated 28th December, 2015 should have been submitted to the President and not directly to the Commission.

8. The learned counsels further contented that in the said second complaint, addressed to the secretary of the commission, the petitioner had raised different allegations which were not originally the part of the complaint dated 19th June, 2015. They questioned the 'improved second complaint' and contended that the second petition was clearly an attempt to create new grounds which were not presented previously in the first petition. The learned counsels were of the opinion that the petitioner entered into the realm of giving evidence without following the due procedure.

9. The learned Counsels further argued on the reliability of the evidences and the provisions of law whereunder such evidences can be considered. It was also stated that if cognizance of a certain document is required to be taken, it has to be the original document and not the photo copy.

10. They further drew the attention towards section 15(3) of the 1991-Act which speaks about the "question of disqualification" and emphasis therefore was made on the word "question", and in the present case the question was

raised by virtue of the first complaint dated 19th June 2015 as to 'whether the said 21 MLAs hold an Office of Profit or not'. Hence, the opinion of the commission with regard to the said question shall be limited to the first complaint alone. In support of their above submissions, they relied upon the decisions of the Supreme Court in *P.K. Sreekantan Vs. P. Sreekumaran Nair* (2006) 13 SCC 574, *Tata lron & Steel Constituencies Ltd., Vs. Sate of Jharkhand & Others* (2014) 1 SCC 536, and the decision of the Madras High Court in *N. Jothi vs. Election Commission of India and another* (Writ Petition No. 17 601 of 2007).

11. The learned Counsels stated that they are not challenging the power and jurisdiction of the Commission to entertain the first Complaint dated 19th June, 2015, but questioning the maintainability of the second complaint dated 28th December 2015. Therefore, they submitted that the commission may continue to hold inquiry but only on the basis of the first complaint and anything coming post-first reference should not be considered.

12. Further, the learned Counsel Shri Sameer Vashisht submitted that the affidavits which are not in conformity with Order 19 Rule 3 of C.P.C, 1908 and Supreme Court Rules, Order 9 Rule 13, are liable to be dismissed. He stated that in the present case, the petitioner has not filed an affidavit in the prescribed format. The learned Counsel contended that the Petitioner purposely did not file an affidavit to evade the penal consequences of Sec. 146 (3) & (4) of the Representation of the people Act, 1951 (hereinafter referred to as '1951-Act'), for the petitioner knew that the allegations made by him are fraud and frivolous and not filing an affidavit will save him from liability under IPC, 1860.

13. The learned Counsel Shri Kamal Mehta, appearing for Respondent Nos. 2 and 5, while reiterating the contentions placed by the above learned Counsels, pointed out that the purpose of filing an affidavit is to ensure that false submissions are not filed and that if the affidavit filed by petitioner in this manner, is accepted then any false statements can be filed in the future proceedings.

14. The learned Senior Counsel Sudhir Nandrajog, on behalf of Respondent No. 4, and learned Counsel Shri Shubhanshu Padhi, appearing on behalf of Respondent No. 9, emphasized that, in the present case, the Second Complaint dated 28th December, 2015 cannot be considered as it was never submitted to the President; that the Commission being a quasi-judicial body has only a limited power and its jurisdiction and power of enquiry start only through a reference from the president which was not done with reference to the Second Complaint dated 28th December, 2015. Therefore, placing strong reliance on the decision of the Madras High Court in the case of N. Jothi (Supra), they contended that the Commission could not enlarge the scope of enquiry. The learned Counsel further argued that the Notice dated 04/12/2015, sent by the Commission was in order to seek signatures and affidavit only of the petitioner. Hence, no additional documents could be submitted by the petitioner under the said notice.

15. The learned Senior Counsel Shri Amitabh Chaturvedi, on behalf of Respondent Nos. 8 and no. 3, submitted that the disqualification is alleged under section 15(1) (a) of the 1991-Act which talks about office of profit, and the complaint is made under section 15(3) of that Act. On the basis of the complaint and documents provided with the original petition, the President referred the matter to the Election Commission. That reference dated 10th November, 2015, from the president specifically mentions the complaint of 19th June 2015, and hence, the reference could not have been on the basis of the second complaint of 28th December, 2015. Second complaint can be considered only if it forms part of the first complaint, which it doesn't. The learned Counsel further stated that for this purpose even the recourse to section 146 of the 1951- Act, cannot be made. He contended that section 146 when enacted in 1951-Act, did not include 1991-Act, and it was a conscious omission from the side of the Parliament that they purposely omitted section 15 of 1991-Act from the purview of 1951-Act, though the Parliament included reference to section 14(4) of the Government of Union Territories Act, 1963 by amending section 146 of the 1951-Act in 1965. For his above proposition, he relied upon the decision of the Supreme Court in *Commissioner of Income Tax, Kerala Vs. Tara Agencies* (2007) 6 SCC 429, *Competition Commission of India Vs. Steel Authority of Indio Ltd., and Another* (2010) 10 SCC 744, and *P.K. Sreekantan Vs. P. Sreeh,maran Nair* (2006) 13 SCC 574, and the decision of the privy Council in *Rai Pramatha Nath Mullick Bahadur Vs. The Secretary of State for India in Council* AIR 1930 Privy Council 64.

16. The learned Senior Counsel further alleged that, assuming that the Commission has powers to call for documents under section 146 of the 1951-Act in the present case, the said power can be exercised only after the Commission has examined all the materials and was satisfied that it was insufficient for forming an opinion. It was contended that the Commission has to first enquire on the basis of evidence "produced of their own accord" by the parties. The notice of the Commission calls for evidence from the petitioner and hence the resultant evidences produced before the Commission cannot be termed as being submitted by him on his "own accord".

17. The learned senior Counsel referring to the term "further correspondence" in para 6 of the order of the Commission dated 26th July, 2016, contended that the said observation made by the Commission cannot be attracted here as there was no such procedure followed. He submitted that Section 146B of 1951-Act cannot be used to override the requirements under Sec 146 of the Act, contending that if a procedure is prescribed for a particular purpose, that thing has to be only in accordance with that and in no other manner. His argument was that by virtue of Section 40 of 1991-Act, the Commission will have power only in respect of the matters relating to conduct of elections referred to therein.

Hence, it was a conscious omission that when Sec 15 of the 1991-Act is not referred to specifically in Section 146 of the 1951-Act, the Commission has no power under the same in the present case.

18. The learned Counsel Shri Rajat Navet, on behalf of respondent No. 10, submitted that if the Legislature did not deliberately include a provision, Election Commission cannot insert and go beyond the text of statute. The original complaint had three important things to be examined: (i) M.L.As, given office of Parliamentary Secretaries by virtue of order dated 13.03.2015 issued by the Chief Minister, (ii) Use of Government transport by them, (iii) Office space in Minister's office as Parliamentary Secretaries. Hence, the entire scope of reference is limited to the above three things, and all the remaining allegations under second Complaint are beyond the Presidential reference.

19. The learned Counsel Shri Jeevesh Nagrath, appearing on behalf of Respondents Nos. 18 and 15, reiterating the earlier submissions placed by the learned counsels, submitted that the second complaint contains baseless and irrelevant assertions where the petitioner has challenged the amendment sought to be made by the Government in the law relating to removal of disqualification of M.L.As and the retrospective nature of the Bill introduced for the purpose. The counsel questioned these assertions and stated that this is not the appropriate forum to raise these issues. Relying on the observations of the Supreme Court in *Arikala Narasa Reddy v Venkata Ram Reddy Reddygari and Another* AIR 2014 SC 1290, he further submitted that the Commission could not look into the evidence beyond the original pleadings of the petitioner.

20. The learned Counsel Shri Sushil Kumar Sharma, appearing for Respondents No. 19, questioned the validity of the affidavit filed by the petitioner and, relying upon the decision of the Supreme Court in *Amar Singh Vs. Union of India and Ors* (2011) 7 SCC 69, stated that an undertaking written on blank paper cannot be considered as an affidavit. He submitted that the evidences cannot be relied upon until it is told how they were procured or without submitting the originals.

21. All the learned Counsels for the remaining respondents adopted the contentions placed by the above learned counsels.

22. The learned Senior Counsel Shri Atul Nanda, appearing on behalf of the petitioner Prashant Patel, in his counter submissions, contended that the present matter before the Commission is in the nature of inquisitorial jurisdiction not adversarial jurisdiction. Hence the present inquiry is not based on the facts of the Complaint but on the question which is referred by the President to the Commission.

23. The learned Senior Counsel further stated that, what was referred to the Commission under Sec-15 of 1991-Act were not certain facts mentioned in the complaint but a question whether somebody is holding 'office of profit" for which the inquiry has to be made. The Counsel also stated that Section 15 of 1991-Act is in *pari materia* with Article 192 of Indian Constitution. The jurisdiction of the Commission while conducting the enquiry is neither bound by the pleadings of the accuser nor of the accused. Hence, the documents filed by the petitioner may not cause any prejudice. Even if the complaint is frivolous or incomplete, or even withdrawn, there shall not be any difficulty to the Commission in holding the inquiry and forming an opinion to be submitted to the President of India.

24. The learned Senior Counsel also argued relying on the decisions of the Supreme Court in the cases of *Brandaben Noyak* (AIR 1965 SC 1892) and *N.G. Ranga* (AIR 1978 SC 1609), that there is nothing wrong in sending a notice to the petitioner and it cannot in any case be contended as impediment in conducting an inquiry by the Commission. Once the 'question' of disqualification is raised, it is immaterial to look into the fact as to by whom it was raised and under what circumstances it was raised. He further stated that an affidavit not filed or not notarized is a procedural error that can be corrected at any stage of the proceeding. Hence the maintainability of the reference does not depend on the complainant, when the complainant has filed number of documents.

25. The learned Senior Counsel also submitted that if the allegation raised in the Complaint is wrong, the Petitioner is ready to face the consequences, and till then no procedural irregularity should stand in the way of dispensing justice. He also submitted an affidavit of the petitioner in support of his above submissions.

26. The learned Counsel Shri Manish Vashisht, in his reply to the submissions placed on behalf of the Petitioner, stated that whenever there are civil consequences in a matter which are tried by a tribunal/commission/court, the nature of such proceedings will be adversarial. He stated that we have a Constitution which follows common law and the Commission being a constitutional body, must follow common law. The learned Counsel, proceeding further, stated that paragraph 2 of the fresh affidavit filed by the Petitioner on that day reads "[all documents. .....drafted by me]" and that the petitioner has thus admitted that all the documents filed by him are fabricated. He also stated that the term "satisfaction" under Sec 146 of the 1951-Act cannot be achieved by the Commission unless both the parties are given ample opportunity to be heard. The Counsel pleaded that the Commission should have recourse to the principles of natural justice.

27. The learned Counsel Shri Sushil Kumar, in his reply, contended that neither the respondents nor the Counsels were aware of the new affidavit filed by the Petitioner and asked whether the Commission has accepted it in its record or not. The Counsel stated that the Petitioner filed a complaint last year and he is filing an affidavit today saying that whatever he has filed is true to his knowledge and belief and that cannot be admitted. The counsel sought extra time to file his written submissions, on the basis of this new development.

28. The Commission has carefully considered the submissions and the counter submissions made by the learned senior counsels/counsels of the respondents as well as of the petitioner. Before going into the relative merits of the contentions and counter contentions of the contending parties herein, it would be advisable to dispose of the issue of application of section 146 of the 1951- Act in relation to the present proceedings, as raised by many learned counsels. It was mainly contended by the learned counsel Shri Amitabh Chaturvedi that the reference to section 15 (4) of the 1991-Act in section 146 of the 1951- Act was deliberately not made by Parliament when the 1991-Act was enacted, whereas a reference to sub-section (4) of section 14 of the Government of Union Territories Act, 1963 was specifically made in section 146 of the 1951- Act by amending it in 1965. It appears that the learned counsel has failed to take note of the fact that section 146 of the 1951- Act, in the present form, was itself introduced in the 1951-Act for the first time in 1965, and it was not an amendment to that section which was made in 1965, as contended by him. Section 146 of the 1951-Act, as originally enacted in 1951, dealt with a totally different subject of disqualification on the ground of conviction, etc., for holding offices in local authorities, public trusts, etc. This section 146 as originally enacted was omitted from the 1951-Act in 1956 by the Representation of the People (Amendment) Act, 1956, on the recommendation of the Bhargava Committee on Electoral Reforms. The present section 146 - in fact, the whole Chapter IV of Part VIII containing sections 146, 146A, 146B and 146C - was inserted in the 1951-Act for the first time in 1965. This insertion of the said Chapter was made by Parliament on the basis of some observations made by the Supreme Court in the case of *Brundaban Nayak Vs. Election Commission of India* (AIR 1965 SC 1892) to the effect that the Election Commission should be vested with powers of a civil court in the matter of summoning of witnesses, records, etc., in the enquiries conducted by the Commission on the references received by it from the President and Governors seeking its opinion on the question of disqualification of sitting members of Parliament and State Legislatures. Pertinent to add that under the law as it stood in 1965, the Commission could get such references from the President under Article 103 (2) of the Constitution and section 14 (4) of the Government of Union Territories Acq 1963, and from the Governors under Article 192 (2) of the Constitution, and, accordingly, all relevant provisions under the Constitution and the enacted laws as they stood at that time were referred to in section 146 of the 1951-Act. Thus, it cannot be said that the omission of reference to section 15(4) of the 1991-Act in section 146 of the 1951- Act was a deliberate omission; it was only an inadvertent omission in 1991 at the time of enactment of the 1991-Act. There are several other similar inadvertent omissions in the 1951-Act; see for example, section 29B, which still contains reference to the Companies Act, 1956 and Foreign Contributions (Regulations) Act, 1976, which have since been repealed and replaced by new Acts in 2013 and 2010 respectively.

29. But such inadvertent omission does not affect in any manner the powers of the Commission to conduct an enquiry for the purpose of formulating its opinion for answering the question referred by the President to the Commission for its opinion under section 15 (4) of the 1991-Act. A Constitution Bench of the Supreme Court has categorically held in *Election Commission of India Vs. N.G. Ranga* (AIR 1978 SC 1609) that the Election Commission has the undoubted power to conduct enquiry in the case of a reference received by it from the President or the Governor seeking its opinion on the question of disqualification of a sitting Member of Parliament or State Legislature. It thus necessarily follows that the Commission can always look to the provisions of section 146 of the 1951-Act for guidance as to the procedure that may be adopted and followed by the Commission in the matter of enquires in references from the President. Before section 146 came to be inserted in the 1951-Act in 1965, the Commission was conducting, and had in fact conducted, several enquires in the references received from the President and Governors under Articles 103(2) and 192(2) of the Constitution. The Supreme Court has held in *Mohinder Singh Gill Vs. Chief Election Commissioner* (AIR 1978 SC. 851) that where an authority has been entrusted with some duty or function to perform, all necessary and incidental powers to effectuate the performance of that duty or function are impliedly vested in such authority. Thus, even in the absence of a direct reference to section 15 (4) of the 1991 Act in section 146 of the 1951-Act, the Commission can always invoke the principles and the guidelines given by Parliament in section 146 while conducting any enquiry for the purpose of formulating its opinion to be tendered to the President/Governors either under the Constitution or under any statutory law in the matter of disqualification of sitting members of Parliament and State Legislatures. Accordingly, in the present case as well, the Commission can evolve its own procedure for conducting the enquiry into the matter of disqualification of 21 members of Delhi Legislative Assembly, as envisaged in section 146B of the 1951-Act.

30. In this context, it may also be relevant to take note of the scheme of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991 (1991-Act). It was enacted **to supplement** the provisions of the constitution relating to the Legislative Assembly and a council of Ministers for the National Capital Territory of Delhi and for matters connected therewith or incidental thereto. Section 15 of the 1991-Act, deals with the disqualification of members of the Delhi Legislative Assembly. The question of such disqualification in the matter of sitting members of the Delhi Legislative Assembly can only be decided by the president as specified under sub-section (3) of the said provision and by virtue of

sub-section (4) of the said provision, before arriving at such decision, the President shall obtain the opinion of the Election commission and shall act according to such opinion.

31. While interpreting the provisions of section 15(4) of the 1991-Act vis-a-vis section 146 of the 1951-Act, the commission has to be guided by the following observations of the Supreme court in *Reserve Bank of India vs. Peerless General Finance and Investment constituencies' Ltd.,* 1987 SCR (2) 1:

> *"Interpretation must depend on the text and the context. They are the basis of interpretation. One may well say if the text is the texture, context is what gives the colour. Neither can be ignored.....A statute is best interpreted when we know why it was enacted. With this knowledge, the statute must be read' first as a whole and then section by section, clause by clause, phrase by phrase and word by word. If a statute is looked at, in the context of its enactment, with the glasses of the statute-maker, provided by such context, its scheme, the sections, clauses, phrases and words may take colour and appear different than when the statute is looked at without the glasses provided by the context. With these glasses we must look at the Act as a whole and discover what each section, each clause, each phrase and each word is meant and designed to say as to fit into the scheme of the entire Act. No part of a statute and no word of a statute can be construed in isolation. Statutes have to be construed so that every word has a place and everything is in its Place."*

32. *ln Commercial Tax Officer, Rajasthan Vs. III/S Binani Cement Ltd. & Anr.,*(2014) 3 SCR 482,the Supreme Court, referring to Corpus Juris Secundum, 82 C.J.S. Statutes, stated that when construing a general and a specific statute pertaining to the same topic, it is necessary to consider the statutes as consistent with one another and such statutes therefore should be harmonized, if possible, with the objective of giving effect to a consistent legislative policy.

33. Having noticed the aforesaid, it has to be concluded that the rule of statutory construction that the specific governs the general is not an absolute rule but is merely a strong indication of statutory meaning that can be overcome by textual indications that point in the other direction.

34. Therefore, the Commission is of the view that the provisions of Section 146 of the 1951- Act can be rightly looked into in the instant case for guidance in the conduct of the present enquiry.

35. Accordingly, the objection raised by the learned Senior Counsels for the respondent that the Commission has no power to derive guidance under section 146 of 1951-Act, has no legal basis and is thus not sustainable being devoid of merit.

36. Having thus decided the procedure that may be followed by the Commission in the present case, the next question to be decided is the nature of enquiry and the course of the proceedings that may be adopted by the Commission. In the Commission's opinion, the proceedings in such reference cases from the President or the Governors cannot be said to be adversarial as in an ordinary civil *lis*, where the respective rights of one party vis-a-vis the other party to the *lis* are to be determined by the Commission. In the cases of present nature, the Commission has to tender its opinion to the President or, as the case may be, to the Governor of the State concerned on the question whether any sitting Member of Parliament or State Legislature whose case is referred to the Commission has become subject to disqualification for continuing as such Member of Parliament or State Legislature, without adjudicating on the rights of the complaint. In a case of this kind, the Commission has to formulate and tender its opinion on the question referred to it, even if the original complainant fails or refuses to render assistance to the Commission in its enquiry. In the past, in a case of similar nature referred by the Governor of Sikkim to the Commission for its opinion, the complainant/petitioner sought to withdraw the complaint before the Commission. The Commission rejected that prayer of the complainant/petitioner and tendered its opinion to the Governor of Sikkim after due enquiry called for in the matter. Thus, the powers of Commission in such cases are not circumscribed by the averments or allegations made in the complaint of the complainant alone. It can, nay, has to, gather all necessary information and materials from all such sources as are relevant for the purpose of formulating its opinion on the question referred to it and for tendering the same to the referring authority.

37. Viewed in the above light, the Commission sees no infirmity or irregularity in the issue of the notice dated 04th December, 2015 to the petitioner in the present case asking him to file, by 28th December, 2015, a duly signed petition (as the original petition was not signed by him) and to furnish all such documents on which he proposed to rely in support of his allegations in his original complaint dated 19th June, 2015. The so-called second petition dated 28th December, 2015 was filed by the petitioner in response to the Commission's said notice dated 04th December, 2015. It is true that the petitioner has said in his reply dated 28th December, 2015 in response to the Commission's said notice dated 04th December, 2015 that he is submitting a 'fresh petition'. But the Commission has to see the substance of the said reply, mentioned by the petitioner as 'fresh petition', and not its mere form. In the Commission's considered view, the said reply of the petitioner was not required to be routed through the President Secretariat. Once the President has made a reference to the Commission for its opinion, all further correspondence by the Commission with the concerned parties or vice-versa has to be made directly and not through the President's Secretariat. Pertinent to point out here that the written

statements filed by the respondents on 9th May 2016 in reply to the Commission's notice dated 16th March, 2016 have been submitted by them direct to the Commission and not routed through the President's Secretariat. If the written statements of the respondents filed direct before the Commission can be taken on record, there is no reason for throwing away the so called petition dated 28th December, 2015 of the petition, as contended by the respondents, without giving a look thereto or without taking cognizance thereof. It is also not out of place to mention that when the President makes a reference to the Supreme Court under Article 143 of the Constitution seeking the opinion of the apex court on any question of law, the Supreme Court calls for the reply of the Attorney General of India and such other authorities as are considered relevant direct under the Supreme Court Rules and there is no requirement that any such correspondence with the concerned authorities should be made by the Supreme Court through the President's Secretariat.

38. The Commission also sees quite force in the submissions of the learned senior counsel for the petitioner that under section 15 (4) of the 1991-Act what has been referred by the President for the Commission's opinion is the 'question' whether the 21 members of Delhi Legislative Assembly have become subject to disqualification by reason of holding office of profit as Parliamentary Secretaries, and not the mere complaint of the petitioner. In that view of the matter also, the Commission cannot completely ignore the so-called second petition dated 28th December, 2015 of the petitioner.

39. Thus, the Commission, reiterating paragraph 6 of its previous order dated 26th July, 2015, maintains that the Commission may require any person, subject to any privilege which may be claimed by that person under any law for the time being in force, to furnish information on such points or matters as in the opinion of the Commission may be useful for, or relevant to, the subject-matter of the inquiry. Therefore, the Commission may, at any time in the course of such inquiry by way of its notices, call for any documents which in its opinion are relevant and important to dispense with justice. Furthermore, the Commission may direct the parties to furnish information elaborating such points or matters as in the opinion of the Commission may be useful for, or relevant to, the subject-matter of the inquiry if, and when, it so requires and considers desirable and expedient.

40. In regard to this, the Commission sent a notice dated 4th December, 2015, to the petitioner asking him to furnish, by 28th December, 2015, his reply, duly signed by him, along with all relevant documents on which he proposed to rely and supported by a duly sworn affidavit. It was in response to this formal notice of the Election Commission that the petitioner filed his reply dated 28th December, 2015. Any procedural defect of not filing the affidavit cannot limit the powers of the Commission in entertaining the so-called second petition filed by the Petitioner. Corroboration of the documents filed by the parties by way of replies to notices sent from the Commission, in the inquiry will be decided by the Commission at the next stage. For that matter, the Commission may seek explanation from the Petitioner for not furnishing the originals of the documents submitted on 28th December, 2015 and which are considered relevant.

41. However, the Commission also finds sufficient force in the submissions of the learned senior counsels/ counsels of the respondents that the petitioner cannot enlarge the scope of the enquiry by raising some additional 'questions' in his replies, rejoinder, etc., before the Commission. Therefore, the Commission has to give a look to the so-called second petition dated 28th December, 2015 of the petitioner to ascertain whether any extraneous or additional questions of the disqualification of the respondents have been raised by him in his reply to the Commission's notice dated 04th December, 2015. None of the learned Counsel for the respondents has raised any specific objection that even paras 1 and 2 of the petitioner's reply dated 28th December, 2015 can also not be looked into by the Commission. These two Paras are mere reiteration of the question raised by the petitioner in his original petition 19.06.2015. In the Commission's view, there also cannot be any valid objection to the contents of paras 3, 5, 6, 7, 8, 9, 10 and 14 (except the penultimate sub-para of that para 14 starting with words 'The position of 'Parliamentary Secretaries' and ending with the words 'by SK Sharma, page 153-158'), as all these paragraphs relate to the question raised by the petitioner in his original petition dated 19th June, 2015, i.e., the question of disqualification of respondents for holding office of profit under the Government of Delhi as Parliamentary Secretaries. However, the contents of paras 4, 11, 12, 13 and the above mentioned penultimate sub-paragraph of paragraph of 14 make some extraneous/additional allegations and insinuations. Accordingly, these paragraphs 4, 11, 12, 13 and the above mentioned penultimate sub-paragraph of paragraph of 14 are directed to be struck off from the reply dated 28th December, 2015 of the petitioner and consequently, the documents annexed to his aforesaid reply at serial number 7, 8, 13, 15 and 16 in support of this averments/ observations in the above said Paras are also directed to be not taken on record of the present proceedings.

42. Before parting with this order, it may also be relevant to refer to an allegation of the respondents that the petitioner had forged/fabricated certain documents which have been brought on record by him. In support of their above allegation, they also referred to the affidavit of the petitioner which was filed by him during the last hearing on 29.08.2016, wherein he stated "That the Petition, Rejoinder and documents filed by me till today in the above matter have been drafted by the Deponent". Apart from the fact that none of the respondents have specifically mentioned any specific document which is allegedly forged or fabricated by the petitioner, the Commission is not convinced that by the mere use of the word 'drafted', the petitioner has admitted the fact of having forged or fabricated any documents brought

on the record of the Commission. In fact, the petitioner himself has refuted that allegation by filing an additional affidavit subsequently correcting the above typographical mistake in his earlier affidavit.

43. The preliminary issue raised by the respondents with regard to the maintainability of the so-called second petition dated 28th December, 2015 of the petitioner is hereby decided accordingly.

44. The matter will now be further heard on the main question referred on 10th November, 2015 by the President to the Commission for its opinion on23rd September, 2016 (Friday) at 03.00 p.m. in the Commission's Secretariat.

-sd-	-sd-	-sd-
(O. P. RAWAT)	(DR. NASIM ZAIDI)	(A. K. JOTI)
ELECTION COMMISSIONER	CHIEF ELECTION COMMISSIONER	ELECTION COMMISSIONER

Dated: 16th September, 2016.

F. No. 113/5/2015/RCC-Vol.IV

ANNEXURE-3

Election Commission of lndia

NIRVACHAN SADAN

ASHOKA ROAD, NEWDELHI- 110 001

Reference Case No. 5 of 2015

[Reference from the President of India under Section 15(4) of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991]

In re: *Reference case No- 5 of 2015 -Reference received from the president of India under Section 15(4) of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991 seeking opinion of the Election Commission of India on the question of alleged disqualification of Shri Praveen Kumar and 20 others, Members of the Delhi Legislative Assembly, under Section 15(1)(a) of the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991.*

ORDER

This is the reference, dated 10th November 2015, received from the president of India seeking opinion of the Election commission of India under Section 15(a) of the Government of National capital Territory of Delhi Act, 1991 (hereinafter "GNCTD Act") on the question whether Shri Praveen Kumar and 20 other Members of Legislative Assembly of the National capital territory of Delhi have become subject to disqualification, for being members of that Assembly, under Section 15(1)(a) of the GNCTD Act.

2. In the said reference, the question of disqualification of the said MLAs arose because of a petition, dated 22nd June 2015, filed by Shri Prashant Patel (hereinafter the "petitioner") before the President of India, whereby the Petitioner has sought disqualification of Shri Praveen Kumar and 20 other Members of Delhi Legislative Assembly (hereinafter the "Respondents") under Section 15 (1) (a) of the GNCTD Act on the ground of holding the office of profit under the Government of NCT of Delhi as Parliamentary Secretaries to the Ministers of the Government of NCT of Delhi.

3. The respondents were appointed as Parliamentary Secretaries to the Ministers of the Delhi Government vide order, dated 13th March 2015, of the Delhi Government. While the proceedings under the present reference were being carried before the Commission, a petition challenging the said appointment order was held before the Hon'ble High court of Delhi.

4. The Hon'ble Delhi High Court on 08th September 2016, in Writ Petition (Civil) No. 4714 of 2015 (*Rashtriya Mukti Morcha v. Government of NCT & Others)* set aside the said appointment order on the ground that it was passed without communicating the decision of the Government to the Lieutenant Governor for his views/concurrence. The Order of the High Court is reproduced hereunder for convenience of reference:-

> *"1. This petition by way of Public Interest Litigation has been filed challenging the order of the Government of Delhi dated 13.03.2015 appointing the Members of Delhi Legislative Assembly named therein as Parliamentary secretaries to the Ministers, Government of NCT of Delhi.*
>
> *2. One of the grounds of challenge is that the said order was passed without communicating the decision to the Lieutenant Governor for his views/concurrence as required under Article 239AA of the Constitution of India.*
>
> *3. Having considered the very same issue in WP.(C) No. 5888/2015 and batch titled Government of NCT of Delhi v. (Union of India & Ors., by judgment dated 04.08.2016 this Court held that-*
>
> *"It is mandatory under the constitutional scheme to communicate the decision of the Council of Ministers to the Lt. Governor even in relation to the matters in respect of which power to make laws has been conferred on the Legislative Assembly of NCI of Delhi under clause (3)(a) of Article 239AA of the Constitution and an order thereon can be issued only where the Lt. Governor does not take a different view and no reference to the central Government is required in terms of the proviso to clause (4) of Article 239AA of the Constitution read with Chapter V of the Transaction of Business of the Government of NCT of Delhi Rules, 1993."*
>
> *4. The specific plea of the petitioner that the impugned order dated 13.03.2015 was passed without communicating the decision to the Lieutenant Governor for his views/concurrence has not been disputed by the learned counsels appearing for the respondents.*
>
> *5. Therefore, we find force in the submission of the learned counsel for the petitioner that the issue is squarely covered by the decision in and batch titled Government of NCT of Delhi v. (Union of India & Ors. Accordingly, without going into the other contentions raised in the writ petition, the impugned order dated 13.03.2015 is hereby set aside. The writ petition is accordingly allowed. No costs.*
>
> CHIEF JUSTICE
>
> SANGITA DHINGRA SEHGAL, J.
>
> SEPTEMBER 08, 2016/VLD"

5. The respondents have raised a preliminary objection as to the maintainability of the present reference case on the ground that after the Delhi High Court set aside the appointment order of 13th March 2015, the question of alleged disqualification does not arise.

Submissions made by the Parties

6. Shri. Manish Vashisht and Shri. Sameer Vashisht, learned counsels appearing for the respondent no. 1, 16, 17, and 20, contended that the post of Parliamentary Secretaries has become non-existent after Hon'ble Delhi High Court's order and hence, the Commission need not unnecessarily proceed with the reference case.

7. Further, the respondent nos. 1-6 and 8-21 have reiterated that the proceedings before the Commission relating to the reference case have become infructuous and otiose after the appointment order was set aside by the High Court. The respondents have stated that the High Court by setting aside the appointment order has declared it as illegal, unconstitutional and *void ab initio*, meaning thereby that the sole ground for alleged disqualification does not survive. According to the respondents, the necessary corollary of the High Court's order is that the "office" of Parliamentary Secretaries was never existent and, thus, no question of any profit and consequential disqualification arises.

8. The petitioner in his rejoinder has argued that respondent's contention about the non-existence of 'office' of Parliamentary Secretaries after the High Court's order is incorrect. It is contended by the petitioner that the Delhi High Court has only 'set aside' the appointment order and has not held it to be *void ab initio*. The petitioner states that by misreading the order of the High Court, the respondents are misleading the Commission and delaying the process of justice.

9. The petitioner further submits that in absence of any other expression to the contrary, the High Court's order shall be effective from its date, that is, 08th September, 2016 and it is not open for the respondents to give any other interpretation to the said Order. Hence, the petitioner argues that the High Court's order will not have any bearing on the proceedings before the Commission relating to the present reference case, as the respondents did hold the office of Parliamentary Secretaries from 13th March 2015, to 08th September 2016.

10. The learned counsel for the petitioner further argued that the Order of Hon'ble High Court dated 08th September 2016 has no effect on the proceedings initiated before the Commission as there are no words such as "*void ab initio*" in the said order as argued by the counsels for respondents. Hence, the submissions of the respondents are not in line with the original wordings of the order passed by the Hon'ble High Court and should be rejected. The Petitioner also referred to the judgment of Hon'ble Supreme Court in *State of Punjab v. Gurudev Singh* (1991) 4 SCC 1, which relates to dismissal of a police official of the State of Punjab, wherein the Apex Court held that:

> *"5. If an Act is void or ultra-vires it is enough for the Court to declare it so and it collapses automatically, it need not be set aside, the aggrieved party can simply seek a declaration that it is void and not binding upon him. A declaration merely declares the existing state of affairs and does not 'quash' so as to produce a new state of affairs.*
>
> *6. But nonetheless the impugned dismissal order has at least a de-facto operation unless and until it is declared to be void or nullity by a competent body or Court." (**emphasis supplied**).*

The learned senior counsel of the petitioner contended that the appointment order of the Government of Delhi was still capable of having legal consequences as the Hon'ble Delhi High Court had not declared it void but had only set aside the same. Even if the Court has declared the said appointment order illegal, it will only have a prospective effect. Hence, the Respondent MLAs held the office of Parliamentary Secretaries from 13th March 2015 till the 8th September 2016 and they have incurred disqualification the moment the appointment order dated 13th March 2015 was made. He also referred to the judgment of the Rajasthan High Court in *Hoti Lal v. Raj Bahadur* AIR 1959 Raj 227 wherein it was stated that even if the appointment was irregular, that would not save a person from the disqualification under Article 102.

11. The learned senior counsel for the petitioner further stated that the Respondent MLAs would have incurred disqualification, even if they held the office for a minute and, in the instant case, since they have enjoyed the perks from the date of their appointment on 13th March 2015 till the time the appointment order was set aside by the Hon'ble Delhi High Court on 8th September 2016, this would attract disqualification. He summed up his arguments by stating that there can be no dispute with regard to the fact that the Hon'ble Delhi High Court Order was about the setting aside of the impugned appointment order, and, as long as there is office of profit, the holder of such office shall incur disqualification. Hence, the subsequent setting aside of the said order will not make the reference infructuous.

12. Shri Amitabh Chaturvedi, the learned counsel for the Respondent no. 8, contended that there is no dispute from the side of either party that the Order of appointment dated 13th March 2015 was challenged before the Hon'ble Delhi High Court. However, the only issue before the Hon'ble High Court was whether the order was vitiated by any error in exercise of the jurisdiction by the Government of Delhi conferred under Article 239AA of the Constitution read with the provisions of the GNCT of Delhi Act, 1991 and the Transaction of Business Rules, 1993. According to the W.P.(C) No.5888/2015 *Government of NCT of Delhi v. Union of India & Ors.*, in the parent judgment dated 04th August 2016 on this issue, it was stated what the GNCT could do. As per the said judgment, the Legislative Assembly of NCT of Delhi shall have the power to make laws for the whole or any part of the NCT of Delhi, with some exceptions. As per Clause (a) of Article 239AA, the Council of Ministers are conferred with certain executive powers and the executive powers so conferred are co- extensive with the legislative powers under clause (3). Therefore, the only question Hon'ble Delhi High Court was examining was whether the appointment order dated 13th March, 2015 was in compliance with Article 239AA (4) and (3) of the Constitution. It was further contended that the Court may not use the word 'void' directly; however, declaring the said order as unconstitutional/*ultra vires* will have the same meaning as void. The coexistence of executive and legislative powers of the authority will be decided by looking into the competence of the said authority while passing such orders. Therefore, if the same is passed without authority, the same shall be ultra vires rendering it void. Therefore, the contention of the petitioner that the said order of the Hon'ble Delhi High Court will only have a prospective effect is incorrect. It is quite clear that in the instant case, an appointment order passed by the Delhi Government which is an executive action was the one on which the High Court had come to the conclusion that the same was taken without the requisite executive competence and, hence, it is unconstitutional. It was further contended that by virtue of the Hon'ble Delhi High Court Order, the impugned order of the Government of Delhi dated 13th March 2015 never had any existence which is conclusive of the fact that no office was created. Hence, the conjoint reading of the prayer of the Petitioners in the Writ Petition filed before Hon'ble Delhi High Court and the order of the High Court makes it clear that the impugned order dated 13th March 2015 is *void ab initio*.

13. During the hearing dated 22nd November, 2016 before the Commission, the learned counsel for the respondent Nos. 1 , 17 and 20 Shri Manish Vashisht further argued that the appointment order of the Government of Delhi has been declared *void ab initio* for not being in accordance with Art. 239AA by the Hon'ble Delhi High Court. The learned counsel contended that by virtue of the Hon'ble Delhi High Court order, the impugned order of 13th March 2015 is "set aside". The dictionary meaning of the word "set aside" has to be understood as to annul, quash or to declare void. The order of the Hon'ble Delhi High Court quashed the order of the Government of Delhi under Art. 239AA and as the appointment order was set aside i.e. declared nullity in law, consequently, there is nothing left to be decided by the

Commission. The counsel referred to the case of *Bileshwar Khan Udyog Khedut Shahakari Mandali Limited etc. v. Union of India* (1999) 2 SCC 518, wherein it was held that the ordinary meaning of set aside is provided as "order is non-existent or quashed". In another case of *Shesh Mani Shukla v. D.I.O.S. Deoria and Ors*. 2009 (15) SCC 436, it was observed that an unconstitutional order is void.

14. The learned counsel for the respondent nos. 9 and 13, Shri Shubhranshu Padhi also argued that the meaning of words "set aside" as used in the order of the Hon'ble Delhi Court is that the non-compliance of any mandatory provision under the statute, in this matter under Art. 239AA of the Constitution of India, makes it null and void. He further argued that Art. 102 of the Constitution of India which states that '*if he holds any office of profit*' makes the holding of an office a *sine qua non* for attracting disqualification. However, when the posts of Parliamentary Secretaries themselves were set aside by the Hon'ble Delhi High Court, reading of the judgement harmoniously with Art. 102 clearly shows that the respondents were never holders of any office. Thus, the law will operate retrospectively and date back to the date of appointment i.e. 13th March 2015. Hence, what can be concluded is that as the appointment itself was not done validly, the question of office of profit will not arise in any way. The learned counsel referred to the case of *Shibu Soren vs. Dayanand Sahay & Ors*, AIR 2001 SC 2583 which clarifies what an 'Office of Profit' is, i.e. a *"person should hold an office under the Govt., office should be office of profit and office should not be exempted.* "Another case that was referred to by the learned counsel was of *Shrimati Kanta Kathuria v. Manak Chand Surana* (1969) 3 SCC 268. It was contended that as per this judgement of the Hon'ble Supreme Court, it was held that an office must be independent of its holder. However, according to the arguments made by the learned counsel, in the present reference, as the office itself has been quashed, the law shall be retrospective in nature making the appointment *void ab initio*. The Hon'ble Supreme Court in *P.V. George and Ors. v. State of Kerala and Ors*. (2007) 3 SCC 557 held that *"the law declared by a court will have a retrospective effect if not otherwise stated to be so specifically.* " Hence, once the appointment order was set aside by the Hon'ble Delhi High Court, it would date back to the date of the appointment and as there is no office which one is holding the proceedings must be dropped.

15. The learned counsel for the respondent Nos. 15 and 18, Shri Jeevesh Nagrath contended that if the impact of the Hon'ble High Court order is considered to be *non est*, and if the appointment is considered valid then the decision of the Hon'ble Delhi High Court itself becomes nugatory. However, in the present matter despite the decision of the Hon'ble Delhi High Court, the petitioner wants the Commission to accept that the appointment was valid before it was set aside. As the order of the Hon'ble Delhi High Court clearly held the appointment order of the Government of Delhi to be unconstitutional, due to reason of being non-compliant with Art. 239AA, it cannot be said that the order was valid till 08th September 2016. This argument will amount to saying that an unconstitutional act was valid till it was declared unconstitutional.

16. The learned counsel for the respondent No.7, Ms. Trisha Nagpal contended that present proceeding must be dropped in view of the order of the Hon'ble Delhi High Court. The learned counsel for the respondent nos. 6, 17 and 21, Shri Rikky Gupta argued that an order when set aside cannot be held valid for some period though void since the beginning. An unconstitutional order is void as it ignores the constitutional authority and is therefore of no effect. The usage of the words "set aside" in the order of the Hon'ble Delhi High Court amounts to setting aside of order as null and void since its inception. Therefore, since the order of appointment itself was not valid, there was no office, and subsequently no enquiry is needed. The learned counsel for the respondent nos. 4, 8 and 11, Ms. Reeva Chugh and for respondent No. 19 Shri Sushil Sharma adopted the submissions of the other learned counsels.

17. During the hearing dated 16th December 2016 before the Commission, the learned counsel for the respondent nos. 2, 5 and 14, Shri Kamal Mehta contend that the order given by the Hon'ble Delhi High Court has a direct impact on the proceedings of this case. He further stated that debate on the words "set aside" in the order of the High Court is of separate jurisprudence as the nomenclature in law is never important; rather, it is only the substance derived which is important. The Delhi High Court in its order quashes the substance of the present reference with the words "set aside" and, therefore, it cannot be argued that it does not mean 'void', as it is a settled principle that the violation of the Constitution is void per se. The learned counsel further contended that the appointment of Parliamentary Secretaries is a species of contract. As the contours of rights and duties are derived from the contract of service between the employer and the employee, the impugned appointment was under a mistaken belief of law which is not voidable but is void ab initio. Thus, as the jurisdiction of Commission cannot stand beyond 'office' and 'office of profit', the threshold created by the Hon'ble High Court Order as the office being non-existing is an irregularity of incurable nature. Hence, the petitioner can only succeed if they can prove that the appointment was not contrary to the Constitution.

18. The learned counsel for the respondent nos. 10 and 12, Shri Rajat Navet also adopted the arguments of the other counsels of the respondents calling the appointment of the Parliamentary Secretaries void ab inito. The learned counsel for the respondent no. 21, Shri Rajiv Sharma also stated that the order passed by the Hon'ble Delhi High Court is itself self-explanatory and nothing remains to the office of the Parliamentary Secretaries.

19. The learned counsel for the petitioner, Shri Meet Malhotra contended that the respondents are going on a different platform all together. The petitioner in no way denies the judgment of the Hon'ble High Court setting aside the appointment of the Parliamentary Secretaries. However, the Hon'ble High Court in its order never used the words 'void ab initio'. The petitioner further contended that the respondents are canvassing the issue to be void ab initio as if the appointment and the consequent facts thereto never took place. The petitioner cited a judgment of the Hon'ble Supreme Court in *Gokaraiu Rangaraiu v. State of Andhra Pradesh* 1 981 SCR (3) 47 4 wherein a question arose as to the effect of the declaration by the Supreme Court that the appointment of an Additional Sessions Judge was invalid on the judgments pronounced by the Judge prior to such declaration. The relevant paragraphs cited by the learned counsel are reproduced here for convenience of reference:

> *"4. We are unable to agree with the submissions of the learned Counsel for the appellants. The doctrine is now well established that "the acts of the Officers de facto performed by them within the scope of their assumed official authority, in the interest of the public or third persons and not for their own benefit, are generally as valid and binding, as if they were the acts of officers de jure" (Putin Behari V. King Emperor). As one of us had occasion to point out earlier "the doctrine is founded on good sense, sound policy and practical experience. It is aimed at the prevention of public and private mischief and the protection of public and private interest. It avoids endless confusion and needless chaos. An illegal appointment may be set aside and a proper appointment may be made, but the acts of those who hold office de facto are not so easily undone and may have lasting repercussions and confusing sequels if attempted to be undone. Hence the de facto doctrine" (vide Immedisetti Ramkrishnaiah Sons v. State of Andhra Pradesh and Anr. AIR1976AP193)*
>
> *8. .....Lord Denning then proceeded to refer to the State of Connecticut v. Carroll decided by the Supreme Court of Connecticut, Re Aldridge decided by the Court of Appeal in New Zealand and Norton v. Shelby County decided by the United States Supreme Court. Observations made in the last case were extracted and they were;*
>
> > *Where an office exists under the law, it matters not how the appointment of the incumbent is made, so far as the validity of his acts are concerned. It is enough that he is clothed with the insignia of the office, and exercises its powers and functions.... The official acts of such persons are recognized as valid on grounds of public policy, and for the protection of those having official business to transact.*
>
> *17. A judge, de facto, therefore, is one who is not a mere intruder or usurper but one who holds office, under colour of lawful authority, though his appointment is defective and may later be found to be defective. Whatever be the defect of his title to the office, judgments pronounced by him and acts done by him when he was clothed with the powers and functions of the office, albeit unlawfully, have the same efficacy as judgments pronounced and acts done by a judge de jure.'*

The petitioner further cited a judgment of the Rajasthan High Court in *Hoti Lal v. Ra.j Bahadur* AIR 1959 Raj 227 wherein a question of disqualification of an MLA arose for holding the post of an Oath Commissioner. In the matter, a plea as to the illegality and improper appointment was taken up. The relevant paragraph cited by the learned counsel is reproduced here for convenience for reference:

> *"16. But even if this be so and the appointment of Shri Mukat was in this respect irregular, that would not save him from the disqualification under Article 102. As we read that article, it provides' for disqualification of any person who holds any office of profit.*
>
> *The disqualification arises from the fact of holding an office of profit under the Government of lndia or the Government of a State even if there is some defect, legal or otherwise, in the order making the appointment. The intention behind Article 102 is to debar all de facto holders of office of profit under the Government of India or the Government of any State. If this were not so, a person who may be actually holding an office of profit under the Government will not be disqualified if there was some defect, legal or otherwise, in his order of appointment."*

20. The petitioner while relying on the above mentioned judgements contended that if the arguments of the respondents are considered to be correct and if the appointment from day one is void ab initio, then everything is wiped out in facts and law. But, the fact that the respondents did hold the office from the date of appointment on 13th March, 2015 till 8th September, 2016 cannot be changed or brushed aside and the question as to the validity of holding the post does not arise in any manner. Hence, the fact as to the illegality in appointment does not wipe off the fact of appointment made and is therefore immaterial.

21. The learned counsel for the respondent no. 8, Shri Amitabh chaturvedi, in response to the arguments placed by the petitioner, rebutted by stating that in the case of *Gokaraju Rangaraiu vs state of Andhra Pradesh* (supra), the observations of the Supreme court were only in respect of the '*office validly created*'. The respondent continued his

argument by stating that' since the post of the Parliamentary Secretaries was not validly created, this judgment does not apply at all to the present reference.

22. In the hearing held on 27th March 2017, the learned counsel for the respondent nos.1, 17 and 20, Shri Manish Vashisht contended that since after the Hon'ble High court order it is clear that an 'office' did not exist, a question of deriving profits from that office in any manner does not arise. The learned counsel further contended that the judgment of *Gokaraju Rangaraiu vs state of Andhra Pradesh* does not have any applicability in the present matter. The doctrines of necessity, de-facto and public policy as applied in the said judgement only arise when judicial/quasi-judicial pronouncements are at stake. However, as the present matter is entirely related to office of profit and not the judicial/ quasi-judicial actions, and as the office held by the MLAs in the extant reference was not held in public interest, the judgement does not find any application to the facts of this case as contended by the petitioner. Thus, once an adjudicating authority has declared the appointment of person as void ab initio, the commission cannot possibly opine on something contrary to what Hon'ble High court has declared. The learned counsel also urged the commission to drop the proceedings against respondent no. 16, Shri Jarnail Singh, Rajouri Garden as he has since resigned from the post of MLA.

23. The learned counsel for the Respondent nos. 2, 5 and 14, Shri Kamal Mehta stated that as the appointment to the post of Parliamentary Secretaries involved a constitutional defect which cannot be corrected, the same shall be ultra vires rendering the appointment void ab initio' Thus, the argument whether it is void, voidable or not void ab initio, is of no importance.

24. The arguments on the said issue were thus concluded from both the sides.

Analysis of the submissions and findings of the Election Commission of India

25. The preliminary issue involved in this case is whether the question relating to the alleged disqualification of the respondents under Section 15(a) of the GNCTD Act is maintainable after the Hon'ble Delhi High court in *Rashtriya Mukti Morcha v. Government of NCT of Delhi and ors*', WP(c) 4714/2015 set aside the Delhi Government's order, dated 13th March 2015, which appointed the respondents as parliamentary Secretaries to the Ministers of the Government of NCT of Delhi.

26. For proper appreciation of facts and law involved in the present case, it would be appropriate to refer to the order dated 13th March ,2015 issued by the Government of NCT of Delhi. For convenience of reference, the said order is reproduced as hereunder:

"..GOVERNMENT OF NCT OF DELHI

GENERAL ADMINISTRATION DEPARTMENT

2ND LEVEL,, A, WING; DELHI SECRETRAIT

I.P. ESTATE: NEW DELHI-I10002

F.NO.17/57/2012/GAD/Par.Secy./356

Dated: 13/03/2015

ORDER

The Chief Minister, Delhi is pleased to appoint the following Members of Delhi Legislative Assembly as Parliamentary Secretary to the Ministers, Govt. of NCT of Delhi as indicated against their name with immediate effect:-

S. No.	Name of the MLA	Parliamentary Secretary to
1.	Sh. Praveen Kumar	Minister of Education
2.	Sh. Sharad Kumar	Minister of Revenue
3.	Sh. Adarsh Shastri	Minister of Information Technology
4.	Sh. Madan Lal	Minister of Vigilance
5.	Sh. Shiv Charan Goel	Minister of Finance
6.	Sh. Sanjeev Jha	Minister of Transport
7.	Ms. Sarita Singh	Minister of Employment
8.	Sh. Naresh Yadav	Minister of Labour
9.	Sh. Jarnail Singh (Tilak Nagar)	Minister of Development
10.	Sh. Rajesh Gupta	Minister of Health

11.	Sh. Rajesh Rishi	Minister of Health
12.	Sh. Anil Kumar Bajpai	Minister of Health
13.	Sh. Som Dutt	Minister of Industries
14.	Sh. Avtar Singh Kalka	Minister of Gurudwara Elections
15.	Sh. Vijender Garg Vijay	Minister of Public Works Department
16.	Sh. Jarnail Singh (Rajouri Garden)	Minister of Power
17.	Sh. Kailash Gahlot	Minister of Law
18.	Ms. Alka Lamba	Minister of Tourism
19.	Sh. Manoj Kumar	Minister of Food and Civil Supplies
20.	Sh. Nitin Tyagi	Minister of Women & Child and Social Welfare
21.	Sh. Sukhvir Singh	Minister of Languages and Welfare of SC/ST/OBC

The Parliamentary Secretaries will not be eligible for any remuneration or any perks of any kind, from the government. However, they may use government transport for official purposes only and office space in the Ministers office would be provided to them to facilitate their work.

This issues with the concurrence of Hon'ble Speaker, Delhi Vidhan Sabha.

(Anindo Maiumdar)

Principal Secretary (GAD)

1. All Ministers

2. The MLAs concerned"

27. A bare perusal of above order of the Government of Delhi shows that by the said order the respondents were appointed as Parliamentary Secretaries to the Ministers of the Government of Delhi. There is no mention in that order anywhere at all that by this impugned order the Government of Delhi created any posts of Parliamentary Secretaries as well. The order only speaks about the appointment of the respondents as Parliamentary Secretaries. This pre-supposes that the posts of Parliamentary Secretaries were either already in existence or created separately by the Government, to which these appointments were made by the Government on 13th March, 2015. The Commission does not find anything in the order dated 8th September, 2016 of the Hon'ble Delhi High Court that the Court set aside not only the appointment of the respondents as Parliamentary Secretaries, but also set aside the creation of those posts of Parliamentary Secretaries. The contention of the respondents that by virtue of the Hon'ble Delhi High Court's order dated 8th September 2016, the posts of Parliamentary Secretaries ceased to exist ab initio from 13th March, 2015, thus holds no water. That by the said order dated 08th September, 2016, the Hon'ble Delhi High Court only set aside the appointment of the respondents as Parliamentary Secretaries is manifestly and abundantly clear and admits of no other interpretation. If the respondents were to succeed in their contention that the Hon'ble High Court set aside the creation of posts of Parliamentary Secretaries as well, the burden of proving that fact lay on them, which they have failed to discharge. The petitioner is right in his contention that the Commission cannot add to or vary any words in the order of the Hon'ble Delhi High Court, as is sought to be done by the respondents.

28. Therefore, the only inference that can be validly drawn from the order dated 08th September 2016 of the Hon'ble Delhi High Court is that the High Court only set aside the appointment of respondents as Parliamentary Secretaries vide government's order dated 13th March 2015, and not the post of Parliamentary Secretaries.

29. Thus, the issue is whether the reference from the President raising the question of alleged disqualification of the respondents on the ground of holding an office of profit as Parliamentary Secretaries is maintainable even after the appointment order of the respondents to such office having been set aside by the Hon'ble High Court on 8th September 2016.

30. As mentioned above, the Delhi High Court in *Rashtriya Mukti Morcha case* (supra) has set aside the appointment order of the respondents as Parliamentary Secretaries on the ground that they had been illegally appointed as Parliamentary Secretaries as the requisite procedure for appointment under the law was not complied with. Effect of an illegal or improper appointment of a person to a post or office which is in existence is no longer *res integra*. A number of cases have analysed the status of an illegal appointment/order.

31. The consequence of an illegal appointment has been discussed by the Rajasthan High Court in the case of *Hoti Lal vs. Raj Bahaclur*, AIR 1959 Raj 227. The relevant paragraph of the judgment is as follows:

"16.....But even if this be so and the appointment of Shri Mukat was in this respect irregular. that would not save him from the disqualification under Article 102. As we read that article, it provides for disqualification of any person who holds any office of profit.

The disqualification arises from the fact of holding an office of profit under the Government of India or the Government of a State even if there is some defect, legal or otherwise' in the order making the appointment. The intention behind Article 102 is to debar all de facto holders of office of profit under the Government of India or the Government of any State. If this were not so, a person who may be actually holding an office of profit under the Government will not be disqualified if there was some defect, legal or otherwise, in his order of appointment.

What Article 102 in our opinion, emphasises is the holding of office in fact and the defect in any order of appointment relating to the holder of an office would not, in our opinion, make any difference. So assuming that there was some defect in the order of appointment of Shri Mukat, he would still, in our opinion, be a person who held an office of profit under the Government of Rajasthan and would, therefore, be disqualified under Article 102."

The Rajasthan High Court, thus, held that a Member of the Parliament shall be disqualified under Article 102 of the Constitution for de facto holding an office of profit irrespective of the fact that there was a defect in the order of his appointment to the said office.

32. It may be pointed out here that the context and language of Article 102 of the Constitution is same as Section 15(a) of the GNCTD Act, that is, both the provisions are *pari materia* to each other. The Delhi High Court has dealt with the rule of statutory interpretation of *pari materia* provisions, in the case of *Raees-Uz-Zama and Anr. v. State NCT of Delhi*, 206(2014)DLT578 to hold that *pari materia* provisions attract same consequences. The relevant paragraph of this judgment is produced below:

"115....If Acts are pari materia, it is assumed that uniformity of language and meaning is intended, attracting the same considerations as arise from the linguistic canon of construction that an Act is to be construed as a whole."

As section 15(4) of the GNCTD Act is *pari materia* to Article 102 of the Constitution, the ratio of *Hoti Lal case* (supra) is applicable even in cases falling under Section 15(4) of the GNCTD Act.

33. Similarly, it has been held by the Hon'ble High Court of Andhra Pradesh in the case of *Immedisetti Ramkrishnaiah Sons, Anakapalli and Ors. v. State of Andhra Pradesh and Anr'*, *AIR 1976 AP 193* that irrespective of the illegality of appointment, the acts done by de facto office holders have repercussions. The relevant paragraph of the judgment is as follows:

"6. As we shall presently point out, it is now a well-established doctrine that the acts of the officers de facto performed by them within the scope of their assumed official authority, in the interest of the public or third persons and not for their own benefit, are generally as valid and binding as if they were the acts of the officers de jure'. (Pulin Behariv. King Emperor (1912) 15 Cal LJ 517 at p. 574). The doctrine is founded on good sense, sound policy and practical experience. It is aimed at the prevention of public and private mischief and the protection of public and private interest. It avoids endless confusion and needless chaos. An illegal appointment may be set aside and a proper appointment may be made, but the acts of those who held office de facto are not so easily undone and may have lasting repercussions and confusing sequels if attempted to be undone. Hence the de facto doctrine."

34. The above mentioned de facto doctrine has been conclusively upheld by the Hon'ble Supreme Court in the case of *Gokaraju Rangaraju v. State of Andhra Pradesh*, 1981 SCR (3) 474. The Supreme Court reiterated the decision of Immedisetti Ramkrishnaiah case and held that:

"4. We are unable to agree with the submissions of the learned Counsel for the appellants. The doctrine is now well established that "the acts of the officers de facto performed by them within the scope of their assumed official authority, in the interest of the public or third persons and not for their own benefit, are generally as valid and binding, as if they were the acts of officers de jure" (Pulin Behari V. King Emperor) MANU/WB/0395/1912. As one of us had occasion to point out earlier "the doctrine is founded on good sense, sound policy and practical experience. It is aimed at the prevention of public and private mischief and the protection of public and private interest. It avoids endless confusion and needless chaos. An illegal appointment may be set aside and a proper appointment may be made, but the acts of those who hold office de facto are not so easily undone and may have lasting repercussions and confusing sequels if attempted to be undone. Hence the de facto doctrine."

35. Pertinent also to take note here of the decision of the Hon'ble Supreme Court in State of Punjab v. Gurudev Singh (1991) 4 SCC 1, on which the learned counsel for the petitioner placed reliance as referred to in para 10 hereinabove. For the sake of convenience of reference, the relevant portion of the Apex Court's judgment which relates to the case of dismissal of a police officer and the effect of his actions before dismissal is reproduced below:

> *"5. If an Act is void or ultra-vires it is enough for the Court to declare it so and it collapses automatically, it need not be set aside, the aggrieved party can simply seek a declaration that it is void and not binding upon him. A declaration merely declares the existing state of affairs and does not 'quash' so as to produce a new state of affairs.*
>
> *6. But nonetheless the impugned dismissal order has at least a de-facto operation unless and until it is declared to be void or nullity by a competent body or Court." (**emphasis supplied**).*

36. Additionally, the Hon'ble Supreme Court, in the case of *Sri Justice S.K. Ray v. State of Orissa and Ors.*. (2003) 4 SCC 21 has held that after the office of Lokpal is abolished, the restrictions relating to the said office as provided in the Act will be applicable to the incumbent. The relevant paragraph of the judgment is as follows:

> *"10. There are two ways of understanding the effect of abolition of the office of Lokpal, which resulted in curtailment of the tenure of the office of the appellant. One is that the appellant having held the office at least for some time is subject to all the restrictions arising under the provisions of the Act, including those which debar him from holding any office on his ceasing to be Lokpal. The other point of view could be that on the abolition of the post the restrictions as to holding of office on the appellant ceasing to be the Lokpal will not be attached to him. The latter view, if taken, would lead to incongruous results because the incumbent in office of the Lokpal, having .functioned as such at least for some lime, would have dealt with many matters and, therefore, to maintain the purity of that office, the restrictions imposed under the Act should be maintained. The only other reasonable way, therefore, is to interpret the provisions to the effect that even when such restrictions continue to be operative on abolition on the office the incumbent in office should be reasonably compensated not for deprivation of the office but for attachment of the restrictions thereafter."*

37. The classic example where the de facto doctrine was upheld and applied by the Hon'ble Supreme Court is the case of Km J Jayalalithaa, whose appointment as Chief Minister of the State of Tamil Nadu was invalidated by the Apex Court in 2001. On the invalidation of appointment of Km J Jayalalithaa as Chief Minister of Tamil Nadu, an important question arose as to what would be the effect of the decisions taken and policies adopted, etc., by the State Government during the period of her Chief Ministership. The decision taken by the Hon'ble Supreme Court on such issue is reflected in the following observation of the Apex Court in B. R. Kapur vs. State of Tamil Nadu and Anr. AIR 2001 SC 3435:

> *"57- We are aware that the finding that the second Respondent could not have been sworn in as chief minister and cannot continue to function as such will have serious consequences. Not only will it mean that the state has had no validly appointed chief minister since 14th May, 2001 when the second Respondent was sworn in, but also that it has had no validly appointed council of ministers, for the council of ministers was appointed on the recommendation of the second Respondent. It would also mean that all acts of the Government of Tamil Nadu since 14th May, 2001 would become questionable. To alleviate these consequences and in the interest of the administration of the state and its people, who would have acted on the premise that the appointments were legal and valid, we propose to invoke the de facto doctrine and declare that all acts, otherwise legal and valid performed between 14th May, 2001 and today by the second Respondent as Chief Minister, by the members of the council of ministers and by the government of the state shall not be adversely affected by reason only of the order that we now propose to pass.*"

38. A combined reading of the de facto doctrine in the Hoti Lal judgment, and the ratio of the judgments of the Apex Court in Gokaraiu, State of Punjab v. Gurudev Singh (1991) 4 SCC 1, Justice S. K. Ray and B.R. Kapur vs. State of Tamil Nadu and Anr. AIR 2001 SC 3435 (supra) shows that the factum of de facto holding of office is well established principle in our jurisprudence.

39. In the present case, it is not in dispute that the respondents were appointed as Parliamentary Secretaries to the Ministers of Delhi Government by the order of 13th March 2015. Then, the Hon'ble Delhi High Court in Rashtriya Mukti Morcha (supra) set aside this order on 08th September 2016. -Thus, it is evident that from the date of their appointment on 13th arch 2015 till the date of setting aside their appointment order on 08th September 2016, the respondents were de facto holders of the office of Parliamentary Secretaries, albeit, by way of illegal appointment order and, hence, the present proceedings before the Commission on the question of their disqualification is maintainable and shall continue.

40. The Commission is, thus, of the considered opinion that the respondents did hold de facto the office of Parliamentary Secretaries from 13th March 2015 to 08th September 2016 and the interpretation as sought to be put by them on the order dated 08tr'September 2016 of the Hon'ble Delhi High Court that they did not hold any office is not

legally tenable. Hence, without prejudice to the merits of the case, the reference relating to the question of alleged disqualification of the respondents under Section 15(4) of the GNCT of Delhi Act, 1991 for holding the said office survives and is maintainable in respect of all the said respondents, except respondent no. 16 (Shri Jarnail Singh, MLA of Rajouri Garden) who has resigned his office as MLA on 17th January 2017 and even a bye-election has been held in April 2017 to fill that vacancy in the Delhi Legislative Assembly.

41. The Commission will intimate the next date of hearing to all the concerned parties in the present proceedings in due course.

-sd-

(A.K.JOTI)

(Election Commissioner)

-sd-

(DR. NASIM ZAIDI)

(Chief Election Commissioner)

Place: New Delhi
Date: 23.06.2017

[F. No. H-11026/1/2018-Leg. II]

Dr. REETA VASHISHTA, Addl. Secy.

Uploaded by Dte. of Printing at Government of India Press, Ring Road, Mayapuri, New Delhi-110064
and Published by the Controller of Publications, Delhi-110054.

ALOK KUMAR Digitally signed by ALOK KUMAR Date: 2018.01.21 14:30:15 +05'30'